Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

200

शारदा-संस्कृत-ग्रन्थमालायाः सप्तमप्रसूनम् ।

काशीस्थ-राजकीय-शास्त्रिपरीक्षायां निर्धारितम्

पालवध-महाकाव्यम्

सर्गद्वयात्मकम्

015,2:g,1-
J4

डी. जी. ... एवं,
... वेदाराम ... द्वारा
"झा" को अर्पण,
३१-७-७४

सम्पादकः—
गौरीनाथ-पाठकः ।

काशी ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रकाशकः—

राजाराम पाठक

शारदा भवन, ४४ अगस्त्यकुण्ड, बनारस ।

015,2:g,1 4049
J4
Magha
Shishupal vadham
Mahakavyam

द्वारा सुरक्षित)

मुद्रकः—

श्री गौरीनाथ पाठक

अमरवाणी यन्त्रालय, काशी ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

॥ श्रीः ॥

महाकविमाघप्रणीतम् ।

200

शिशुपाल-वध महाकाव्यम्

प्रथम द्वितीयसर्गात्मकम् ।

स्मार्तकर्मानुष्ठाननिष्ठ-कश्यपवंशावतंस-स्वधर्मधुरन्धर
पाठकोपाह्वजयकृष्णशर्मतनुजनुषा शारदासंस्कृत-
महाविद्यालयीयसाहित्यप्रधानाध्यापकेन
श्रीगौरीनाथशर्मणा विरचितया
सुबोधिन्याख्यया व्याख्यया
सरलार्थया संक्षिप्तार्थया
प्राकृतभाषया च
संवलितम्

तच्च

काशीस्थ शारदा भवनात्
समुल्लसितम्
वैक्रमाब्दाः—२०११ सिं०

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रकाशक:—
राजाराम पाठक
शारदाभवन, ४४ अगस्त्य कुण्ड
काशी

015,2 :9:L
54

(सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन)

SRI JAGADGURU VISHWARADHYA
JNANA SIMHASAN JNANAMANDIR
LIBRARY.
Jangamwadi Math, VARANASI.
Acc. No. 2274
4049

मुद्रक:—
बाबू ठाकुर प्रसाद गुप्त,
बम्बई प्रेस,
राजा दरवाजा बनारस।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

डॉ. जी. ... ...
..., केदारा... ...
"..." की ...

मेरे दो शब्द

इसमें कोई संशय नहीं कि संस्कृत-वाङ्मय के सर्वस्वभूत "पञ्चमहा-काव्यों में शिशुपालवध का भी एक महत्वपूर्ण और प्रमुख स्थान है।

इसके कर्ता महाकवि माघ के सिद्धहस्त लेखक होने में न तो तत्कालीन किसी विद्वान् का विरोध था, न तो आज ही किसी का विरोध है।

जिस समय संस्कृत साहित्य के तारुण्य का सितारा चमक रहा था और घर घर धनी निर्धनियों में, आबाल वृद्धों में, स्त्री पुरुषों में इतना ही नहीं तो पशुपक्षियों में भी इसके धूम की चकाचौंध मची हुई थी, कवि और महाकवियों का ही सर्वत्र बोल बाला था उस समय भी महाकवि माघ अपनी शैली के अ-द्वितीय ही महाकवि समझे जाते थे। जैसा कि तत्कालीन विद्वानों की निम्नलिखित सूक्तियों से प्रमाणित है—

"उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।
दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः॥"
"माघेन विघ्नितोत्साहा नोत्सहन्ते पदक्रमे।"
"तावद्भा भारवेर्भाति यावन्माघस्य नोदयः।"
"मुरारिपदचिन्ता चेत्तदा माघे मतिं कुरु।"
"माघं भजन्तु यदि काव्यकलाभिलाषो
माऽघं भजन्तु यदि मोक्षपथाभिलाषः।"
"माघेनैव च माघेन कम्पः कस्य न जायते।"
"पुष्पेषु जाती, नगरीषु काशी, नारीषु रम्भा, पुरुषेषु विष्णुः।
नदीषु गङ्गा, नृपतौ च रामः, काव्येषु माघः, कविकालिदासः॥
"धन्यो माघकविर्वयन्तु कृतिनस्तत्सूक्तिसंसेवनात्।"
"नवसर्गगते माघे नवशब्दो न विद्यते" इत्यादि॥

इनकी यशस्विता अन्यान्य महाकवियों से विलक्षण थी इस सम्बन्ध में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि और और महाकवियों की रचनाएँ उनके रचित ग्रन्थों के नामों से ही प्रसिद्ध हुई हैं। परन्तु इस महाकवि की रचना (शिशुपालवध महाकाव्य) इनके नाम से ही प्रसिद्ध हुई।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आज भी प्रायः सभी साहित्यिक शिशुपालवध की जगह "माघ" शब्द का ही प्रयोग करते सुनाई पड़ते हैं। यह महाकाव्य राजनीतिप्रधान है। हमारे महाकवि केवल साहित्यिक ही नहीं थे अपितु राजनीति के भी प्रकाण्ड पण्डित थे।

इस प्रकार की लोकोत्तर विभूति महाकवि माघ कौन थे? कहाँ और कब उत्पन्न हुए? किस वंश को अलंकृत किया? किस राजा की राजसभा के पण्डित थे? इनके सम्बन्ध में कोई ऐतिहासिक प्रबन्ध प्राप्त है अथवा नहीं? इस महाकाव्य की रचना में इनकी प्रवृत्ति क्यों हुई? इनका व्यावहारिक ज्ञान कैसा है? इनकी यह कृति अन्यान्य महाकवियों की कृति की छाया है अथवा स्वतन्त्र रचना है? शास्त्रान्तर में इनका पाण्डित्य कितना और कैसा है? इनका आदर्श किस ढंग का है? काव्य प्रणयन-प्रणाली कैसी है? किसके आधार पर इस महाकाव्य की रचना की है? इनकी इस कृति में कौन गुण और कौन दोष है? इत्यादि विषयों को जानने के लिये शिशुपालवध पढ़ने पढ़ाने वाले सभी साहित्यिकों का उत्कण्ठित होना साहजिक है।

परन्तु सर्गद्वियात्मक स्वल्पकाय इस भाग में उक्त सभी विषयों का गवेषणा पूर्ण यदि विवेचन किया जाय तो "अनङ्गस्य च कीर्तनम्" के साथ साथ ग्रन्थ गौरव भी होगा। इसलिये स्थालीपुलाकन्याय से परमावश्यक दो चार विषयों का ही विवेचन यहाँ करते हैं।

मेरा इस महाकवि के सम्बन्ध में एक विस्तृत निबन्ध "महाकवि [१]माघ" के नाम से लगभग ३० वर्ष पूर्व प्रकाशित हो चुका है। जिसको इस सम्बन्ध में विशेष जानने की इच्छा हो वे इस प्रबन्ध को देख सकते हैं।

यह महाकवि कौन और कहाँ के थे?— विद्वानों की जननी भारत भूमि की महाविभूति महाकवि माघ गुर्जर प्रान्तान्तर्गत श्रीमालप्रदेश के रहने वाले थे।

---

१ यह निबन्ध काशीके सभी पुस्तक विक्रेताओं से प्राप्य है। इसका मूल्य ।) है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इनके माता पिता कौन थे?—इनके पिता दत्तक और माता ब्राह्मी थी, इनका वंश कुवेरोपम ऐश्वर्यशाली था। तत्कालीन लोग इस वंश को लक्ष्मी का द्वितीय विलासस्थान समझते थे।

ये कब उत्पन्न हुए ?—इनके समय के सम्बन्ध में शार्मण्यदेशीय ऐतिहासिक विद्वान् डा० एफ्० क्लाट् का मत है कि ईशवीय दशम शताब्दी के आरम्भ में महाकवि माघ हुए। किन्तु ये सोमदेव (९५९ ई०) और आनन्दवर्द्धन (८५० ई०) के पूर्व हुए, क्योंकि इन लोगों ने अपने ग्रन्थों यशस्तिलक चम्पू और ध्वन्यालोक में माघ का उल्लेख किया है। अतः उपर्युक्त विद्वान् का मत समीचीन नहीं है। वहीं के एक दूसरे विद्वान् प्रो० याकोबी का मत है कि ईशवीय छठीं शताब्दी के मध्य भाग से अधिक इनका समय कभी नहीं हो सकता। इसी महाकवि के चचेरे भाई हर्यश्व का कहना है कि ईशवीय छठीं शताब्दी के आरम्भ में महाकवि माघ हुए। महामहोपाध्याय दुर्गाप्रसादजी का मत है कि माघ कवि ईशवीय नवमशताब्दी के आगे किसी तरह नहीं जा सकते। काव्य-मीमांसा की भूमिका में सी० डी० दलाल ने कहा है कि माघ सुप्रभदेव का पौत्र था जो कि भिन्नमालदेश के राजा वर्मलात का मन्त्री था। यह वर्मलात संवत् ६८२ (=६२५ ई०) में वर्तमान था। अतः सुप्रभदेव के पौत्र माघ का समय ६५० ई० के लगभग ठहरता है। किसी विद्वान् का ऐसा भी कहना है कि यह महाकवि ईशवीय १० शताब्दी के अन्त में वर्तमान धारा नगरी के अधिपति राजा भोज के समकालीन थे। क्योंकि भोजप्रबन्ध में इनका उल्लेख आता है। परन्तु भोजप्रबन्ध की प्रामाणिकता पर ऐतिहासिकों को सन्देह है और भोज भी दो हो चुके हैं। पहला भोज सातवीं शताब्दी में हुआ है। प्रातः स्मरणीय श्रद्धेय चरण महामहोपाध्याय आचार्य श्री रामावतारशर्माजी के "भारतीयमितिवृत्तम्" के देखने से जयापीड के पूर्व माघ कवि का होना सिद्ध होता है जो जयापीड शक संवत् ७०१ से ७३५ तक काश्मीर का शासन करता था। एक अन्तरङ्ग

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रमाण भी मिलता है कि इसी महाकाव्य के दूसरे सर्ग (श्लोक ११२) में राजनीति की समता शब्दविद्या (व्याकरण) से की गयी है। इस श्लोक में 'काशिकावृत्ति' और 'न्यास' नामक दो व्याकरण ग्रन्थों की ओर स्पष्ट रूप से संकेत किया गया है। वामन और जयादित्य ने ६५० ई० में काशिकावृत्ति की रचना की थी। बाण (६२० ई०) ने 'हर्षचरित' में न्यास का उल्लेख किया है। यथा—'कृतगुरुपदन्यासा लोक इव व्याकरणेऽपि।' इसी न्यास की ओर माघ ने भी संकेत किया है। अतः यह श्लोक माघ का समय निर्द्धारण करने में बड़ा महत्त्व रखता है।

इस प्रकार उक्त परस्पर भिन्न भिन्न मतों को देखते हुए मेरे मत से महाकवि माघ का समय ६५० से ६६० तक का होना उचित मालूम पड़ता है।

सुबोधिनी टीका

यद्यपि इस महाकाव्य की महामहोपाध्याय कोलाचल मल्लिनाथ सूरि विरचित सर्वङ्कषा टीका अति प्राचीन और परमप्रामाणिक उपलब्ध है परन्तु परीक्षार्थियों की दृष्टि से वह उन्हें कठिन मालूम पड़ती है और अन्वय समासादि पृथक् न होने के कारण विषयावबोध जैसा होना चाहिये वैसा नहीं होता इसलिये इसका प्रथम संस्करण सुबोधिनी टीका के साथ मैंने विक्रम संवत् १९८२ में निकाला था, द्वितीय संस्करण विक्रम संवत् १९९० में निकाला, तृतीय संस्करण विक्रम सं० १९९४ में निकाला इसके बाद सर्ग द्वयात्मक यह भाग परीक्षा से निकल गया इसलिये इसका पुनः प्रकाशन नहीं हुआ। अब इस वर्ष पुनः परीक्षा में यह भाग पाठ्यत्वेन निर्धारित हुआ है इसलिये इसका यह चतुर्थ संस्करण प्रकाशित किया जा रहा है। आशा है कि छात्रों का इससे यथापूर्व उपकार अवश्य होगा।

मकर संक्रान्ति २०११
शारदाभवन, काशी। }

निवेदक—
गौरीनाथ पाठक

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

संक्षिप्त-कथा-भाग

प्रथमः सर्गः

श्रीकृष्णं स्वरुपेत्य नारद इति प्रोवाच वाचं हरि—
श्चेदीशं किमुपेक्षसे जहि रणे जन्मत्रयीविद्विषम् ।
ओमुक्त्वा स विसर्ज्य तं जिगमिषुश्चैद्यं प्रति श्रीपतिः
सङ्क्रन्दन चिकीर्षता मखमुपाहूतः पृथासूनुना ॥१॥

इस सर्गमें महाकविमाघने आरम्भमें, आकाशसे महामुनिनारदका श्रीकृष्णभगवानके यहाँ आना, भगवानका उनकी स्तुति और पूजा करना, उसे सादर ग्रहणकरना, उनके आगमनसे असीमहर्षका प्रकाशकरना, नारदमहामुनिका महिमा वर्णनकरना, आदि कथन किया है, तदुपरान्त इन्द्रके निम्नलिखित सन्देशको सुना आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्रसे उसे स्वीकार करवाकर प्रथम सर्ग समाप्त किया है ।

सन्देश :—

जिसने पहले जन्ममें रावण होकर कठिन तपसे भोलानाथको प्रसन्नकर अपना अभीष्ट वर पाकर इन्द्रको पुरी अमरावती और नन्दन वनको उजाड़ डाला । अप्सराओंके रत्न बलात्कारपूर्वक हरण किये । कुबेर, वरुण, यम, सूर्य, चन्द्र, वायु, अग्नि, शेष और स्वर्गीय सुन्दरियाँ आदि अनेक देवदेवियोंको अपने यहाँ दासदासीरूपमें बन्दीकर रक्खा, आपने श्रीरामचन्द्रके अवतारमिषसे भूतलपर अवतरित हो उसका वध किया । अब इस समय भी वही शिशुपालके रूपमें उत्पन्न हो पहिलेकी तरह पुनः संसारको अत्यन्त कष्ट दे रहा है, इसलिये आप पुनः पूर्वकी

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तरह इसका भी वधकर इन्द्रादि देवों और साधारण समाजको सदाके लिये सुखी करें।

द्वितीयः सर्गः

तावाहूय मुरारिरुद्धवबलौ कार्यद्वयव्याकुल--

श्चैद्यं यामि युधिष्ठिरं किमथवा पप्रच्छ संशय्य सः।

"चैद्यं गच्छ" वरं वचो मुसलिनः सन्दूषयन्नुद्धवः

पार्थं प्राक् समुपेहि तत्र युधि, तं हन्तास्यवोचद्रहः ॥२॥

नारदमहामुनिके स्वर्लोकगमनकरनेपर श्रीकृष्ण भगवान बड़े असमञ्जसमें पड़े कि एक ओर धर्मराज युधिष्ठिर अपने यज्ञमें बुलारहेहैं दूसरीओर शिशुपालका वध करनेके हेतु उसपर चढ़ाई करनी है, समय दोनोंका एकही है, किस ओर चलें, कार्य दोनों ही महत्वके हैं।

इस विकट समस्याके निर्णयके लिये कृष्णने बलराम और उद्धवको लेकर मन्त्रणागृहमें प्रवेश किया और इस विषयको प्रस्तुत करते हुए अपना मत प्रगट किया कि "शत्रु सिरपर खड़ा है, ऐसी अवस्थामें उसकी उपेक्षाकर यज्ञमें जाना ठीक नहीं है, वह तो धर्मराज युधिष्ठिरके भाइयोंकी सहायतासे भी निर्विघ्न सम्पन्न हो सकता है, परन्तु इस समय शत्रुको छोड़ देनेसे फिर उसका वध करना असम्भव हो जायगा। इसलिये इस समय शत्रुपर चढ़ाई करना ही श्रेयस्कर है।

शिशुपाल हमसे द्वेष रखता है इसका हमे तनिक भी दुःख नहीं है किन्तु यह इस समय सारे संसारको सता रहा है इसका हमें विशेष दुःख है।"

बलरामने इसका समर्थन किया और इस विचारको कार्यमें परिणत करनेके लिये विशेष जोर दिया और यह भी कहा कि "आप यह न

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

समझें, शिशुपाल अकेला है। शत्रु, ऋण, अग्नि, इनका नामशेष भी विशेष अनर्थका मूल है। राहु अकेला ही है, फिर भी बड़े २ प्रतापी ग्रहोंके देखते हुए चन्द्रको ग्रसता है पर कोई उसका कुछ कर नहीं सकता।

इसलिये इस समय इन्द्रप्रस्थकी ओर यात्रा न कर चेदिदेशकी ओर जानाही ठीक है।

इस प्रकार बलरामकी वाणी सुनकर श्रीकृष्णने उद्धवको अपना मत प्रगट करनेके लिये आँखोंसे इशारा किया।

उद्धवने आरम्भमें श्रीकृष्णके विचारको सराहा और बलरामके सलाहका समर्थन किया, पर युधिष्ठिरके यागमें जानेके लिये भी विशेष आग्रह किया, साथही यह भी स्मरण करवाया कि "आपने अपनी बूआसे यह प्रतिज्ञाकी है कि तेरे पुत्रके एक सौ अपराध क्षमा करूँगा, अब यदि तू अभी उसका वध करता है तो तेरी प्रतिज्ञा भङ्ग होती है, इसलिये यह सबसे उत्तम होगा कि गुप्तचरोंको शत्रुपक्षमें भेज दिया जाय और जब तक हमलोग युधिष्ठिरके यागमें पहुँचते हैं, वे लोग उन सभोंको यह कहकर वहाँ आनेके लिये प्रस्तुत करें, कि धर्मराजयुधिष्ठिरके यहाँ, राजाओंका एक महासम्मेलन होने वाला है उसमें अनेक कठिन समस्याओं पर विचार होगा आप सभोंको वहाँ अवश्य पहुँचना चाहिये; इस तरह जब वे वहाँ पहुँच जाएँगे और सभामें युधिष्ठिर आपका प्रथम पूजन करने लगेंगे, उस समय शत्रुपक्षमें शिशुपाल और उसके कुछ अनुयायी इसे सहन न कर सकेंगे और कलहकर बैठेंगे, उनमेंसे कुछ राजे उसे छोड़ देंगे इससे उसका पक्ष दुर्बल हो जायगा और सहजहीमें उसका वध हो सकेगा।

इस प्रकार बलरामकी दुर्नीतिको हटानेवाली उद्धवकी वाणी सुनकर श्रीकृष्ण अति प्रसन्न हुए और मन्त्रणासमिति समाप्त की।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

❀ श्रीशिवः शरणम् ❀

शिशुपाल-वधे

सुबोधिनी-समेते

प्रथमः सर्गः ।

नियतिकृतनियमरहितां ह्लादैकमयीमनन्यपरतन्त्राम् ।
नवरसरुचिरां निर्मितिमादधती भारती कवेर्जयति ॥१॥

अथ तत्रभवान् महाप्रतिभाप्रभारविर्महाकविर्माघः "काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये । सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे" तथा "अयं सर्वत्र सुखदः श्रवणेऽनुष्ठितावपि" इत्याद्यालङ्कारिकवचनप्रामाण्यात् काव्यस्य तदुपदेशस्य चानेकश्रेयःसन्तानपरम्पराधायकतां "काव्यालापांश्च वर्जयेत्" इति निषेधवाक्यस्य च दुष्टकाव्यविषयतां समनुपश्यन् शिशुपालवधाख्यं महाकाव्यमिदं प्रणिनिनीषुः, निर्विघ्नेन प्रारिप्सितपरिसमाप्तिकामः चिकीर्षितस्यास्य निर्विघ्नपरिसमाप्त्यर्थं "आशीर्नमस्क्रिया वस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखम्" इत्याद्याशीराद्यन्यतमस्य प्रबन्धमुखलक्षणत्वात् काव्यफलं शिशुपालवधबीजभूतं भगवतः श्रीकृष्णस्य नारददर्शनरूपं वस्तु प्रथमं श्रीशब्दपूर्वकं निर्दिशन् कथामुपक्षिपति श्रिय इति :—

श्रियः पतिः श्रीमति शासितुं जगज्जगन्निवासो वसुदेवसद्मनि ।
वसन्ददर्शावतरन्तमम्बराद्धिरण्यगर्भाङ्गभुवं मुनिं हरिः ॥ १ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

[अन्वयः] श्रियः पतिः जगन्निवासः, जगत् शासितुं श्रीमति वसुदेवसद्मनि वसन् हरिः अम्बरात् अवतरन्तं हिरण्यगर्भाङ्गभुवं मुनिं ददर्श ॥ १ ॥

[सुबोधिनी] श्रियः पतिः (लक्ष्म्या भर्ता, लक्ष्मीकान्तः) जगतां निवासः (जगदाधारभूतः, कुक्षिगतसकलभुवनः) जगत् (विश्वं) शासितुं (नियन्तुं, दुष्टदमनशिष्टपालनाभ्यां व्यवस्थापयितुं) श्रीमति (शोभासम्पन्ने, अतुलसम्पत्समन्विते) सद्मनि (यदुवंशसम्भूतस्य कश्यपावतारस्य वसुदेवस्य भवने) वसन् (श्रीकृष्णरूपेणावतीर्य तिष्ठन्) हरिः (विष्णुः) अम्बरात् (गगनात्) अवतरन्तं (अवरोहन्तं, स्वर्लोकाद्भूलोकमायान्तं) हिरण्यगर्भाङ्गभुवं (हिरण्यगर्भस्य ब्रह्मणो मानसपुत्रं) मुनिं (ऋषिं नारदं) ददर्श (अवलोकयामास) ॥ १ ॥

अस्मिन् सर्गे सर्वत्र वंशस्थवृत्तम् । तल्लक्षणं यथाः—

उपेन्द्रवज्राचरणेषु सन्ति चेदुपान्त्यवर्णा लघवः कृता यदा ।
मदोल्लसद्भ्रूजितकामकार्मुके ! वदन्ति वंशस्थमिदं बुधास्तदा ॥ १ ॥

[समासः] श्रयति हरिमिति श्रीस्तस्याः । निवसन्ति जना अस्मिन्निवासः, जगतां निवासः जगन्निवासः । श्रीरस्त्यस्मिन्निति श्रीमत् तस्मिन् । वसुदेवस्य सद्म वसुदेवसद्म तस्मिन् । हरति पातकजातं स्मृतिमात्रेण अपनयतीति हरिः । हिरण्यस्य गर्भः हिरण्यगर्भः (सुवर्णमयाण्डसम्भवत्वात्) अङ्गाद्भवतीति अङ्गभूः, हिरण्यगर्भस्य अङ्गभूः तम् । अवतरतीति तम् ॥ १ ॥

[कोषः] सम्पत्तिः श्रीश्च लक्ष्मीश्च ।, लोको, विष्टपं भुवनं जगत् । श्रीर्वेशरचनाशोभा, इत्यमरमेदिन्यौ ॥ १ ॥

[व्याकरणम्] गच्छतीति जगत् = गम् + कर्तरि क्विप् । शासितुं = शास् तुमुन् (भावे) श्रीमति = श्री + मतुप् । वसन् = वस् + शतृ । अवतरन्तं = अव + तॄ + शतृ । ददर्श = दृश् + लिट् + (तिप् णल्) ॥ १ ॥

[वाच्यान्तरम्] श्रियः पत्या जगन्निवासेन वसुदेवसद्मनि वसता हरिणा हिरण्यगर्भाङ्गभूः मुनिः ददृशे ॥ १ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

[सरलार्थः] कंसादिदुष्टराजन्यवृन्दविनाशनद्वारा भुवो भारहरणार्थं ब्रह्मादिभिर्देवगणैः प्रार्थितो भगवान् नारायणः द्वापरे युगे श्रीकृष्णरूपेण वसुदेवतनयो भूत्वा एकदा द्वारकापुर्यां सुधर्माख्यायां सभायां समासीनः इन्द्रसन्देशकथनार्थं आकाशपथेनागच्छन्तं देवर्षिं नारदमपश्यत् ॥ १ ॥

[भावार्थ] शिष्टोंपर अनुग्रह करने और दुष्टोंको दण्ड देनेके लिये द्वापरयुगमें वसुदेवके यहाँ देवकीके गर्भसे अवतार लेनेवाले लक्ष्मीपति भगवान् नारायणने आकाशसे उतरतेहुए महामुनि नारदको देखा ॥ १ ॥

गतं तिरश्चीनमनूरुसारथेः प्रसिद्धमूर्ध्वज्वलनं हविर्भुजः ।
पतत्यधो धाम विसारि सर्वतः किमेतदित्याकुलमीक्षितं जनैः ॥

[अन्वयः] अनूरुसारथेः गतं तिरश्चीनं (प्रसिद्धम्) हविर्भुजः ऊर्ध्वज्वलनं प्रसिद्धम् (इदं तु) सर्वतः विसारि धाम अधः पतति एतत् किम् इति जनैः आकुलं "यथा तथा" ईक्षितम् ॥ २ ॥

[सुबोधिनी] अनूरुसारथेः (सूर्यस्य) गतं (गमनं) तिरश्चीनं (पूर्वान्तात् पश्चिमान्तम्) हविर्भुजः (अग्नेः) ऊर्ध्वज्वलनं (उपरि प्रस्फुरणम्) प्रसिद्धम् (विख्यातम्) इदं तु, सर्वतः (समन्ततः) विसारि (प्रसरत्) 'सर्वा दिश उद्भासयदित्यर्थः" धाम (तेजः) अधः (नीचैः) पतति (आगच्छति) एतत् (सूर्याग्निविलक्षणं) किं (किमात्मकं धाम) इति (इत्थं) आकुलं (सम्भ्रान्तं) यथा स्यात्तथा) जनैः (द्वारकावासिभिर्लोकैः) ईक्षितम् (दृष्टम्) ॥ २ ॥

[समासः] न स्तः ऊरू यस्यासावनूरुः, अनूरुः सारथिर्यस्य स अनूरुसारथिस्तस्य । ऊर्ध्वंञ्च तज्ज्वलनमूर्ध्वज्वलनम् । हविः (हुतं घृतादि) भुङ्क्ते इति हविर्भुक् तस्य । विसारि=विसरतीति विसारि ॥ २ ॥

[कोषः] धाम शक्तौ प्रभावेच तेजोमन्दिरजन्मसु, समन्ततस्तु परितः सर्वतो विष्वगित्यपीतिविश्वामरौ ॥ २ ॥

[व्याकरणम्] गतम्=गम्+क्त (भावे), तिरश्चीनम्=तिर्यक्+ख+

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ईन (स्वार्थे) प्रसिद्ध=प्र+सिध्=क्त। विसारि=वि+सृ+णिनि। पतति =पत्+लट् (ति) ईक्षितं=ईक्ष+भावे क्त ॥ २ ॥

[वाच्यान्तरम्] अनूरुसारथेः गतेन तिरश्चीनेन भूयते। हविर्भुजः। ऊर्ध्वज्वलनेन प्रसिद्धेन भूयते। सर्वतो विसारिणा धाम्ना अधः पत्यते। केन एतेन भूयते इति जना ईक्षितवन्तः ॥ २ ॥

[सरलार्थः] तेजःपुञ्जकलेवरं तं नारदं वीक्ष्य द्वारकावासिनो जना एवं तर्कयामासुः—किमसौ सूर्य्यः ? नहि, स खलु पूर्वान्तात् पश्चिमान्तं गच्छति, अयन्तु ऊर्ध्वादध आगच्छति। किमसौ वन्हिः ? नहि, स हि ऊर्ध्वं गच्छति तत् किं नाम एतत् तेज इति ते निश्चयं नाध्यगच्छन् ॥ २ ॥

[भाषार्थ] तेजःपुञ्ज नारदमुनिको द्वारकावासी जन पहले पहल नीचेलिखे प्रकारसे सशङ्क हो अत्याश्चर्यके साथ देखने लगे,—क्या आकाशमें दो हिस्सोंमें बटे हुए सूर्यबिम्बका यह दूसरा गोला है ? पर चारो ओर अपने तेजको फैलाने वाला यह ऊपरसे नीचे उतर रहा है, इसलिये सूर्य नहीं हो सकता क्योंकि वह तिरछा गमन करता है और अग्नि भी नही हो सकता क्योंकि उसका तेज (ज्वाला) नीचेसे ऊपर जाता है, और यह तो ऊपरसे नीचे आरहा है ॥ २ ॥

चयस्त्विषामित्यवधारितं पुरा ततः शरीरीति विभाविताकृतिम्।
विभुर्विभक्तावयवं पुमानिति क्रमादमुं नारद इत्यबोधि सः ॥३॥

[अन्वयः] विभुः सः पुरा त्विषां चय इति अवधारितं, ततः विभाविताकृतिं शरीरी इति, विभक्तावयवं पुमान् इति (अवधारितं) अमुं क्रमात् नारद इति अबोधि ॥ ३ ॥

[सुबोधिनी] विभुः (वस्तुतत्त्वावधारणसमर्थः) सः (हरिः) पुरा (प्रथमदर्शने) त्विषां (तेजसां) चयः (राशिः) इति, अवधारितं (निश्चितं) ततः (किञ्चिदधिकं प्रत्यासन्ने) विभाविताकृतिं (लक्षितमूर्तिं) शरीरी (वपुष्मान्) इति, ततः (तदनन्तरं)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विभक्तावयवं (विचारपूर्वकविज्ञातमुखाद्यङ्गम्) पुमान् (पुरुषः) इति, अवधारितं (निश्चितं) अमुं (अम्बरात् अवतरन्तं कञ्चित् व्यक्तिविशेषं) क्रमात् (सामान्यविशेषज्ञानक्रमेण) नारद इति, अबोधि (ज्ञातवान्) ॥ ३ ॥

[समासः] विभाविता आकृतिर्यस्य तं। विभक्तावयवं=विभक्ता अवयवा यस्य सः तम्। शरीरी=शरीरमस्त्यस्य इति शरीरी ॥ ३ ॥

[कोषः] गात्रं वपुः संहननं शरीरं वर्ष्म विग्रहः, इत्यमरः ॥ ३ ॥

[व्याकरणम्] चयः=चि+भावे अच्। अवधारितं= अव+धृ+णिच्+क्त। शरीरी=शरीर+मत्वर्थे इनि। अबोधि=बुध+कर्तरि लुङ्+त। चयः, शरीरी, पुमान्, नारद इत्यादौ सर्वत्र इति शब्दयोगे प्रथमा ॥ ३ ॥

[वाच्यान्तरम्] विभुना तेन अवधारितः असौ नारदः इति अबोधि ॥

[सरलार्थ] हरिः प्रथमं तं दृष्ट्वा देहवानित्यवधारितवान् ततः पुनरपि निकटतरमागते सति पुरुष इत्यवधारितवान्। एवं क्रमेण तं नारद इति ज्ञातवान् ॥ ३ ॥

[भावार्थ] भगवान् हरिने सर्वप्रथम तेजःपुञ्ज समझे हुए, उसके बाद और नीचे उतरने पर कुछ कुछ हस्तपादादि अवयवोंके झलकनेसे देहधारी समझे हुए, अनन्तर और नीचे उतरने पर मुखादि अवयवोंके स्पष्ट मालूम होनेसे पुरुष समझे हुए इनको क्रमसे नारद मुनि समझा ॥३॥

नवानधोऽधो बृहतः पयोधरान् समूढकर्पूरपरागपाण्डुरम्।
क्षणं क्षणोत्क्षिप्तगजेन्द्रकृत्तिना स्फुटोपमं भूतिसितेन शम्भुना ॥

[अन्वयः] नवान् बृहतः पयोधरान् अधोऽधः (स्थितं) समूढकर्पूरपरागपाण्डुरं क्षणं क्षणोत्क्षिप्तगजेन्द्रकृत्तिना भूतिसितेन शम्भुना स्फुटोपमम् (अमुं नारद इत्यबोधीति पूर्वेणान्वयः) ॥ ४ ॥

[सुबोधिनी] नवान् (नवीनान्, अतिनीलानित्यर्थः) बृहतः (पृथुलान्) पयोधरान् (मेघान्) अधोऽधः (समीपाधःप्रदेशे) स्थितं समूढकर्पूरपरागपाण्डुरं (पुञ्जीकृतकर्पूरचूर्णवत् शुभ्रवर्णं) क्षणं

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(मेघस्य अधोऽवस्थानक्षण इत्यर्थः) क्षणोत्क्षिप्तगजेन्द्रकृत्तिना (ताण्डवोत्सवे उपरिधारितस्वोत्तरीयभूतकरिराजचर्म्मणा) भूतिसितेन (भस्मना अधिकतरशुभ्रेण) शम्भुना (शिवेन) स्फुटोपमम् (सुस्पष्टसादृश्यम्) ॥४॥

[समासः] पयांसि धरन्तीति पयोधरास्तान् । पाण्डु वर्णविशेषः अस्त्यस्य इति पाण्डुरः, कपूरस्य परागः कर्पूरपरागः समूढः कर्पूरपरागः, समूढकर्पूरपरागः, स इव पाण्डुरस्तम् । क्षणेषु उत्क्षिप्ता गजेन्द्रस्य कृत्तिर्येन तेन । स्फुटा उपमा यस्य तं । भूत्या सितः भूतिसितः तेन ॥ ४ ॥

[कोषः] विशङ्कटं पृथु बृहद्विशालं पृथुलं महत्, अजिनं चर्मकृत्ति स्त्री, भूतिर्भसितभस्मनोल्याद्यमराः ॥ ४ ॥

[व्याकरणम्] पयोधरान् = अधोऽधः शब्दसंयोगे द्वितीया । क्षणं अत्यन्तसंयोगे द्वितीया ॥ ४ ॥

[वाच्यान्तरम्] समूढकर्पूरपरागपाण्डुरः शम्भुना स्फुटोपमः (असौ अबोधि) ॥ ४ ॥

[सरलार्थः] कर्पूरधवलवर्णः असौ नारदः यदा नवजलधराणामधस्तात् स्थितः तदा नृत्यावसरे मस्तकस्य उपरि उत्तोलितगजचर्म्मा शिव इव शोभां अलभत ॥ ४ ॥

[भाषार्थ] कर्पूरके समान शुभ्रवर्ण नारद जब नवीन मेघोंके नीचे आये तब उन्हें ताण्डवनृत्यके समय सिरपर गजासुरके चर्मको धारण किये शङ्करकी शोभा प्राप्त हुई ॥ ४ ॥

दधानमम्भोरुहकेसरद्युतीर्जटाः शरच्चन्द्रमरीचिरोचिषम् ।
विपाकपिङ्गास्तुहिनस्थलीरुहो धराधरेन्द्रं व्रततीततीरिव ॥ ५ ॥

[अन्वयः] अम्भोरुहकेसरद्युतीः जटाः दधानं शरच्चन्द्रमरीचिरोचिषम् (अत एव) विपाकपिङ्गाः तुहिनस्थलीरुहः व्रततीततीः दधानं धराधरेन्द्रं इव (अमुं अबोधि) ॥ ५ ॥

[सुबोधिनी] अम्भोरुहकेसरद्युतीः (कमलकिञ्जल्कप्रभाः) जटाः (सटाः) दधानं (धारयन्तं) शरच्चन्द्रमरीचिरोचिष (स्वयं, शारदश

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शधरकिरणावदातवर्णम्) अत एव, विपाकपिङ्गाः (परिपाकेन पिङ्गलवर्णाः) तुहिनस्थलीरुहः (तुषारभूमिसमुत्पन्नाः) व्रततीततीः (लतासमूहान्) "दधानं" धराधरेन्द्रं (नगराज हिमालयं) इव ॥ ५ ॥

[समासः] अम्भसि रोहतीति अम्भोरुहं, तस्य केसराः तेषां द्युतिरिव द्युतिर्यासान्ताः अम्भोरुहकेसरद्युतयः ताः । शरदः चन्द्रः शरच्चन्द्रः तस्य मरीचयः, त इव रोचिर्यस्य सः शरच्चन्द्रमरीचिरोचिः तम् । विपाकेन पिङ्गा विपाकपिङ्गाः । तुहिनस्य स्थली तुहिनस्थली, तस्यां रोहन्ति ताः । व्रततीनां ततयः व्रततीततयस्ताः । धरन्तीतिधरा, धराया धराः धराधरास्तेषां इन्द्रः तम् । धत्तेऽसौ दधानस्तम् ॥ ५ ॥

[कोषः] किञ्जल्कः केसरोऽस्त्रियाम्, स्युः प्रभारुग्रुचिस्त्विड्भाभाश्छविद्युतिदीप्तयः तुषारं तुहिनं हिममित्याद्यमराः ॥ ५ ॥

[व्याकरणम्] दधानम् = धा + शानच् ॥ ५ ॥

[वाच्यान्तरम्] जटाः दधानः शरच्चन्द्रमरीचिरोचिः, विपाकपिङ्गाः तुहिनस्थलीरुहः व्रततीततीः दधानः धराधरेन्द्रः इव (असौ अबोधि) ॥ ५ ॥

[सरलार्थः] धवलवर्णोऽसौ नारदः पिङ्गलवर्णाः जटाः धारयन्, तुषारभूमौ उत्पन्ना विपाकेन पिङ्गलवर्णा लता धारयन् हिमाचल इव बभौ ॥ ५ ॥

[भाषार्थ] पीली और लटकती हुई जटाको धारण करने वाले शरच्चन्द्रके समान शुभ्र नारद, तुषारभूमिमें उत्पन्न, परिपाकसे पीलेवर्णकी लताको धारणकरनेवाले हिमाचलकी तरह शोभा को प्राप्त हुए ॥ ५ ॥

पिशङ्गमौञ्जीयुजमर्जुनच्छविं वसानमेणाजिनमञ्जनद्युति ।
सुवर्णसूत्राकलिताधराम्बरां विडम्बयन्तं शितिवाससस्तनुम् ॥

[अन्वयः] पिशङ्गमौञ्जीयुजं अर्जुनच्छविं अञ्जनद्युति एणाजिनं वसानं (अत एव) सुवर्णसूत्राकलिताधराम्बरां शितिवाससः तनुं विडम्बयन्तम् ॥ ६ ॥

[सुबोधिनी] पिङ्गलमौञ्जीयुजं (पिङ्गलवर्णा या मुञ्जमयी मेखला तया युतम्) अर्जुनच्छविं (धवलकान्ति) अञ्जनद्युति (कृष्णवर्णं) एणा-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जिनं (मृगचर्मं) वसानं (परिदधानं) अत एव, सुवर्णसूत्राकलिताधराम्बरां (कनकमेखलया बद्धपरिधेयवसनाम्) शितिवाससः (नीलाम्बरस्य बलरामस्य) तनुं (शरीरं) विडम्बयन्तम् (अनुकुर्वन्तम्) ॥ ६ ॥

[समासः] मुञ्जस्य विकारः मौञ्जी (मुञ्जनिर्मिता मेखला) पिशङ्गी चासौ मौञ्जी पिशङ्गमौञ्जी, तया युज्यत इति पिशङ्गमौञ्जीयुक् तं । अर्जुना (धवला) छविर्यस्य तं । अञ्जनस्य (कज्जलस्य) द्युतिरिव द्युतिर्यस्य तत् । एणस्य अजिनं तत् । सुवर्णस्य सूत्रं सुवर्णसूत्रं, अधरं अम्बरं अधराम्बरं, सुवर्णसूत्रेण आकलितं अधराम्बरं यस्यास्तां । शिति वासः यस्य तस्य । विडम्बयतीति तं विडम्बयन्तम् ॥ ६ ॥

[कोषः] वलक्षो धवलोऽर्जुनः, गोकर्णपृषतैणर्श्यरोहिताश्चमरो मृगाः. इत्यमरः ॥ ६ ॥

[व्याकरणम्] वसानं = वस + शानच् । विडम्बयन्तं = वि = डम्ब + णिच् + शतृ ॥ ६ ॥

[वाच्यान्तरम्] पिशङ्गमौञ्जीयुक् अर्जुनच्छविः अञ्जनद्युति एणाजिनं वसानः (अत एव) शितिवाससः तनुं विडम्बयन् ॥ ६ ॥

[सरलार्थः] स्वयं धवलवर्णोऽसौ नारदः मुञ्जमय्या मेखलया बद्धं कृष्णसारमृगचर्म परिदधानः, कनकमेखलयाऽऽबद्धं नीलाम्बरं परिदधानो जलराम इव बभौ ॥ ६ ॥

[भावार्थ] मूंजके पीले करधनसे बँधे हुए कृष्णमृगके चर्मको धारणकरनेवाले नारद, सोनेके करधनसे बँधे नीलाम्बरको धारण करने वाले बलरामकी शोभाको प्राप्त हुए ॥ ६ ॥

विहङ्गराजाङ्गरुहैरिवायतैर्हिरण्मयोर्वीरुहवल्लितन्तुभिः ।
कृतोपवीतं हिमशुभ्रमुच्चकैर्घनं घनान्ते तडितां गणैरिव ॥ ७ ॥

[अन्वयः] विहङ्गराजाङ्गरुहैः इव आयतैः हिरण्मयोर्वीरुहवल्लितन्तुभिः कृतोपवीतं हिमशुभ्रं (अत एव) घनान्ते तडितां गणैः (उपलक्षितं) उच्चकैः घनम् इव ॥ ७ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

[सुबोधिनी] विहङ्गराजाङ्गरुहैः (गरुडरोमभिः) इव, आयतैः (दीर्घैः) हिरण्मयोर्वीरुहवल्लितन्तुभिः (सुवर्णमय्यां भूमौ समुत्पन्नलतासूत्रैः) कृतोपवीतं (रचितयज्ञसूत्रं) हिमशुभ्रं (स्वयं च तुषारधवलवर्णं) अत एव, घनान्ते (शरदि) तडितां गणैः (विद्युतां समूहैः) "उपलक्षितं" उच्चकैः (उन्नतं) घनं (मेघं इव) स्थितम् ॥

[समास] रोहन्ति=जायन्ते इति रुहाः, अङ्गे रुहाः अङ्गरुहाः, विहायसा गच्छन्तीति विहङ्गाः, विहङ्गानां राजा विहङ्गराजः तस्य अङ्गरुहास्तैः । हिरण्यस्य विकारः हिरण्मयी हिरण्मयी च असौ उर्वी हिरण्मयोर्वी, तस्यां रोहन्तीति हिरण्मयोर्वीरुहाः हिरण्मयोर्वीरुहाश्च ता वल्ल्यश्च हिरण्मयोर्वीरुहवल्ल्यस्तासां तन्तवस्तैः । कृतं उपवीतं येन सः तं । हिममिव शुभ्रस्तं । घनानां अन्तो घनान्तस्तस्मिन् । उच्चैरेव उच्चकैः ॥ ७ ॥

[कोषः] दीर्घमायतम्, वल्लीतु व्रततिर्लता, इत्याद्यमरः ॥ ७ ॥

[व्याकरणम्] आयतैः = आ = यम् + क्त । उच्चकै = उच्चैरित्यव्ययशब्दात् "अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक्टे-" रिति स्वार्थे अकच् । गणैः = इत्थंभूतलक्षणे तृतीया ॥ ७ ॥

[वाच्यान्तरम्] कृतोपवीतः हिमशुभ्रः असौ उच्चकैः घनः इव (अबोधि) ॥ ७ ॥

[सरलार्थः] धवलवर्णोऽसौ नारदः सुवर्णवर्णसूत्रैः रचितं यज्ञोपवीतं धारयन्, विद्युल्लेखालङ्कृतशरद्घनस्य शोभामलभत ॥ ७ ॥

[भाषार्थ] सुवर्णके यज्ञोपवीतको धारणकरनेवाले नारद बिजलीको रेखासे युक्त शरत् कालीनमेघको शोभाको प्राप्तहुए ॥

निसर्गचित्रोज्ज्वलसूक्ष्मपक्ष्मणा लसद्बिसच्छेदसिताङ्गसङ्गिना ।
चकासतं चारु चमूरुचर्मणा कुथेन नागेन्द्रमिवेन्द्रवाहनम् ॥ ८ ॥

[अन्वयः] निसर्गचित्रोज्ज्वलसूक्ष्मपक्ष्मणा लसद्बिसच्छेदसिताङ्गसङ्गिना चारु चमूरुचर्म्मणा कुथेन इन्द्रवाहनं नागेन्द्रम् इव चकासतम् ॥८॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

[सुबोधिनी] निसर्गचित्रोज्ज्वलसूक्ष्मपक्ष्मणा (स्वाभाविकविविधोज्ज्वलाणुरोम्णा) "तथा" लसद्बिसच्छेदसिताङ्गसङ्गिना (शोभमानमृणालखण्डवच्छुभ्रशरीरसंसक्तेन) चारुचमूरुचर्म्मणा (सुन्दरमृगचर्मणा) कुथेन (पृष्ठास्तरणेन) इन्द्रवाहनं, नागेन्द्रं (करिराजशुभ्रवर्णत्वेन प्रसिद्धं ऐरावतं) इव चकासतं (शोभमानम्) ॥ ८ ॥

[समासः] चित्राणि च उज्जवलानि च चित्रोज्ज्वलानि, (विविधवर्णभासुराणि) तानि च तानि सूक्ष्माणि चित्रोज्वलसूक्ष्माणि, निसर्गेण चित्रोज्वलसूक्ष्माणि पक्ष्माणि यस्य तेन । बिसस्य च्छेदः बिसच्छेदः, लसन् बिसच्छेद इति लसद्बिसच्छेदः, स इव सितं लसद्बिसच्छेदसितं, तच्च तदङ्गं लसद्बिसच्छेदसिताङ्गं तस्मिन् सङ्गोऽस्यास्तीति तेन । चमूरोः चर्म चमूरुचर्म, चारु च तत् चमूरुचर्म चारुचमूरुचर्म तेन । नागानां इन्द्रो नागेन्द्रस्तं । वाह्यतेऽनेन वाहनं इन्द्रस्य वाहनं, तत् इन्द्रवाहनम् ॥

[कोषः] स्वरूपञ्च स्वभावश्च निसर्गश्च, मृणालं बिसम्, इत्यमरः ॥ ८ ॥

[व्या०] चकासतं = चकास् + शतृ । वाहनं = वह् + णिच् + ल्युट् ॥

[वाच्यान्तरम्] कुथेन इन्द्रवाहनः नागेन्द्रः इव चकासत् ॥ ८ ॥

[सरलार्थः] नारदस्य धवले अङ्गे उत्तरीयरूपेण धारितं चमूरुमृगचर्म्म आसीत्, अतस्तेनायं पृष्ठास्तरणाच्छादित ऐरावत इव शुशुभे ॥ ८ ॥

[भाषार्थ] रत्ननिर्मित झूलकी कान्तिसे इन्द्रके वाहन नागेन्द्रकी तरह नारदमुनिभी चमकीले और रंगविरंगी कोमल रोम वाले चमूरुमृगके चर्मसे अत्यन्त शोभाको प्राप्त हुए ॥ ८ ॥

अजस्रमास्फालितवल्लकीगुणक्षतोज्ज्वलांगुष्ठनखांशुभिन्नया ।
पुरः प्रवालैरिव पूरितार्द्धया विभान्तमच्छस्फटिकाक्षमालया ॥

[अन्वयः] अजस्रं आस्फालितवल्लकीगुणक्षतोज्ज्वलाङ्गुष्ठनखांशुभिन्नया पुरः प्रवालैः पूरितार्द्धया इव अच्छस्फटिकाक्षमालया विभान्तं (अमुं, नारद इति अबोधि) ॥ ९ ॥

[सुबोधिनी] अजस्रं (अनवरतं) आस्फालितवल्लकीगुणक्षतो-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ज्ज्वलाङ्गुष्ठनखांशुभिन्नया (वादितवीणातन्त्रीसंघर्षणेन उज्ज्वलाङ्गुष्ठनख-किरणमिश्रया) पुरः (अग्रे) प्रवालैः (विद्रुमैः) पूरिताद्धया (प्रवेशिताद्धभागया) इव (यथा) अच्छस्फटिकाक्षमालया (निर्म्मलस्फटिकनिर्मितजपमालया) विभान्त (शोभमानम्) ॥ ९ ॥

[समासः] अङ्गुष्ठस्य नखः अङ्गुष्ठनखः, वल्लक्याः गुणाः वल्लकीगुणाः, आस्फालिताः वल्लकीगुणाः आस्फालितवल्लकीगुणाः, तेषां क्षतं आस्फालितवल्लकीगुणक्षतं, तेन उज्ज्वलः अंगुष्ठनखः आस्फालितवल्लकीगुणक्षतोज्ज्वलाङ्गुष्ठनखः, तस्य अंशवः तैः भिन्ना तया। पूरितं अर्द्धं यस्याः सा तया। अक्षाणां माला अक्षमाला, अच्छाः स्फटिकाः अच्छस्फटिकाः, तेषां अक्षमाला तया ॥ ९ ॥

[कोषः] नित्यानवरताजस्रम्, अथ विद्रुमः पुंसि प्रवालं पुंनपुंसकमित्याद्यमरः ॥ ९ ॥

[व्याकरणम्] अजस्रम् = न जस्यति मुञ्चति इति, नञ् + जस् + र। विभान्तं=वि + भा + शतृ ॥ ९ ॥

[वाच्यान्तरम्] अजस्रं विभान् (असौ नारद इत्यबोधि) ॥ ९ ॥

[सरलार्थः] नारदस्य करे या स्वच्छस्फटिकगुटिकानिर्मितजपमाला आसीत्, सा निरन्तरवीणावादने तन्त्रीसङ्घर्षणोत्पन्नघनीभूतरक्ताङ्गुष्ठनखप्रभया प्रवालपूरितार्द्धा इव शुशुभे ॥ ९ ॥

[भावार्थ] निरन्तर वीणाको बजाते रहनेसे अंगूठेका रक्त नखके समीप आकर जमगया था, इसलिये स्फटिककी माला फेरते समय उस पर अंगूठा रखनेसे उसकी कान्ति स्फटिकके अगले हिस्सेमें प्रतिबिम्बित हुआ करती थी, इससे ऐसा मालूम होता था कि मानों स्फटिकके आधे हिस्सेमें लाल मूंगा जड़ा हुआ है ॥ ९ ॥

रणद्भिराघट्टनया नभस्वतः पृथग्विभिन्नश्रुतिमण्डलैः स्वरैः।
स्फुटीभवद्ग्रामविशेषमूर्च्छनामवेक्षमाणं महतीं मुहुर्मुहुः ॥१०॥

(अन्वयः) नभस्वतः आघट्टनया पृथक् रणद्भिः विभिन्नश्रुति-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मण्डलैः स्वरैः स्फुटीभवद्ग्रामविशेषमूर्च्छनां महतीं मुहुर्मुहुः अवेक्षमाणम् ॥ १० ॥

(सुबोधिनी) नभस्वतः (पवनस्य) आघट्टनया (आघातेन) पृथक् (असम्मिश्रं यथा स्यात् तथा) रणद्भिः (ध्वनद्भिः, तादृशध्वन्युत्पन्नैरित्यर्थः) विभिन्नश्रुतिमण्डलैः (प्रतिनियतसंख्यया व्यवस्थितस्वरारम्भकशब्दविशेषसमूहैः) स्वरैः (सा-रि-ग-म-प-ध-नीति प्रसिद्धैः षड्जादिभिः) स्फुटीभवद्ग्रामविशेषमूर्च्छनां (व्यक्तीभवत्स्वरसंघातारोहावरोहक्रमभेदां) महतीं (महतीनाम्नीं निजवीणां) मुहुर्मुहुः (पुनः पुनः) अवेक्षमाणम् (पश्यन्तम्) ॥ १० ॥

[समासः] श्रुतीनां मण्डलानि, श्रुतिमण्डलानि, विभिन्नानि श्रुतिमण्डलानि येषां तैः । स्फुटीभवद्ग्रामविशेषमूर्च्छनां=ग्रामाणां विशेषाः ग्रामविशेषाः तेषां मूर्च्छनाः ग्रामविशेषमूर्च्छनाः, न स्फुटाः अस्फुटाः, अस्फुटाः स्फुटाः सम्पद्यमाना भवन्त्यः स्फुटीभवन्त्यः, स्फुटीभवन्त्यः ग्रामविशेषमूर्च्छनाः यस्यां सा ताम् ॥१०॥

[कोषः] नभस्वद्वातपवनपवमानप्रभञ्जनाः, इत्यमरः ॥ १० ॥

[व्याकरणम्] रणद्भिः=रण+शतृ । अवेक्षमाणं = अव + ईक्ष + शानच् । आघट्टनया = आ = घट्ट + णिच् स्वार्थे + युच् । स्फुटीभवन्त्यः = अस्फुटाः स्फुटाः सम्पद्यमाना भवन्त्यः इति स्फुटीभवन्त्यः = स्फुट + च्वि + भू + शतृ + ङीप् ।

[वाच्यान्तरम्] महतीं मुहुर्मुहुः अवेक्षमाणः (असौ अबोधि) ॥१०॥

[सरलार्थः] विश्वावसोस्तु बृहती तुम्बुरोस्तु कलावती । महती नारदस्य स्यात्सरस्वत्यास्तु कच्छपीत्याकरवचनान्नारदस्य महती नाम या वीणा आसीत्, तस्यां तदानीमङ्गुलिसंयोगमन्तरेणैव वायोराघातात् वाद्यमानेभ्यः श्रुतिसमूहेभ्यः उत्पन्नैः षड्जादिभिः सप्तभिः स्वरैः सुस्पष्टं ग्रामविशेषमूर्च्छनाः सञ्जायन्ते स्म, अतः साश्चर्यं नारदस्तां वीणां निरीक्षाञ्चक्रे ॥ १० ॥

[भाषार्थ] वायुके आघातसे उत्पन्न वीणाके तारोंकी झनझनाहटमें पृथक् पृथक् मालूम होनेवाले सा-रि-ग-म-प-ध-नी आदि सात स्वरों

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

डी. जी. ग्रन्थागार एवं ... १५-७-७४

द्वारा आरोहावरोहक्रमभेदको बतानेवाली महती नामकी निज वीणाको बारंबार सकौतुक देखते हुए ॥१०॥

निवर्त्य सोऽनुव्रजतः कृताननतीनतीन्द्रियज्ञाननिधिर्नभस्सदः।
समासदत् सादितदैत्यसम्पदः पदं महेन्द्रालयचारु चक्रिणः ११

[अन्वयः] अतीन्द्रियज्ञाननिधिः सः कृताननतीन् अनुव्रजतः नभःसदः निवर्त्य सादितदैत्यसम्पदः चक्रिणः महेन्द्रालयचारु पदं समासदत् ॥ ११ ॥

[सुबोधिनी] अतीन्द्रियज्ञाननिधिः (चक्षुरादीन्द्रियागोचरस्सर्ववस्तुद्रष्टा) सः (मुनिर्नारदः) कृताननतीन् (कृतप्रणामान्) अनुव्रजतः (अनुगच्छतः) नभःसदः (देवान्) निवर्त्य (परावर्त्य) सादितदैत्यसम्पदः (विध्वस्तीकृतदैत्यगणैश्वर्यस्य) चक्रिणः (सुदर्शनचक्रधरस्य श्रीकृष्णस्य) महेन्द्रालयचारु (इन्द्रभवनवत् सुन्दरम्) पदं (स्थानं, वासभवनं) समासदत् (प्राप्तवान्) ॥ ११ ॥

[समासः] कृता आनतयो यैः तान्। इन्द्रियाण्यतिक्रान्ता अतीन्द्रियाः। (पदार्थाः) तेषां ज्ञानं तस्य निधिः। नभसि सीदन्ति ये ते तान्। दैत्यानां सम्पदो दैत्यसम्पदः, सादिताः दैत्यसम्पदो येन तस्य। महान् इन्द्रो महेन्द्रः, तस्य आलयः महेन्द्रालयः, स इव चारु तत्। चक्रमस्य अस्ति इति चक्री तस्य ॥ ११ ॥

[कोषः] पदं व्यवसितत्राणस्थानलक्ष्माङ्घ्रिवस्तुषु ॥ ११ ॥

[व्याकरणम्] निवर्त्य = नि + वृत् + णिच् + ल्यप्। अनुव्रजतः = अनु + व्रज + शतृ। कृताननतीन् = कृत = आ + नम् = क्तिन्। समासदत् सम् + आ + सद् + लुङ् + तिप्। चक्रिणः = चक्र + इनि ॥ ११ ॥

[वाच्यान्तरम्] अतीन्द्रियज्ञाननिधिना तेन कृताननतीन् नभःसदः निवर्त्य सादितदैत्यसम्पदः चक्रिणः महेन्द्रालयचारु पदं समासादि ॥ ११ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

[सरलार्थः] ये देवाः त्रिदिवात् तमनुगच्छन्ति स्म, सर्वदर्शी नारदः कृतप्रणामान् तान् निवर्त्य इन्द्रभवनोपमं श्रीकृष्णभवनमाजगाम ॥ ११ ॥

[भावार्थ] दिव्यदृष्टि महामुनि नारद नमस्कार किए हुए अनुगामी देवताओंको लौटाकर इन्द्रभवनके समान सुन्दर श्रीकृष्णभगवान्के वास-भवनमें आये ॥ ११ ॥

पतत्पतङ्गप्रतिमस्तपोनिधिः पुरोऽस्य यावन्न भुवि व्यलीयत ।
गिरेस्तडित्वानिव तावदुच्चकैर्जवेन पीठादुदतिष्ठदच्युतः ॥१२॥

[अन्वयः] पतत्पतङ्गप्रतिमः तपोनिधिः अस्य पुरः भुवि यावत् न व्यलीयत, तावत् अच्युतः गिरेः तडित्वान् इव उच्चकैः पीठात् जवेन उदतिष्ठत् ॥ १२ ॥

[सुबोधिनी] पतत्पतङ्गप्रतिमः (आकाशात् प्रभ्रश्यन् सूर्य इव) तपोनिधिः (मुनिर्नारदः) अस्य (कृष्णस्य) पुरः, भुवि (सम्मुखवर्तिनि स्थाने) यावत् न व्यलीयत (न आतिष्ठत्) तावत् (श्रीकृष्णः) गिरेः (पर्वतात्) तडित्वान् (जलधरः) इव, उच्चकैः (समुन्नतात्) पीठात् (आसनात्) जवेन (वेगेन) उदतिष्ठत् (उत्थितो बभूव) ॥ १२ ॥

[समासः] पतत्पतङ्गप्रतिमः=पतँश्चासौ पतङ्गश्चेति पतत्पतङ्गः, सः प्रतिमा यस्य सः पतत्पतङ्गप्रतिमः । तपोनिधिः=तपसां निधिः तपोनिधिः॥१२॥

[कोषः] पतङ्गौ पक्षिसूर्यौ च । धाराधरो जलधरस्तडित्वान्वारिदोऽम्बुभृत् ॥ १२ ॥

[व्याकरणम्] व्यलीयत—वि=ली+लङ्+त । उदतिष्ठत्—उद=स्था+लङ्—ति । पतत्—पत्+शतृ ॥ १२ ॥

[वाच्यान्तरम्] पतत्पतङ्गप्रतिमेन तपोनिधिना.................अच्युतेन गिरेः तडित्वता इव उच्चकैः पीठात् जवेनोदस्थीयत ॥ १२ ॥

[सरलार्थः] तेजःपुञ्जस्य नारदस्य संमुखागमनसमकालमेव श्रीकृष्णः स्वागतकरणाय तथातिसत्वरं स्वासनादुदतिष्ठत्, यथा नारदभूस्पर्शश्रीकृष्णोत्थानयोः पौर्वापर्यं न केऽपि ज्ञातुं लेभिरे ॥ १२ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

[भाषार्थं] आकाशसे गिरते हुए सूर्यके समान अतितेजस्वी महामुनि नारदने इनके सामने भूमि पर पैर रक्खा या नहीं कि इतनेहीमें पहाड़की ऊँची चोटीसे मेघकी तरह, ऊँचे आसन से भगवान् श्रीकृष्ण उठ खड़े हुए। १२ ॥

अथ प्रयत्नोन्नमितानमत्फणैर्धृते कथञ्चित्फणिनां गणैरधः ।
न्यधायिषातामभिदेवकीसुतं सुतेन धातुश्चरणौ भुवस्तले ॥ १३ ॥

[अन्वयः] अथ धातुः सुतेन प्रयत्नोन्नमितानमत्फणैः फणिनां गणैः अधः कथञ्चित् धृते भुवः तले अभिदेवकीसुतं चरणौ न्यधायिषाताम् ॥१३॥

[सुबोधिनी] अथ (अच्युतस्य अभ्युत्थानानन्तरं) धातुः सुतेन (ब्रह्मणः मानसपुत्रेण नारदेन) प्रयत्नोन्नमितानमत्फणैः (प्रयासोर्ध्वधृतनिम्नीभवत्फणैः) फणिनां गणैः (नागानां समूहैः) अधः (अधस्मिन् देशे) कथञ्चित् (महता प्रयासेन) धृते (स्थापिते) भुवः तले (पृथ्वीतले) अभिदेवकीसुतं (देवकीसुतं लक्षीकृत्य, श्रीकृष्णस्य पुरत इत्यर्थः) चरणौ (पादौ) न्यधायिषाताम् (निहितौ) । १३ ॥

[समासः] प्रयत्नेन उन्नमिताः आनमन्त्यः फणा येषां तैः, फणिनां=फणाः सन्त्येषां तेषां । देवकीसुतं अभि इत्यभिदेवकीसुतम् ॥ १३ ॥

[कोषः] स्फटायां तु फणा द्वयोरित्यमरः ॥ १३ ॥

[व्याकरणम्] फणिनां = फण + इनि । अभिदेवकीसुतं = अव्ययीभावः ॥

[वाच्यान्तरम्] अथ धातुः सुतः...... अभिदेवकीसुतं चरणौ न्यधात् ॥

[सरलार्थः] श्रीकृष्णस्य अभ्युत्थानानन्तरं नारदः पृथिव्यां श्रीकृष्णस्य पुरतः चरणौ न्यधात् ॥ १३ ॥

[भाषार्थ] बड़े प्रयत्नसे उठाई हुई फणाओं पर धारण किये हुए भूतल पर श्रीकृष्णके सामने महामुनि नारद खड़े हुए। १३ ॥

तमर्घ्यमर्घ्यादिकयादिपूरुषः सपर्यया साधु स पर्यपूपुजत् ।
गृहानुपैतुं प्रणयादभीप्सवो भवन्ति नापुण्यकृतां मनीषिणः ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

[अन्वयः] आदिपूरुषः सः अर्घ्यं तं अर्घ्यादिक्रया सपर्य्यया साधु पर्य्यपूपुजत्। मनीषिणः अपुण्यकृतां गृहान् प्रणयात् उपैतुं अभीप्सवः न भवन्ति ॥ १४ ॥

[सुबोधिनी] आदिपूरुषः (पुराणपुरुषः) सः (श्रीकृष्णः) अर्घ्यं (पूज्यं) तं (नारदं) अर्घ्यादिकया (अर्घ्यपूर्विकया) सपर्य्यया (पूजया) साधु (यथाशास्त्रं) पर्य्यपूपुजत् (परिपूजितवान्) मनीषिणः (विद्वांसः) अपुण्यकृतां (सुकृतमकृतवतां) गृहान् (गृहाणि) प्रणयात् (स्नेहात्) उपैतुं, (प्राप्तुं, गन्तुमित्यर्थः) अभीप्सवः (अभिलाषुकाः) न भवन्ति ॥१४॥

[समासः] आदिश्चासौ पूरुषः आदिपूरुषः। अर्घं=पूजां अर्हतीति अर्घ्यः तम्। अर्घ्यं आदिर्यस्याः सा अर्घ्यादिका तया। मनसः ईषिणः मनीषिणः। पुण्यं कृतवन्त इति पुण्यकृतः न पुण्यकृतः अपुण्यकृतस्तेषां ॥ १४ ॥

[कोषः] पूजा नमस्यापचितिः सपर्य्यार्चार्हणाः समाः ॥ १४ ॥

[व्याकरणम्] अर्घ्यादिकया="शेषाद्विभाषा" इति विकल्पेन कप् प्रत्ययः=अर्घ्यं=अर्घ+यत्। पर्य्यपूपुजत्=परि+पूज+णिच्+लुङ्+तिप्। मनीषिणः=ईषन्ते इति ईषिणः=ईष+णिनि। उपैतुं=उप+आ+ई+तुमुन्। भवन्ति=भू+लट्+अन्ति ॥ १४ ॥

[वाच्यान्तरम्] आदिपूरुषेण तेन अर्घ्यः सः साधु पर्य्यपूजि। मनीषिभिः अपुण्यकृतां गृहान् प्रणयात् उपैतुं अभीप्सुभिः न भूयते ॥ १४ ॥

[सरलार्थः] नारदस्य उपवेशनानन्तरं पुराणपुरुषः श्रीकृष्णः तं यथाविधि अर्घ्यप्रदानपूर्वकं अपूपुजत्। साधवः सुकृत-मकृतवतां दुरात्मनामतिथिसत्कार गृहीतुं विमनस्का एव जायन्ते ॥ १४ ॥

(भाषार्थ) भगवान् श्रीकृष्णने पूजनीय नारद महामुनिकी यथाविधि पूजाकी, ठीकही है सत्पुरुष, पुण्यकर्म नहीं करनेवालोंके यहाँ जाना नहीं चाहते ॥ १४ ॥

न यावदेतावुदपश्यदुत्थितौ जनस्तुषाराञ्जनपर्वताविव।
स्वहस्तदत्ते मुनिमासने मुनिश्चिरन्तनस्तावदभिन्यवीविशत् ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

[अन्वयः] जनः, उत्थितौ एतौ, तुषाराञ्जनपर्वतौ, इव, यावत्, न, उदपश्यत्, तावत्, चिरन्तनः, मुनिः, स्वहस्तदत्ते, आसने, मुनिं, अभिन्यवीविशत् ॥ १५ ॥

[सुबोधिनी] जनः (साधारणजनः) उत्थितौ (आसनादुत्तिष्ठमानौ) एतौ (नारदश्रीकृष्णौ) तुषाराञ्जनपर्वतौ (तुहिनकज्जलाचलौ) इव (यथा) यावत् न उदपश्यत् (नोत्प्रेक्षितवान्) तावत्, चिरन्तनः (सनातनः) मुनिः (श्रीकृष्णः) स्वहस्तदत्ते (स्वकरकलिते) आसने (विष्टरे) मुनिं (नारदं) अभिन्यवीविशत् (स्वसम्मुखे उपवेशितवान्) ॥१५॥

[समासः] तुषाराञ्जनपर्वतौ—तुषारश्च अञ्जनञ्च तुषाराञ्जने तयोः पर्वतौ । स्वहस्तदत्ते—स्वः हस्तः स्वहस्तः, स्वहस्तेन दत्तं स्वहस्तदत्तं तस्मिन् ॥१५॥

[कोषः] तुषारं तुहिनं हिमम् । विष्टरो विटपीदर्भमुष्टिः पीठाद्यमासनम् ॥

[व्याकरणम्] उदपश्यत्—उद्+दृश+लङ्+तिप् । उत्थितौ—उद्+स्था+क्त । आसनं आस्यते अस्मिन् इति, आस् ल्युट् । चिरन्तनः—चिरं भवः चिरन्तनः—चिरम्+ट्यु=चिरन्+तुट्—ट्यु=चिरन्तनः । अभिन्यवीवीशत्—अभि+नि+विश्+णिच्+लुङ्+तिप् ॥१५॥

[वाच्यान्तरम्] जनेन उत्थितौ एतौ तुषाराञ्जनपर्वतौ इव यावत् न उददृश्येतां तावत् चिरन्तनेन मुनिना मुनिः स्वहस्तदत्ते आसने अभिन्यवेशि ॥

[सरलार्थः] स्वासनादुत्थितयोः हिमकज्जलसदृशयोः नारदकृष्णयोः लोके अवलोकितवति एव पुराणपुरुषः कृष्णः स्वहस्तेन स्थापिते आसने नारदं उपवेशयामास ॥ १५ ॥

[भावार्थ] लोग, खड़े हुए नारद और श्रीकृष्णको अञ्जन और हिमपर्वतकी तरह देखही रहे थे कि भगवान् श्रीकृष्णनें उनको अपने दिये हुए आसन पर बैठाया ॥ १५ ॥

महामहानीलशिलारुचः पुरो निषेदिवान् कंसकृषः स विष्टरे ।
श्रितोदयाद्रेरभिसायमुच्चकैरचूचुरच्चन्द्रमसोऽभिरामतां ॥१६॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

[अन्वयः] महामहानीलशिलारुचः कंसकृषः पुरः उच्चैः विष्टरे निषेदिवान् सः अभिसायं श्रितोदयाद्रेः चन्द्रमसः अभिरामतां अचूचुरत् ॥ १६ ॥

[सुबोधिनी] महामहानीलशिलारुचः (सिंहलद्वीपसंभवेन्द्रनीलोत्पलरुचः) तथाच भगवानगस्त्यः—"सिंहलस्थाकरोद्भूता महानीलास्तु ते स्मृताः।" कंसकृषः (कंसासुरनाशकस्य, कृष्णस्य) पुरः (अग्रे) उच्चैः (उन्नते) विष्टरे (आसने) निषेदिवान् (उपविष्टः) सः (नारदः) अभिसायं (सायङ्कालाभिमुखं) श्रितोदयाद्रेः (प्राप्तोदयाचलस्य) चन्द्रमसः (कुमुदिनीनायकस्य चन्द्रस्य) अभिरामतां (सौन्दर्यं) अचूचुरत् (चोरितवान्) ॥ १६ ॥

[समासः] महानीला असौ शिला इति महानीलशिला महती च असौ महानीलशिला, महामहानीलशिला, तस्या रुगिव रुक् यस्य स तस्य। अभि=समन्तात् रमन्ते जना अस्मिन्नित्यभिरामस्तस्य भावः अभिरामता तां। कंसं कर्षतीति कंसकृट् तस्य। श्रितः उदयाद्रिः येन स तस्य ॥ १६ ॥

[कोषः] यत्रा तु विधिनेष्टवान्, मुहुः पुनः पुनः शश्वदभीक्ष्णमसकृत्समाः ॥ १६ ॥

[व्याकरणम्] निषेदिवान्—नि + सद् + क्वसु । विष्टर=वि + स्तृ + अप्। अभिसाय=सायं अभि इति अभिसायं (अव्ययीभावः) अचूचुरत=चुर + णिच् + लुङ + तिप्। अभिरामतां=अभि + रम + घञ् + ता ॥ १६ ॥

[वाच्यान्तरम्] निषेदुषा तेन अभिरामता अचोरि ॥ १६ ॥

[सरलार्थः] कृष्णवर्णस्य श्रीकृष्णस्य सम्मुखे उन्नत आसने उपविष्टः नारदः सायंकाले उदयाचलस्य पुरतो वर्तमानश्चन्द्र इव शुशुभे ॥ १६ ॥

[भाषार्थ] कृष्णवर्ण श्रीकृष्णके सामने ऊँचे आसनपर बैठे हुए नारद महामुनि सायंकाल उदयाचलके सामने स्थित चन्द्रमाकी शोभाको प्राप्त हुए ॥ १६ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विधाय तस्यापचितिं प्रसेदुषः प्रकाममप्रीयत यज्वनां प्रियः।
ग्रहीतुमार्यान् परिचर्य्यया मुहुर्महानुभावा हि नितान्तमर्थिनः॥

[अन्वयः] यज्वनां प्रियः प्रसेदुषः तस्य अपचितिं विधाय प्रकामं अप्रीयत। महानुभावाः आर्य्यान् परिचर्य्यया मुहुः ग्रहीतुं नितान्तं अर्थिनः भवन्ति हि ॥ १७ ॥

[सुबोधिनी] यज्वनां (यथाशास्त्रं इष्टवतां जनानां) प्रियः (प्रसन्नः हरिः) प्रसेदुषः (प्रसन्नस्य) तस्य (नारदस्य) अपचितिं (पूजां) विधाय (सम्पाद्य) प्रकामं (अत्यन्तं) अप्रीयत (प्रीतोऽभूत्, अर्थान्तरमुपन्यस्यति—

महानुभावाः (महात्मानः, सन्तः) आर्य्यान् (श्रेष्ठान्, पूज्यान्) परिचर्य्यया (सेवया) मुहुः ग्रहीतुं (पुनः पुनर्वशीकर्तुं) नितान्तं (अत्यर्थं) अर्थिनः (अभिलाषवन्तः) "भवन्ति" हि ॥ १७ ॥

[समासः] महानुभावाः=अनुगतः भावः अनुभावः। महान् अनुभावः अस्ति एषान्ते महानुभावाः। अर्थिनः=अर्थः "अभिलाषः" स अस्ति एषान्ते ॥ १७ ॥

[कोषः] आपः स्त्री भूम्नि वार्वारि सलिलं कमलं जलम् ॥ १७ ॥

[व्याकरणम्] विधाय=वि + धा + ल्यप्। अपचितिं=अप + चि + क्तिन् अप्रीयत=प्री + लङ् + त, ग्रहीतुं=ग्रह + तुमुन् ॥ १७ ॥

[वाच्यान्तरम्] यज्वनां प्रियेण प्रकामं अप्रीयत, महानुभावैः अर्थिभिः (भूयते) ॥ १७ ॥

[सरलार्थः] मुनिर्नारदः श्रीकृष्णस्य पूजया प्रसन्नो बभूव। आर्य्याः गृहागताः सन्तः पूजिता भवन्तु इति सदैव साधवोऽभिलपन्ति ॥ १७ ॥

[भाषार्थ] भगवान् श्रीकृष्ण प्रसन्न वदन नारद महामुनिकी पूजा कर अत्यन्त प्रसन्न हुए। ठीकही है, महात्मा लोग पूज्योंको, सेवा द्वारा अपने वश करना ही अपना प्रधान कर्तव्य समझते हैं ॥ १७ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अशेषतीर्थोपहृताः कमण्डलोर्निधाय पाणावृषिणाभ्युदीरिताः
अघौघविध्वंसविधौ पटीयसीर्नतेन मूर्ध्ना हरिरग्रहीदपः ॥१८॥

[अन्वयः] अशेषतीर्थोपहृताः कमण्डलोः पाणौ निधाय ऋषिणा अभ्युदीरिताः अघौघविध्वंसविधौ पटीयसीः अपः हरिः नतेन मूर्ध्ना अग्रहीत् ॥ १८ ॥

[सुबोधिनी] अशेषतीर्थोपहृताः (अनेकतीर्थेभ्य आहृताः) कमण्डलोः (उदकपात्रात् ,-जलमुद्धृत्येत्यर्थः) पाणौ निधाय (हस्ते संस्थाप्य) ऋषिणा (तापसेन नारदेन) अभ्युदीरिताः (अभिमन्त्रिताः) "अत एव" अघौघविध्वंसविधौ (पापसमूहानां विनाशकरणे) पटीयसीः (समर्थतराः) अपः (जलानि) हरिः (कृष्णः) नतेन मूर्ध्ना (नम्रमस्तकेन, पूर्वाङ्गं किञ्चिदवनमय्येत्यर्थः) अग्रहीत् (स्वीचकार) ॥ १८ ॥

[समासः] अविद्यमानः शेषः एषान्तानि अशेषाणि, अशेषाणि, तीर्थानि अशेषतीर्थानि, तेभ्यः उपहृताः ताः । अघानां ओघः अघौघः, तस्य विध्वंसः अघौघविध्वंसः, तस्य विधिः तस्मिन् । अतिशयेन पट्व्य इति पटीयस्यस्ताः ॥१८॥

(व्याकरणम्) अभ्युदीरिताः = अभि + उद + ईर् + णिच्, 'स्वार्थे' क्त । पटीयसीः—पट्वी + ईयसुन् + ङीप् । अग्रहीत्—ग्रह + लुङ् + तिप् ॥

(वाच्यान्तरम्) आपः हरिणा नतेन मूर्ध्ना अग्रहीषत ॥ १८ ॥

(सरलार्थः) नारदः उदकपात्रात् पापविध्वंसकरं तीर्थजलं हस्ते निधाय अभिमन्त्र्य च हरये ददौ, सच नतमूर्धा सन् तदग्रहीत् ॥ १८ ॥

[भाषार्थ] पूजन हो जानेपर नारद महामुनिने असंख्य तीर्थोंसे संगृहीत अपने कमण्डलुके जलको हाथमें लेकर और अभिमंत्रित कर श्रीकृष्णको दिया उन्होंने नत मस्तक होकर उसे सादर ग्रहण किया ॥ १८ ॥

स काञ्चने यत्र मुनेरनुज्ञया नवाम्बुदश्यामतनुर्न्यविक्षत ।
जिगाय जम्बूजनितश्रियः श्रियं सुमेरुशृङ्गस्य तदा तदासनम् ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

[अन्वयः] नवाम्बुदश्यामतनुः सः मुनेः अनुज्ञया काञ्चने यत्र (आसने) न्यविक्षत तत् आसनं तदा जम्बूजनितश्रियः सुमेरुशृङ्गस्य श्रियं जिगाय ॥ १९ ॥

[सुबोधिनी] नवाम्बुदश्यामतनुः (नूतनजलधरसदृशकृष्णवर्णः) सः (श्रीकृष्णः) मुनेः (नारदस्य) अनुज्ञया (आदेशेन) काञ्चने (स्वर्णमये) यत्र (यस्मिन् आसने) न्यविक्षत (उपविष्टवान्) तत् आसनं, तदा (हरेः उपवेशनसमये) जम्बूजनितश्रियः (जम्बूवृक्षसमुत्पादितशोभस्य) सुमेरुशृङ्गस्य (सुमेरुपर्वतशिखरस्य) श्रियं (शोभां) जिगाय (विजितवान्) ॥ १९ ॥

(समासः) नवाम्बुदश्यामतनुः=अम्बु ददाति इति अम्बुदः, नवश्चासौ अम्बुदः नवाम्बुदः, स; इव श्यामा तनुर्यस्य सः । जम्बूजनितश्रियः=जम्बूभिः जनिता श्रीर्यस्य जम्बूजनितश्रि, तस्य । सुमेरोः शृङ्गं सुमेरुशृङ्गं तस्य ॥ १९ ॥

[कोषः] कृष्णे नीलासितश्यामकालश्यामलमेचकाः । श्रीर्वेशरचना शोभा ॥ १९ ॥

(व्याकरणम्) अनुज्ञया=अनु + ज्ञा + अङ् । न्यविक्षत–नि + विश् + लुङ् + त । जिगाय—जि + लिट् + तिप् + णल् ॥ १९ ॥

(वाच्यान्तरम्) नवाम्बुदश्यामतनुना तेन यत्र (आसने) न्यवेशि । तेन आसनेन तदा जम्बूजनितश्रियः सुमेरुशृङ्गस्य श्रीः जिग्ये ॥ १९ ॥

(सरलार्थः) यथा सुमेरुशृङ्गस्य उपरि अङ्कुरितः जम्बूवृक्षः तस्य अलौकिकं रामणीयकमुत्पादयति तथैव श्यामवर्णः असौ हरिरपि नारदस्य आज्ञया हेममये आसने समुपविशन् तस्य कान्तिमवर्धयत् ॥ १९ ॥

(भावार्थ) सुमेरु पर्वतके शिखरपर उगे हुए जामुनके पेड़से जैसे उसकी अलौकिक शोभा पैदा होती है, उसी तरह श्यामवर्ण श्रीकृष्णने भी नारदकी आज्ञासे सुवर्ण सिंहासनपर बैठकर उसकी शोभा बढ़ाई ॥ १९ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

स तप्तकार्तस्वरभास्वराम्बरः कठोरताराधिपलाञ्छनच्छविः ।
विदिद्युते वाडवजातवेदसः शिखाभिराश्लिष्ट इवाम्भसां निधिः ॥

[अन्वयः] तप्तकार्तस्वरभास्वराम्बरः कठोरताराधिपलाञ्छनच्छविः सः वाडवजातवेदसः शिखाभिः आश्लिष्टः अम्भसां निधिः इव विदिद्युते ॥२०॥

[सुबोधिनी] तप्तकार्तस्वरभास्वराम्बरः (अग्निशोधितसुवर्णवद्दीप्यमानवसनः, पीताम्बर इत्यर्थः) कठोरताराधिपलाञ्छनच्छविः (पूर्णचन्द्रलाञ्छनच्छोभः) सः (हरिः) वाडवजातवेदसः (वाडवाग्नेः शिखाभिः (ज्वालाभिः) आश्लिष्टः (व्याप्तः) अम्भसां निधिः (समुद्रः) इव विदिद्युते (दिदीपे) ॥ २० ॥

(समासः) तप्तं कार्तस्वरं तप्तकार्तस्वरं, तद्वत् भास्वरं अम्बरं यस्य सः । ताराणां अधिपः ताराधिपः, कठोरः ताराधिपः कठोरताराधिपः, तस्य लाञ्छनं कठोरताराधिपलाञ्छनं, तस्य छविरिव छविर्यस्य सः । वाडवो जातवेदा इति वाडवजातवेदास्तस्य ॥ २० ॥

[कोष] चामीकरं जातरूपं महारजतकाञ्चने । रुक्मं कार्तस्वरं जाम्बूनदमष्टापदोऽस्त्रियाम् ॥ २० ॥

(व्याकरणम्) विदिद्युते=वि+द्युत्+लिट्+ए । आश्लिष्टः=आ+श्लिष्+क्त ॥ २० ॥

(वाच्यान्तरम्) तप्तकार्तस्वरभास्वराम्बरेण कठोरताराधिपलाञ्छनच्छविना तेन, शिखाभिः आश्लिष्टेन अम्भसां निधिना इव विदिद्युते ॥२०॥

(सरलार्थः) पीताम्बरधरः श्यामशोभः स हरिः वाडवाग्नेः शिखाभिः संयुतः समुद्र इव बभौ ॥ २० ॥

(भाषार्थ) पीताम्बर धारण किये श्यामवर्ण वाले, श्रीकृष्ण वाडवाग्नि की ज्वालासे युक्त समुद्रकीसी शोभाको प्राप्त हुए ॥ २० ॥

रथाङ्गपाणेः पटलेन रोचिषामृषित्विषः संवलिता विरेजिरे ।
चलत्पलाशान्तरगोचरास्तरोस्तुषारमूर्तेरिव नक्तमंशवः ॥२१॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

[अन्वयः] रथाङ्गपाणेः रोचिषां पटलेन संवलिताः ऋषित्विषः नक्तं तरोः चलत्पलाशान्तरगोचराः तुषारमूर्तेः अंशवः इव विरेजिरे ॥ २१ ॥

[सुबोधिनी] रथाङ्गपाणेः (चक्रपाणेः, कृष्णस्य) रोचिषां (त्विषां) पटलेन (समूहेन) संवलिताः (मिलिताः) ऋषित्विषः (मुनिकान्तयः) नक्तं (रात्रौ) तरोः (वृक्षस्य चलत्पलाशान्तरगोचराः (चञ्चलपत्रविवराश्रयाः) तुषारमूर्तेः (चन्द्रमसः) अंशवः (किरणाः) इव, विरेजिरे (चकाशिरे) ॥ २१ ॥

(समासः) रथस्य अङ्गं रथाङ्गं, रथाङ्गं पाणौ यस्य तस्य । ऋषेः त्विषः ऋषित्विषः । चलन्ति पलाशानि चलत्पलाशानि, तेषामन्तराण्येव (विवराण्येव) गोचर आश्रयो येषां ते । तुषारा मूर्तिर्यस्य सः तस्य ॥ २१ ॥

[कोषः] चक्रं रथाङ्गं, तस्यान्ते । किरणोस्त्रमयूखांशुगभस्तिघृणिरश्मयः ॥

(व्याकरणम्) संवलिताः=सम्+वल+क्त । विरेजिरे=वि+राज+लिट्+इरे (वि रेजे, वि रेजाते, वि रेजिरे) ॥ २१ ॥

(वाच्यान्तरम्) संवलिताभिः ऋषित्विड्भिः अंशुभिः इव विरेजे ॥ २१ ॥

(सरलार्थः) यथा रात्रौ चन्द्रिकायां वृक्षपत्राणां अन्तरालमार्गेण अन्तः प्रविष्टास्तिमिरयुताश्चन्द्रपादाः क्वचिच्छुभ्राः क्वचिच्छ्यामाश्च सन्तः शोभन्ते तथैव श्यामेन हरितेजसा मुनेः धवलं धाम मिलितं सत् अशोभत ॥ २१ ॥

(भावार्थ) चन्द्रिकाकी रातमें वृक्षोंके पत्तों द्वारा नीचे गिरा हुआ प्रकाश और पत्तोंकी काली छाया परस्पर मिल जानेसे चितकबरी शोभा जैसे उत्पन्न होती है, उसी प्रकार श्रीकृष्णके श्याम तेजसे नारद महामुनिका शुभ्रतेज मिलकर सुशोभित हुआ ॥ २१ ॥

प्रफुल्लतापिच्छनिभैरभीषुभिः शुभैश्च सप्तच्छदपांशुपाण्डुभिः ।
परस्परेण च्छुरितामलच्छवी तदैकवर्णाविव तौ बभूवतुः ॥ २२ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoEJKS

[अन्वयः] प्रफुल्लतापिच्छनिभैः सप्तच्छदपांशुपाण्डुभिः शुभैः अभीषुभिः परस्परेण च्छुरितामलच्छवी तौ तदा एकवर्णौ इव बभूवतुः ॥ २२ ॥

[सुबोधिनी] प्रफुल्लतापिच्छनिभैः (विकसिततमालपुष्पसदृशैः) सप्तच्छदपांशुपाण्डुभिः (सप्तवर्णवृक्षरजःशबलच्छुभैः) शुभैः (मनोहरैः) अभीषुभिः (प्रग्रहैः) परस्परेण (अन्योन्यं) छुरितामलच्छवी (रूषितनिर्मलकान्ती) तौ (हरिनारदौ) तदा (तस्मिन् समये) एकवर्णौ (समानवर्णौ) इव बभूवतुः (अभूताम्) ॥२२॥

(समासः) प्रफुल्लतीति प्रफुल्लं, प्रफुल्लं तापिच्छं प्रफुल्लतापिच्छं, तस्य निभास्तैः । वृन्ते वृन्ते सप्त च्छदा अस्य स सप्तच्छदः, तस्य विकारः "पुष्पं" सप्तच्छदं, तस्य पांशवः सप्तच्छदपांशवः ते इव पाण्डवस्तैः । च्छुरितामलच्छवी = छुरिते अमले छवी ययोस्तौ । एकवर्णौ = एकः वर्णः ययोस्तौ एकवर्णौ ॥२२॥

[कोषः] कालस्कन्धस्तमालः स्यात्तापिच्छोऽपि ॥ २२ ॥

(व्याकरणम्) बभूवतुः = भू + लिट् + अतुस् ॥ २२ ॥

(वाच्यान्तरम्) च्छुरितामलच्छवीभ्यां ताभ्यां तदा एकवर्णाभ्यां बभूवे ॥२२॥

(सरलार्थः) हरेः श्यामतायाः नारदमुनेश्च धवलताया एकत्र मेलनात् तावुभावपि समानवर्णाविव शुशुभतुः ॥ २२ ॥

(भाषार्थ) भगवान् श्रीकृष्णकी श्यामता और नारद मुनिकी शुभ्रता परस्पर मिलजानेसे दोनों समानवर्णकी तरह मालूम होने लगे ॥ २२ ॥

युगान्तकालप्रतिसंहृतात्मनो जगन्ति यस्यां सविकाशमासत ।
तनौ ममुस्तत्र न कैटभद्विषस्तपोधनाभ्यागमसंभवा मुदः ॥२३॥

[अन्वयः] युगान्तकालप्रतिसंहृतात्मनः कैटभद्विषः यस्यां तनौ जगन्ति सविकाशं आसत तत्र तपोधनाभ्यागमसम्भवा मुदः न ममुः ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

[सुबोधिनी] युगान्तकालप्रतिसंहृतात्मनः (प्रलयसमये उपसंहृतजीवस्य) कैटभद्विषः (कैटभासुररिपोः) यस्यां, तनौ (शरीरे) जगन्ति (लोकाः) सविकाशं (सविस्तरं) आसत (अतिष्ठन्) तत्र (तनौ) तपोधनाभ्यागमसंभवाः (नारदशुभागमनप्रभवाः) मुदः (हर्षाः) न ममुः (न मान्ति स्म) ॥ २३ ॥

(समासः) युगानां अन्तकाल इति युगान्तकालः, युगान्तकाले प्रतिसंहृता आत्मानो येन तस्य । कैटभद्विषः=कैटभं द्वेष्टीति कैटभद्विट् तस्य । तपोधनाभ्यागमसम्भवाः=तप एव धनं यस्य सः तपोधनः, तपोधनस्य अभ्यागमस्तपोधनाभ्यागमः, तेन सम्भवन्ति इति तपोधनाभ्यागमसम्भवाः ॥ २३ ॥

(कोषः) मुत्प्रीतिः प्रमदो हर्षप्रमोदामोदसंमदाः ॥ २३ ॥

(व्याकरणम्) विकाशम्=वि+कश्+घञ् । आसत=आस्+लङ्+अन्त । ममुः=मा+लिट्+उस् ॥ २३ ॥

(वाच्यान्तरम्) युगान्तकालप्रतिसंहृतात्मनः कैटभद्विषः यस्यां तनौ जगद्भिः सविकाशं आस्यत । तत्र तपोधनाभ्यागमसम्भवैः मुद्भिः न ममे ॥ २३ ॥

(सरलार्थः) प्रलयसमये चतुर्दशभुवनभरणपर्याप्ते अपि श्रीमद्भगवतः कृष्णस्य वपुषि नारदर्षेरागमनजनितः प्रमोदः मातुं न प्रबभूव ॥ २३ ॥

(भावार्थ) महाप्रलय के समयमें भगवान् श्रीकृष्णके जिस शरीरमें चौदहो भुवन अच्छी तरह रह चुके थे, आज वही शरीर, नारद मुनिके आनेसे उत्पन्न आनन्दके लिये छोटा पड़ गया ॥ २३ ॥

निदाघधामानमिवाधिदीधितिं मुदा विकाशं मुनिमभ्युपेयुषी ।
विलोचने बिभ्रदधिश्रितश्रिणी स पुण्डरीकाक्ष इति स्फुटोऽभवत्

[अन्वयः] निदाघधामानं इव अधिदीधितिं मुनिं अभि मुदा विकाशं उपेयुषी अधिश्रितश्रिणी विलोचने बिभ्रत् सः "पुण्डरीकाक्षः" इति स्फुटः, अभवत् ॥ २४ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

[सुबोधिनी] निदाघधामानं इव (उष्णतेजसं, सूर्य्यमिव) अधिदीधितिं (अधिकतेजसं) मुनिं (नारदं) अभि (अभिलक्ष्य) मुदा (हर्षेण) विकाशं (विकचभावं) उपेयुषी (प्राप्तवती) अधिश्रितश्रिणी (प्राप्तशोभे) विलोचने (नेत्रे) बिभ्रत् (धारयन्) सः (हरिः) पुण्डरीकाक्षः (पुण्डरीकाक्ष इत्यभिधेयः) स्फुटः (स्पष्टम्) अभवत् (बभूव) ॥ २४ ॥

(समासः) नितरां दह्यते अनेनेति निदाघं, निदाघं (उष्णं) धाम (तेजः) यस्य सः तं। अधिदीधितिं=अधिका दीधितिर्यस्य तं। अधिश्रितश्रिणी—अधिश्रिता श्रीर्याभ्यां ते। पुण्डरीके इव अक्षिणी यस्य सः पुण्डरीकाक्षः ॥ २४ ॥

(कोष:) निदाघ उष्णोपगम उष्ण ऊष्मागमस्तपः ॥ २४ ॥

(व्याकरणम्) विकाशम्=वि+कश्+घञ्। उपेयुषी=उपेयाय इति उपेयुषी=उप+इ+लिट् स्थाने क्वसु। बिभ्रत्=भृ+शतृ। अभवत्=भू+लङ्+ति ॥ २४ ॥

(वाच्य०) विलोचने बिभ्रता तेन "पुण्डरीकाक्षः" इति स्फुटेन अभूयत ॥

(सरलार्थः) स नारदः तेजसा द्वितीयः सूर्य एव आसीत्, यतः हरेः चक्षुषी नारदसन्निधौ विकासं अलभताम्, अतएव ते अक्षिणी न आस्तां किन्तु पुण्डरीके एव, अन्यथा कथं नारददर्शनात् तयोर्विकासः समभवत्। अनेनैव हेतुना अस्य पुण्डरीकाक्ष इति नामापि युक्तमेव ॥ २४ ॥

(भाषार्थ) इसलिये कि श्रीकृष्णभगवान्‌की आखें नारद मुनि के सामने आनेसे आनन्दके मारे खिल गईं, इसलिये नारदमुनि तेजसे द्वितीय सूर्य थे और भगवान् श्रीकृष्णकी आखें कमल थीं, इसीलिये इनका नाम "पुण्डरीकाक्ष" (पुण्डरीक=कमल) पड़ा। २४॥

सितं सितिम्ना सुतरां मुनेर्वपुर्विसारिभिः सौधमिवाथ लम्भयन्
द्विजावलिव्याजनिशाकरांशुभिः शुचिस्मितां वाचमवोचदच्युतः

(अन्वयः) अथ अच्युतः विसारिभिः द्विजावलिव्याजनिशाक

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

रांशुभिः सितं मुनेः वपुः सौधमिव सुतरां सितिम्ना लम्भयन् शुचिस्मितां वाचं अवोचत् ॥ २५ ॥

(सुबोधिनी) अथ (नारदश्रीकृष्णयोरुपवेशनानन्तरम्) अच्युतः (श्रीकृष्णः) विसारिभिः (प्रसारिभिः) द्विजावलि-व्याजनिशाकरांशुभिः (दन्तपंक्तिकपटेन्दुकिरणैः) सितं (शुभ्रं) मुनेः (नारदस्य) वपुः (शरीरं) सौधं (राजसदनं) इव, सितिम्ना (धावल्येन) लम्भयन् (व्यापारयन्, "अति-धवलयन्" इत्यर्थः) शुचिस्मितां (ईषद्धास्ययुक्तां) वाचं (वाणीं) अवोचत् (उक्तवान्) ॥ २५ ॥

(समासः) विसारिभिः = विसरन्ति इति विसारिणस्तैः । द्विजानां आवलिः द्विजावलिः, द्विजावलिरेव व्याजो यस्यासौ द्विजावलिव्याजः, स चासौ निशाकरश्च द्विजावलिव्याजनिशाकरः, तस्य अंशवस्तैः । शुचि स्मितं यस्यां सा तां शुचिस्मिताम् ॥ २५ ॥

(व्याकरणम्) विसारिभिः = वि+सृ + णिनि । सितं = सो+क्त । सितिम्ना = सित = इमनिच् । सितिमा, सितिमानौ, सितिमानः, सितिमानं, सितिमानौ, सितिम्नः, सितिम्ना, सितिमभ्यां, सितिमभिः ॥ २५ ॥

(वाच्यपरिवर्त्तनम्) अथ अच्युतेन सितं मुनेः वपुः सौध इव सुतरां सितिम्ना लम्भयता शुचिस्मिता वाक् अवोचि ॥ २५ ॥

(सरलार्थः) हरिः वाचं उवाच । तदा तस्य दन्तकिरणैः नारदस्य धवलं वपुः प्रथमतोऽप्यधिकं धवलिमानं प्रापत् ॥ २५ ॥

(भाषार्थ) नारदमुनि स्वयं शुभ्र थे ही, पर भगवान् श्रीकृष्ण के बोलने के समय उनके दाँतों की कान्ति उनके शरीर पर गिरने से और भी अधिक शुभ्र मालूम होने लगे, जैसे पहले से ही सफेद राजमहल पर फिर चूने की सफेदी की जाती हो ॥ २५ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हरत्यघं सम्प्रति हेतुरेष्यतः शुभस्य पूर्वाचरितैः कृतं शुभैः ।
शरीरभाजां भवदीयदर्शनं व्यनक्ति कालत्रितयेऽपि योग्यताम् ॥

(अन्वयः) भवदीयदर्शनं शरीरभाजां कालत्रितये अपि योग्यतां व्यनक्ति, सम्प्रति अघं हरति; एष्यतः शुभस्य हेतुः, पूर्वाचरितैः शुभैः कृतम् ॥ २६ ॥

(सुबोधिनी) भवदीयदर्शनम् (श्रीमतां दर्शनम्) शरीरभाजां (शरीरिणां, देहिनां) कालत्रितये (भूतादिकालत्रये) अपि, योग्यतां (पवित्रतां) व्यनक्ति (प्रकाशयति) सम्प्रति (दर्शनकाले) अघं (पापं) हरति (नाशयति) एष्यतः (आगमिष्यतः) शुभस्य (श्रेयसः) हेतुः (कारणं) पूर्वाचरितैः (प्रागनुष्ठितैः) शुभैः (सुकृतैः) कृतं (जातम्) ॥२६॥

(समासः) भवत इदं भवदीयं, भवदीयं दर्शनं भवदीयदर्शनम् । शरीरभाजां=शरीरं भजन्ति ये ते शरीरभाजस्तेषां । त्रयः अवयवा यस्य तत् त्रितयम्, कालस्य त्रितयं कालत्रितयं तस्मिन् । योग्यतां= योक्तुं अर्हः योग्यः, तस्य भावः योग्यता तां । पूर्वाचरितैः=पूर्वं आचरितानि पूर्वाचरितानि तैः पूर्वाचरितैः ॥ २६ ॥

(व्याकरणम्) एष्यतः=आ+इ—लृटः (स्थाने) शतृ (स्य) । व्यनक्ति=वि—अञ्ज—लट् =तिप् । कालत्रितये=त्रि= तयप् । हरति=हृ—लट्—ति । आचरितैः=आ—चर+क्त । कृतं= कृ+क्त ॥ २६ ॥

(वाच्यान्तरम्) भवदीयदर्शनेन कालत्रितये अपि योग्यता व्यज्यते । सम्प्रति अघं ह्रियते । एष्यतः शुभस्य हेतुना भूयते । पूर्वाचरितैः शुभैः कृतेन भूयते ॥ २६ ॥

(कोषः) हेतुर्ना कारणं बीजम् । श्वः श्रेयसं शिवं भद्रं कल्याणं मङ्गलं शुभमित्यमरः ॥ २६ ॥

(सरलार्थः) वर्तमानकालिकं दर्शनं पूर्वजन्मनि कृतं सुकृतमनु-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मापयति, अन्यथा अकृतपुण्यैः सह भगवतां भवतां साक्षात्कारः कथं भवितुं शक्यः, एवं साम्प्रतिकं पापौघमपि विनाशयति तथा भाविनीं भावुकताञ्च समुद्भावयति ॥ २६ ॥

(भाषार्थ) श्रीकृष्णने पुनः यों कहना आरंभ किया कि:— हे मुने ! आपका दर्शन मेरे तीनों काल की योग्यता बता रहा है:— वर्तमान काल के पाप को नाश करता है, भविष्य के मंगल का सूचक है और पूर्व जन्म के पुण्य का स्मारक है ॥ २६ ॥

जगत्यपर्याप्तसहस्रभानुना न यन्नियन्तुं समभावि भानुना ।
प्रसह्य तेजोभिरसंख्यतां गतैरदस्त्वया नुन्नमनुत्तमं तमः ॥२७॥

(अन्वयः) जगति अपर्याप्तसहस्रभानुना भानुना यत् तमः नियन्तुं न समभावि, अनुत्तमं अदः (तमः) असंख्यतां गतैः तेजोभिः प्रसह्य त्वया नुन्नम् ॥ २७ ॥

(सुबोधिनी) जगति (संसारे) अपर्याप्तसहस्रभानुना (अपरिच्छिन्नसहस्रांशुना) भानुना (सूर्येण) यत्, तमः (अज्ञानरूपं ध्वान्तं) नियन्तुं (निवारयितुं) न समभावि (न शेके) अनुत्तमं (सर्वोत्कृष्टं) अदः (एतत्) तमः (मोहात्मकं) असंख्यतां गतैः (संख्यातीतैः) तेजोभिः (स्वप्रभावैः) प्रसह्य (बलात्) त्वया (भवता) नुन्न (निरस्तम्) ॥ २७ ॥

(समासः) अपर्याप्तसहस्रभानुना = अपर्याप्ताः सहस्रं भानवो यस्य तेन । अनुत्तमं = अविद्यमानं उत्तमं यस्मात् तत् अनुत्तमम् ॥ २७ ॥

(व्याकरणम्) नियन्तुं = नि+यम्+तुमुन् । समभावि = सम्+भू +लुङ् = त । नुन्नं = नुद + क्त ॥ २७ ॥

(वाच्यान्तरम्) अपर्याप्तसहस्रभानुः भानुः यत् नियन्तुं न समभूत् तत् त्वं नुन्नवान् ॥ २७ ॥

(कोषः) सप्रभावः प्रतापश्च सरोजः कोषदण्डजम् ॥ २७ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(सरलार्थः) संसारस्य बहिर्भवं तमः, असंख्यकिरणैः सूर्यः निरस्तवान् , परं यत् तमः विनाशयितुं सोऽपि न शशाक, तत् मोहात्मकं तमः भवता एव निरस्तम् ।। २७ ।।

(भाषार्थ) समस्त संसार के तम (अन्धकार) को दूरकरने वाला सूर्य अपने असंख्य किरणों के रहते हुए भी जिस तम (अज्ञान रूपी मोह) को दूर न कर सका उसको आपने दूर किया ।। २७ ।।

कृतः प्रजाक्षेमकृता प्रजासृजा सुपात्रनिक्षेपनिराकुलात्मना ।
सदोपयोगेऽपि गुरुस्त्वमक्षयो निधिः श्रुतीनां धनसम्पदामिव ।।

(अन्वयः) प्रजाक्षेमकृता सुपात्रनिक्षेपनिराकुलात्मना प्रजासृजा त्वं धनसम्पदां इव श्रुतीनां सदा उपयोगे अपि अक्षयः गुरुः निधिः कृतः ।। २८ ।।

(सुबोधिनी) प्रजाक्षेमकृता (प्रजाकल्याणकारिणा अन्यत्र अपत्यकल्याणकारिणा) सुपात्रनिक्षेपनिराकुलात्मना (योग्यपुरुषनिक्षेपस्वस्थचित्तेन सता, अन्यत्र सुपात्रे = कंटाहादिदृढभाजने, निक्षेपेण=निधानेन हेतुना स्वस्थचित्तेन सता) प्रजासृजा (ब्रह्मणा पुत्रवता च) त्वं (भवान्) धनसम्पदाम् (धनसम्पत्तीनां) इव (यथा) श्रुतीनां (वेदानां) सदा (सर्वदा) उपयोगे (दानभोगाभ्यां व्यये) अपि, अक्षयः (आम्नानात्, अन्यत्र आनन्त्याच्च क्षयरहितः) गुरुः (उपदेशकः, सम्प्रदायप्रवर्तक इति वा, अन्यत्र महान्) निधिः (निक्षेपः, कृतः ।। २९ ।।

(समासः) प्रजानां क्षेमं प्रजाक्षेमं, तत् करोतीति प्रजाक्षेमकृत् तेन । सुपात्रे निक्षेपः सुपात्रनिक्षेपः, तेन निराकुलः आत्मा यस्य सः तेन सुपात्रनिक्षेपनिराकुलात्मना । प्रजाः सृजतीति प्रजासृट् तेन । धनानां सम्पत् धनसम्पत् तासां धनसम्पदां । अविद्यमानः क्षयः यस्य सः अक्षयः ।। २८।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(व्याकरणम्) प्रजाक्षेमकृता = प्रजा+क्षेम+कृ+क्विप् । प्रजा-सृजा = सृज् + क्विप् । उपयोगे=उप+युज् + घञ् + । निधिः=निधीयते इति निधि=नि + धा + कि । श्रुतीनां = श्रूयन्ते इति श्रुतिस्तासां ! श्रु + क्तिन् । कृतः = कृ+क्त ॥ २८ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) प्रजाक्षेमकृत् सुपा········त्मा प्रजासृट् घनसम्पदां इव श्रुतीनां सदोपयोगे अपि त्वा अक्षयं गुरुं निधिं कृतवान् ॥

(सरलार्थः) यथा कस्यचित् पूर्वजः स्ववंश्यानामर्थसङ्कटे समुपस्थिते तेषां साहाय्यार्थमपरिमितं धनं सुदृढलौहपेटिकासु निक्षिप्य सुगुप्तं स्थापयित्वा तेषां विपत्तितो निश्चिन्तो भवति तथैव भगवान् प्रजापतिरपि भवन्तं श्रुतिसम्पदायप्रवर्तकतया अक्षयं गुरुं निर्माय चिन्तारहितो वर्ततेऽतस्त्वं श्लाघ्यतमोऽसि ॥ २८ ॥

(भाषार्थ) जैसे अगली पीढ़ी पर आनेवाली विपत्ति के समय सहायता के लिये उनकी कल्याण कामना से उनके पूर्वज लोहे की बड़ी-बड़ी सन्दूकों में अथाह (अपरिमित) धन की धरोहर रखकर उनसे निश्चिन्त हुआ करते हैं, उसी तरह सृष्टिकर्ता प्रजापति ने भी आपको अध्ययनाध्यापनादि में सदा उपयोग करते रहने पर भी कभी क्षय न होने वाला अनन्त वेद का निधि (खान) बनाकर सर्वदा के लिये अपने को निश्चिन्त बना लिया है ॥ २८ ॥

विलोकनेनैव तवामुना मुने कृतः कृतार्थोऽस्मि निबर्हितांहसा ।
तथापि शुश्रूषुरहं गरीयसीर्गिरोऽथवा श्रेयसि केन तृप्यते ॥

(अन्वयः) हे मुने ! निबर्हितांहसा अमुना तव विलोकनेन एव कृतार्थः कृतः अस्मि तथापि अहं गरीयसीः (तव) गिरः शुश्रूषुः । अथवा श्रेयसि केन तृप्यते ॥ २९ ॥

(सुबोधिनी) हे मुने ! (हे नारद !) निबर्हितांहसा (अपहृतपाप्मना) अमुना (अनेन) तव (भवतः) विलोकनेन

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(दर्शनेन) एव, कृतार्थः (कृतकृत्यः) कृतः (विहितः) अस्मि तथापि (कृतार्थे कृतेऽपि) तव, गिरः (वाचः) शुश्रूषुः (श्रोतुमिच्छुः) "अस्मि" नहि वाचः श्रवणेऽपि व्यर्था मे आसक्तिरित्यत आह—अथवा श्रेयसि (कल्याणकरे विषये) केन तृप्यते (तृप्तिरासाद्यते) न केनाऽपीत्यर्थः ॥ २९ ॥

(समासः) निबर्हितं अंहः येन तत् तेन । कृतार्थः=कृतः अर्थः अस्य इति कृतार्थः । अतिशयेन गुर्व्यः गरीयस्यः ताः गरीयसीः ॥ २९ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) हे मुने···निर्बर्हितांहः अदः विलोकनमेव (मां) कृतार्थं कृतवत्,·····मया·····शुश्रूषुणा भूयते············कः तृप्यति ॥ २९ ॥

(व्याकरणम्) विलोकनेन=वि+लोक + ल्युट् । शुश्रूषुः=श्रु + सन् + उ । गरीयसीः=गुरु+ईयसुन्+ङीप् । तृप्यते=तृप् + लट् + ते ॥

(कोषः) श्वःश्रेयसं शिवं भद्रं कल्याणं मङ्गलं शुभम् ॥ २९ ॥

(सरलार्थः) हे नारद ! पापक्षयकारिणा अमुना तव दर्शनेनैव अहं कृतार्थो जातः, तथापि मङ्गलमयीं ते वाणीं श्रोतुमभिलषामि । श्रेयसः इयत्ताभावात् तस्मात् कः तृप्तो भवितुं शक्नोति ॥ २९ ॥

(भाषार्थ) हे नारद ! मैं आपके दर्शन से ही कृतार्थ हो गया हूं। फिर भी कल्याण करने वाली आपकी वाणी सुनने चाहता हूं। ऐसा कौन है जो अपने कल्याण की बात से अघाता हो ॥ २९ ॥

गतस्पृहोऽप्यागमनप्रयोजनं वदेति वक्तुं व्यवसीयते यया ।
तनोति नस्तामुदितात्मगौरवो गुरुस्तवैवागम एष धृष्टताम् ॥ ३० ॥

(अन्वयः) "गतस्पृहः अपि आगमनप्रयोजनं वद" इति वक्तुं यया व्यवसीयते, उदितात्मगौरवः गुरुः एषः तव आगमः एव नः तां धृष्टतां तनोति ॥ ३० ॥

(सुबोधिनी) गतस्पृहः (निःस्पृहः, विरक्त इत्यर्थः)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अपि, 'त्वं' आगमनप्रयोजनं (आगमनकारणं वद (कथय) इति (इत्थं) वक्तुं (कथयितुं) यया (धृष्टतया) व्यवसीयते (उद्यम्यते) उदितात्मगौरवः (सञ्जातनिजमहिमा) गुरुः (महान्, श्लाघ्य इत्यर्थः) एषः (अयं) तव (भवतः) आगमः (आगमनं) एव, नः (अस्माकं) तां (आगमनकारणपृच्छारूपां) धृष्टतां (धाष्टर्यं) तनोति (विस्तारयति) ॥ ३० ॥

(समासः) गता स्पृहा यस्य सः । आगमनस्य प्रयोजनं आगमनप्रयोजनम्, तत् । आत्मनः गौरवं आत्मगौरवं, उदितं आत्मगौरवं यस्य सः उदितात्मगौरवः । धृष्टतां = धृष्टस्य भावो धृष्टता ताम् ॥ ३० ॥

(व्याकरणम्) व्यवसीयते = वि+अव+सो+लट्+ते । तनोति = तनु + लट् = ति ॥ ३० ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) गतस्पृहेण अपि उद्यतां इति या वक्तुं व्यवस्यति उदितात्मगौरवेण गुरुणा तव अनेन आगमनेन एव सा धृष्टता तायते ॥ ३० ॥

(सरलार्थः) सांसारिकविषयेभ्यः विरक्तोऽपि भवान् मम गृहं आगत इति आत्मनि जातादरः अहं धृष्टतया "भवान् आगमनप्रयोजनं वदतु" इति प्रष्टुमभिलषामि ॥ ३० ॥

(भाषार्थ) आप विरक्त हो, आपको किसी वस्तु की चाहना नहीं है फिर भी मेरे यहां आपके आने मात्र से ढीठ हुआ मैं आपके आगमन का कारण जानना चाहता हूँ ।३०।

इति ब्रुवन्तं तमुवाच स व्रती न वाच्यमित्थं पुरुषोत्तम त्वया।
त्वमेव साक्षात्करणीय इत्यतः किमस्ति कार्यं गुरु योगिनामपि॥

[अन्वयः] इति ब्रुवन्तं तं स व्रती उवाच, हे पुरुषोत्तम ? त्वया इत्थं न वाच्यम् । योगिनां अपि त्वमेव साक्षात्करणीयः, इत्यतः गुरु कार्यं किम् अस्ति ? ॥ ३१ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(सुबोधिनी) इति (अनेन प्रकारेण) ब्रुवन्तं (कथयन्तं) तं (श्रीकृष्णं) व्रती (नियमी) सः (मुनिर्नारदः) उवाच (जगाद) हे पुरुषोत्तम ? (हे कृष्ण ?) त्वया (भवता) इत्थं (गतस्पृहोऽपीत्यादिकथितरूपं) न वाच्यं (न कथनीयं) योगिनां (समाहितमनसां) अपि, त्वं (भवान्) एव, साक्षात्करणीयः (प्रत्यक्षीकरणीयः) इत्यतः (अस्मादन्यत्) गुरु (महत) कार्यं (प्रयोजनं) किम् अस्ति ? (त्वद्दर्शनादृते न किमपि कार्यमस्तीत्यर्थः) ॥ ३१ ॥

(समासः) पुरुषेषु उत्तमः पुरुषोत्तमस्तत्सम्बुद्धौ हे पुरुषोत्तम ? असाक्षात् साक्षात् अवश्यं कर्तव्य इति साक्षात्करणीयः । व्रती = व्रतमस्य अस्तीति व्रती ॥ ३१ ॥

(व्याकरणम्) ब्रुवन्तं=ब्रु = शतृ । व्रती = व्रत+इन । वाच्यं = वच् + ण्यत् । साक्षात्करणीयः = साक्षात्+कृ+अनीयर् ॥ ३१ ॥

(वाच्यान्तरम्) ‥ ब्रुवन् सः तेन व्रतिना ऊचे‥‥‥त्वं न (ब्रूयाः) गुरुणा कार्येण केन भूयते ॥ ३१ ॥

(कोषः) गुरुर्महत्याङ्गिरसे पित्रादौ धर्मदेशके ॥ ३१ ॥

(सरलार्थः) इति कथयन्तं श्रीकृष्णं नारदः प्रत्युवाच हे पुरुषोत्तम ! त्रिकालदर्शिनः अपि योगिनः, भवन्तमेव साक्षात्कुर्वन्ति, अतस्त्वद् दर्शनादृते न मे किमपि अन्यत् आगमनप्रयोजनम् ॥ ३१ ॥

(भाषार्थ) इस तरह कहते हुए उनको नारद मुनि ने कहा कि हे कृष्ण । आप ऐसा न कहें, बड़े बड़े योगी भी आप ही के दर्शन के लिये लालायित रहा करते हैं । आपके दर्शन से बढ़कर और कोई दूसरा काम इस समय हमें यहां आने का नहीं है ॥ ३१ ॥

उदीर्णरागप्रतिरोधकं जनैरभीक्ष्णमक्षुण्णतयातिदुर्गमम् ।
उपेयुषो मोक्षपथं मनस्विनस्त्वमग्रभूमिर्निरपायसंश्रया ॥३२॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(अन्वयः) उदीर्णरागप्रतिरोधकं अभीक्ष्णं अक्षुण्णतया जनैः अतिदुर्गमं मोक्षपथं उपेयुषः मनस्विनः त्वं निरपाय-संश्रया अग्रभूमिः ॥ ३२ ॥

(सुबोधिनी) उदीर्णरागप्रतिरोधकं (उद्रिक्तविषयाभि-लाषप्रतिबन्धकं) अभीक्ष्णं (भूयोभूयः) अक्षुण्णतया (अन-भ्यस्तत्वेन अप्रतिहतत्वेन च) जनैः (लोकैः) अतिदुर्गमं (गन्तुमशक्यं) मोक्षपथं (अपवर्गमार्गं कान्तारं च) उपे-युषः (प्राप्तवतः) मनस्विनः (सुमनसः धीरस्य च) त्वं एव (भवानेव) निरपायसंश्रया (पुनरावृत्तिर्राहतप्राप्तिः) "न स पुनरावर्तते" इति श्रुतेः, अग्रभूमिः (प्राप्यस्थानम्) असीति-शेषः ॥ ३२ ॥

(समासः) उदीर्णः=उद्रिक्तः, रागः=विषयाभिलाषः स एव प्रतिरोधकः=प्रतिबन्धकः पाटच्चरश्च यस्मिन् सः तं । अक्षुण्णतया=न क्षुण्णः अक्षुण्णः, तस्य भावः अक्षुण्णता तया । मोक्षपथं=मोक्षस्य पन्थाः मोक्षपथः तं । मनस्विनः=मनः अस्य अस्तीति मनस्वी तस्य । अग्र-भूमिः=अग्रा भूमिः अग्रभूमिः । निरपायसंश्रया=निर्गतः अपायः अस्मात् सः निरपायः, निरपायः संश्रयो यस्याः सा निरपायसंश्रया ॥ ३२ ॥

(व्याकरणम्) अतिदुर्गमं=अति+दुर्+गम्+खल् । मनस्विनः =मनस्+विनि ॥ ३२ ॥

(वाच्यान्तरम्)..........मनस्विनः त्वया निरपायसंश्रयया अग्रभूम्या भूयते ॥ ३२ ॥

(कोषः) प्रतिरोधिपरास्कन्दिपाटच्चरमलिम्लुचाः ॥ ३२ ॥

(सरलार्थः) यथा महतः संकटात् कथमपि निर्गतः कश्चन पुरुषः कण्टकादिभिः अतिदुर्गमेनापि कान्तारमार्गेण गच्छन् सौभाग्यवशात् निर्बाधस्थानप्राप्त्या आत्मानं अभयाय प्रकल्पते तथैव दुस्त्यजानपि सर्वान्

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कामान् महता प्रयासेन सन्त्यज्य मोक्षपथं अभिलषन् पुरुषः त्वामेव प्रथममाप्नोति ततश्च न स पुनरावर्तते । अतएवाऽहं त्वां समागतोऽस्मि ॥

(भाषार्थ) विषयरूप कंटकों से व्याप्त मोक्ष पथ पर जाने के लिये विद्वान् पुरुष पहले पहल अविनाशी आप ही के पद को प्राप्त करता है ॥ ३२ ॥

उदासितारं निगृहीतमानसैर्गृहीतमध्यात्मदृशा कथञ्चन ।
बहिर्विकारं प्रकृतेः पृथग्विदुः पुरातनं त्वां पुरुषं पुराविदः ॥

(अन्वयः) पुराविदः त्वां निगृहीतमानसैः अध्यात्मदृशा कथञ्चन गृहीतं उदासितारं बहिर्विकारं प्रकृतेः पृथक् पुरातनं पुरुषं विदुः ॥ ३३ ॥

(सुबोधिनी) पुराविदः (पूर्वैतिहासज्ञाः कपिलादयः) त्वां (भवन्तं) निगृहीतमानसैः (वशीकृतचित्तैः योगिभिः) अध्यात्मदृशा (प्रत्यक्दृष्ट्या) कथञ्चन (कथमपि) गृहीतं (साक्षात्कृतं)। केन रूपेण साक्षात्कृतमित्यत आह-उदासितारं (उदासीनं) स्वार्थप्रवृत्तायामपि प्रकृतौ स्वयं तद्भिन्नत्वादस्पृष्टमित्यर्थः, बहिर्विकारं (महदादिभिन्नं) प्रकृतेः (त्रिगुणात्मिकायाः कारणरूपायाः मूलप्रकृतेः) पृथक् (भिन्नं) पुरातनं (सनातनं) पुरुषं (पुरुषपदवाच्यं, वेदपुरुषं, चिदानन्दघनमित्यर्थः) विदुः (जानन्ति स्म) ॥ ३३ ॥

(समासः) पुरा (प्राग्वृत्तं) विदन्तीति पुराविदः । निगृहीतं मानसं यैस्ते निगृहीतमानसास्तैः । आत्मनि अधि इति अध्यात्मं, अध्यात्मं दृक् अध्यात्मदृक् तया । विकारेभ्यः बहिरिति बहिर्विकारं । पुरा भवः पुरातनः तम् ॥ ३३ ॥

(व्याकरणम्) पुराविदः = पुरा + विद् + क्विप् । पुरातनं = पुरा+ट्यु ॥ ३३ ॥

(वाच्यान्तरम्) पुराविद्भिः भवान् पुरातनः पुरुषः विद्यते स्म ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(कोषः) प्रकृतिः पञ्चभूतेषु प्रधाने मूलकारणे इति यादवः ॥३३॥

(सरलार्थः) ब्रह्मतत्त्वविदः अपि पुराणपुरुषाः इन्द्रियग्रामं वशीकृत्य महता प्रयासेन त्वां साक्षात्कुर्वन्ति, तथा साङ्ख्यशास्त्रप्रतिपादितविकारेभ्यः भिन्नं, त्रैगुण्यात्मनो मूलकारणात् पृथक् स्थितं त्वामेव अव्ययं विज्ञानघनं पुरुषं वदन्ति ॥ ३३ ॥

(भावार्थ) प्राचीनतत्त्वको जाननेवाले विद्वान् योगियों द्वारा अन्तर्दृष्टि से किसी तरह दर्शन किये गये आपको, संसार से उदासीन, त्रिगुणात्मक कारणरूप मूलप्रकृति से पृथक् परमपुरुष ऐसा कहते हैं ॥ ३३ ॥

निवेशयामासिथ हेलयोद्धृतं फणाभृतां छादनमेकमोकसः ।
जगत्त्रयैकस्थपतिस्त्वमुच्चकैरहीश्वरस्तम्भशिरःसु भूतलम् ॥

(सुबोधिनी) जगत्त्रयैकस्थपतिः (त्रिभुवनैकशिल्पी, त्रिलोकस्वामी च) त्वं (भवान्) हेलया (अनायासेन) उद्धृतं (वराहावतारे ऊर्ध्वीकृतं) फणाभृतां (फणिनां) ओकसः (आश्रयस्य, सद्मनश्च) एकं (अद्वितीयं) छादनं (आवरणभूतं) भूतलं (पृथ्वीतलं) उच्चकैः (उन्नतेषु) अहीश्वरस्तम्भशिरःसु (शेषफणासहस्रेषु) निवेशयामासिथ (निवेशितवान् असि) ॥ ३४ ॥

(समासः) त्रयः अवयवा अस्य इति त्रयं, जगतां त्रयं जगत्त्रयं एकश्च असौ स्थपतिः एकस्थपतिः, जगत्त्रयस्य एकस्थपतिः जगत्त्रयैकस्थपतिः । फणा बिभ्रति इति फणाभृतः तेषां । ईष्ट इति ईश्वरः, अहीनां ईश्वरः अहीश्वरः, स एव स्तम्भः अहीश्वरस्तम्भः, तस्य शिरांसि तेषु ॥ ३४ ॥

(व्याकरणम्) उद्धृतं उद् + धृ + क्त । छादनं = छद् + णिच् + ल्युट् । निवेशयामासिथ = नि + विश + णिच् + लिट् – थल् ॥ ३४ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) जगत्त्रयैकस्थपतिना त्वया ··· निवेशयामासे ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(कोषः) हेलालीलेत्यमी हावा इत्यमरः । श्रोकः सद्मनि चाश्रये, इति विश्वः ॥ ३४ ॥

(सरलार्थः) त्रिजगतः सुचतुरो निर्माता भवान् अद्भुतं नागभवनं निर्मिमाय । यस्य स्तम्भांसि शेषस्य फणासहस्रं, पृथ्वी एव उपरितनं छादनभूतं पात्रं वर्तते ॥ ३४ ॥

(भाषार्थ) तीनों लोकके बनानेवाले चतुर कारीगर तूनें अद्भुत नागलोक बनाया । शेष (सर्पराज) के हजारों फन जिसके खंभे हैं और पृथ्वी जिसके ऊपरका ढकना है ॥३४॥

अनन्यगुर्वास्तव केन केवलः पुराणमूर्तेर्महिमावगम्यते ।
मनुष्यजन्मापि सुरासुरान् गुणैर्भवान् भवच्छेदकरैः करोत्यधः

(अन्वयः) अनन्यगुर्वाः तव पुराणमूर्तेः केवलः महिमा केन अवगम्यते ? मनुष्यजन्मा अपि भवान् भवच्छेदकरैः गुणैः सुरासुरान् अधःकरोति ॥ ३५ ॥

(सुबोधिनी) अनन्यगुर्वाः (गुर्वन्तररहितायाः, सर्वश्रेष्ठाया इत्यर्थः) तव (भवतः) पुराणमूर्तेः (सनातनतनोः) केवलः (कृत्स्नः) महिमा (सामर्थ्यं) केन (पुरुषेण) अवगम्यते ? (बुध्यते ?) न केनापीत्यर्थः, मनुष्यजन्मा (मानवदेहधारी) अपि भवान्, भवच्छेदकरैः (संसारनिवर्तकैः) गुणैः (ज्ञानादिभिः) सुरासुरान् (देवदानवान्) अधःकरोति (तिरस्करोति ॥ ३५ ॥

(समासः) न विद्यते अन्यो गुरुयस्यास्तस्याः । पुराणा चासौ मूर्तिरिति पुराणमूर्तिस्तस्याः । मनुष्यात् जन्म यस्य सः मनुष्यजन्मा । भवस्य च्छेदः भवच्छेदः, भवच्छेदं कुर्वन्ति इति भवच्छेदकरास्तैः । सुराश्च असुराश्च सुरासुरास्तान् ॥ ३५ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(व्याकरणम्) महिमा = महत् + इमनिच् । अवगम्यते + अव + गम् + य + लट् ते । अधःकरोति = अधः + कृ + लट् + ति ॥ ३५ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्)........केवलं महिमानं कः अवगच्छति । मनुष्यजन्मना अपि भवता भवच्छेदकरैः गुणैः सुरासुराः अधः क्रियन्ते ॥

(कोषः) केवलः कृत्स्न एकः स्यात्केवलश्चावधारणे इति विश्वः ॥

(सरलार्थः) यतः मनुष्यतनुरपि भवान् ज्ञानादिगुणैः देवान् दानवांश्च अधःकरोति, अतः चिरन्तनस्य तव सकलं माहात्म्यं ज्ञातुं न कश्चिच्छक्नोति ॥ ३५ ॥

(भाषार्थ) सबके गुरु आपकी सम्पूर्ण महिमा कौन जान सकता है ? मनुष्य के यहां भी जन्म लेकर आपने भवबन्धनके काटनेवाले अपने गुणोंसे देव और दानवोंको नीचा दिखा दिया ॥ ३५ ॥

लघूकरिष्यन्नतिभारभङ्गुराममूं किल त्वं त्रिदिवादवातरः ।
उदूढलोकत्रितयेन साम्प्रतं गुरुर्धरित्री क्रियतेतरां त्वया ॥ ३६ ॥

(अन्वयः) त्वं (भवान्) अतिभारभंगुरां अमूं लघूकरिष्यन् किल त्रिदिवात् अवातरः । साम्प्रतं उदूढलोकत्रितयेन त्वया धरित्री गुरुः क्रियतेतराम् ॥ ३६ ॥

(सुबोधिनी) त्वं (भवान्) अतिभारभङ्गुरां (भारातिशयभज्यमानां) अमूं (पृथ्वीं) लघूकरिष्यन् किल (निर्भारां विधास्यन् खलु) त्रिदिवात् (स्वर्गात्) अवातरः (अवतीर्णोऽसि) साम्प्रतं (इदानीं) उदूढलोकत्रितयेन (कुक्षौ धृतत्रिलोकेन) त्वया (भवता) धरित्री (पृथ्वी) गुरुः (पूज्या, भारवती च) क्रियतेतरां (अतिशयेन क्रियते) ॥ ३६ ॥

(समासः) अतिभारभङ्गुरां = अतिशयितो भारः अतिभारः तेन भङ्गुरा तां । लघूकरिष्यन् = अलघुं लघुं सम्पद्यमानां करिष्यन् इति

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

लघूकरिष्यन् । लोकानां त्रितयं लोकत्रितयं, उदूढं लोकत्रितयं येन तेन उदूढलोकत्रितयेन ॥ ३६ ॥

(व्याकरणम्) लघूकरिष्यन् = लघु + च्वि + कृ + लृट् + शतृ (स्य) अवातरः = अव + तृ + लङ् + सिप् ॥ ३६ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) त्वया·········लघूकरिष्यता·········अवातीर्यत त्रितयः त्वं धरित्रीं गुरु करोषितराम् ॥ ३६ ॥

(कोष:) स्वरव्ययं, स्वर्गनाकत्रिदिवत्रिदशालया इत्यमरः ॥ ३६ ॥

(सरलार्थः) त्वं दैत्यानां भारातिशयेन भज्यमानां भुवं भाररहितां विधातुमभिलषन् इह समागतोऽसि तथा पूर्वं दैत्यादिभाराक्रान्तां भूमिं इदानीं आत्मगौरवेण पूज्यां भारवतीं च करोषितराम् ॥ ३६ ॥

(भाषार्थ) दैत्यों का नाश कर पृथ्वी के भार को हलका करने वाला तूं इस समय अपने आगमन से इसे पूज्य और गौरव युक्त बना रहा है ॥ ३६ ॥

निजौजसोज्जासयितुं जगद्द्रुहामुपाजिहीथा न महीतलं यदि ।
समाहितैरप्यनिरूपितस्ततः पदं दृशः स्याः कथमीश मादृशाम्

(अन्वयः) निजौजसा जगद्द्रुहां उज्जासयितुं महीतलं न उपाजिहीथाः यदि ततः समाहितैः अपि अनिरूपितः (त्वं) हे ईश ! मादृशां दृशः पदं कथं स्याः ॥ ३७ ॥

(सुबोधिनी) निजौजसा (स्वतेजसा) जगद्द्रुहां (जगद्विद्वेषिणां) उज्जासयितुं (हिंसितुं) महीतलं (भूतलं) न उपाजिहीथाः (न अवतरेः) यदि (चेत्) ततः (तर्हि) समाहितैः (समाहितचित्तैः) अपि, अनिरूपितः (अगृहीतः त्वं (भवान्) हे ईश ! (हे भगवन् !) मादृशां (चर्मचक्षुषां) दृशः (दृष्टेः) पदं (गोचरः) कथं (केन प्रकारेण) स्याः (भवेः) न कथञ्चिदित्यर्थः ॥ ३७ ॥

(समासः) निजं ओजः निजौजाः तेन । जगद्भ्यो द्रुह्यन्ति इति

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जगद्द्रुहः तेषां । महीतलं = मह्याः तलं महीतल । अनिरूपितः = न निरूपितः अनिरूपितः । मादृशां = अहं इव पश्यन्ति इति मादृशः तेषां ॥

(व्याकरणम्) उज्जासयितुं = उत् + जस् + णिच् + स्वार्थे + तुमुन् उपाजिहीथाः = उप + हा + लङ् + थास् + ॥ ३७ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्)·········उपाहीयत·········अनिरूपितेन त्वया··· ·········पदेन·········भूयेत ॥ ३७ ॥

(सरलार्थः) यदि दैत्यानां विनाशाय महीतलं न अलंक्रियाः तदा योगिभिः अपि अनवलोकितः त्वं मादृशां दर्शनपथं कथं स्याः ॥ ३७ ॥

(भाषार्थ) यदि दैत्यों को नाश करने की गरज से आप पृथ्वी पर न आये हुए होते तो बड़े बड़े योगियों के लिये भी दुर्लभ दर्शन वाले आपका मुझ जैसे तुच्छ पुरुष को दर्शन कैसे होता ॥ ३७ ॥

उपप्लुतं पातुमदो मदोद्धतैस्त्वमेव विश्वम्भर विश्वमीशिषे ।
ऋते रवेः क्षालयितुं क्षमेत कः क्षपातमस्काण्डमलीमसं नभः

(अन्वयः) हे विश्वम्भर ! मदोद्धतैः उपप्लुतं अदः विश्वं पातुं त्वं एव ईशिषे क्षपातमस्काण्डमलीमसं नभः क्षालयितुं रवेः ऋते कः क्षमेत ॥ ३८ ॥

(सुबोधिनी) हे विश्वम्भर (हे जगत्पालक) मदोद्धतैः (दर्पगर्वितैः) उपप्लुतं (पीडितं) अदः (एतत्) विश्वं (जगत्) पातुं (रक्षितुं) त्वं एव (भवानेव) ईशिषे (समर्थोऽसि) दृष्टान्तमाहः—

क्षपातमस्काण्डमलीमसं (रजनीतमःसमूहमलिनं) नभः (आकाशं) क्षालयितुं (निर्म्मलीकर्तुं) रवेः—ऋते (सूर्याद्विना) कः क्षमेत (कः शक्तो भविता) न कोऽपीत्यर्थः ॥ ३८ ॥

(समासः) विश्वं बिभर्तीति विश्वंभरस्तत्सम्बुद्धौ । मदेन उद्धताः मदोद्धतास्तैः । क्षपायाः तमस्काण्डं तेन मलीमसं तत् ॥ ३८ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(व्याकरणम्) उपप्लुतं = उप + प्लु + क्त । ईशिषे = ईश + लट्-से । क्षालयितुं = क्षल + णिच् + स्वार्थे तुमुन् । क्षमेत + क्षम् + लिङ् + ई ÷ त ॥ २८ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) हे विश्वम्भर !......त्वया एव ईष्यते...... केन क्षम्येत ॥ ३८ ॥

(कोषः) गलीमसं तु मलिमं कच्चरं मलदूषितमित्यमरः ॥ ३८ ॥

(सरलार्थः) हे भगवन् ! यथा निशान्धकारेण मलिनस्य नभसः क्षालने सूर्य एव समर्थः, तथैव दैत्यैः पीडितं जगतीतलं दैत्यरहितं कर्तुं रक्षितुञ्च भवानेव समर्थः ॥ ३८ ॥

(भाषार्थ) हे विश्व को पालन करने वाले ! रात्रि के अन्धेरे से मलिन आकाश को निर्मल करने का सामर्थ्य जैसे एकमात्र सूर्य को ही है उसी तरह भूतल से दैत्यों को नाश करने का भी सामर्थ्य एकमात्र आप ही को है ॥ ३८ ॥

करोति कंसादिमहीभृतां वधाज्जनो मृगाणामिव यत्तव स्तवम् ।
हरे हिरण्याक्षपुरःसरासुरद्विपद्विषः प्रत्युत सा तिरस्क्रिया ॥

(अन्वयः) जनः मृगाणां इव कंसादिमहिभृतां वधात् (तव) स्तवं करोति इति यत्, हे हरे ! सा हिरण्याक्षपुरःसरासुरद्विपद्विषः तव प्रत्युत तिरस्क्रिया ॥ ३९ ॥

(सुबोधिनी) जनः (साधारण लोकः) मृगाणां (हरिणानां) इव (यथा) अतितुच्छानामित्यर्थः, कंसादिमहीभृतां (कंसादिराज्ञां) वधात् (हननात्) तव (भवतः) स्तवं (स्तोत्रं) करोति (विधत्ते) इति यत्, हे हरे ! (हे कृष्ण !) सा (स्तुतिक्रिया) हिरण्याक्षपुरःसरासुरद्विपद्विषः (हिरण्याक्षप्रभृतिदैत्यगजशत्रोः) तव (भवतः) प्रत्युत (वैपरीत्येन)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"प्रत्युत इत्युक्तवैपरीत्ये" "इति गणव्याख्यानात्" तिरस्क्रिया (अवमानः, एव) ॥ ३९ ॥

(समासः) कंसादिमहीभृतां = महीं बिभ्रतीति महीभृतः, कंस आदिर्येषां ते कंसादयः, कंसादयः महीभृतः कंसादिमहीभृतस्तेषाम् । हिरण्याक्षपुरःसरासुरद्विपद्विषः = पुरः सरतीति पुरःसरः, द्वाभ्यां पिबन्तीति द्विपाः, असुराः एव द्विपा असुराद्विपाः, हिरण्याक्षः पुरसरो येषां ते हिरण्याक्षपुरःसराः, हिरण्याक्षपुरःसराश्च ते असुरद्विपाश्च हिरण्याक्षपुरःसरासुरद्विपाः, तान् द्वेष्टि इति हिरण्याक्षपुरःसरासुरद्विपद्विट् तस्य ॥ ३९ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) जनैः स्तवः क्रियते येन (भूयते) तया तिरस्क्रियया भूयते ॥ ३९ ॥

(सरलार्थः) गजघातिनः सिंहस्य मृगवधवर्णनं यथा तस्य गजवधजनितां कीर्तिं क्षिणोति, तथैव जनाः महासुरघातिनं त्वां कंसादिक्षुद्रनृपतीनां वधमुपक्रम्य यत् स्तुवन्ति, सा तव वास्तविकी स्तुतिः न, किन्तु तिरस्कारः एव ॥ ३९ ॥

(भाषार्थ) बड़े बड़े मतवाले हाथियों को मारने वाले सिंहकी स्तुति करने में मृगवध का वर्णन जैसे उसकी कीर्ति को संकुचित करता है उसी तरह हिरण्यकशिपु जैसे दैत्यराट् को मारने वाले आपकी कंस वध के वर्णन से की हुई स्तुति आप के बड़प्पन को नहीं सिद्ध करती है ॥ ३९ ॥

प्रवृत्त एव स्वयमुज्झितश्रमः क्रमेण पेष्टुं भुवनद्विषामसि ।
तथापि वाचालतया युनक्ति मां मिथस्त्वदाभाषणलोलुपं मनः

(अन्वयः) उज्झितश्रमः "सन्" क्रमेण भुवनद्विषां पेष्टुं स्वयं एव प्रवृत्तः असि तथापि मिथः त्वदाभाषणलोलुपं मनः मां वाचालतया युनक्ति ॥ ४० ॥

(सुबोधिनी) उज्झितश्रमः (त्यक्तखेदः) "सन्" क्रमेण (पर्यायेण) भुवनद्विषां (जगद्विद्वेषिणां) पेष्टुं (हिंसितुं) स्वयं

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एव (आत्मनैव; नकेनापि प्रेरित इत्यर्थः) प्रवृत्तः असि (उद्युक्तोऽसि) तथापि (स्वतः प्रवृत्तेऽपि) मिथः (रहसि) त्वदाभाषणलोलुपं (त्वया सह संलापाभिलाषुकं) मनः (मानसं) मां, वाचालतया (वावदूकतया) युनक्ति (युक्तं करोति, मां वाचालं करोतीत्यर्थः) ॥ ४० ॥

(समासः) उज्झितः श्रमो येन सः । भुवनानि द्विषन्ति इति भुवनद्विषः तेषां । त्वया आभाषणं त्वदाभाषणं त्वदाभाषणे लोलुपं इति त्वदाभाषणलोलुपम् । वाचालतया = वाचः अस्य सन्तीति वाचालः, वाचालस्य भावः वाचालता, तया ॥ ४० ॥

(व्याकरणम्) पेष्टुं = पिष्+तुमुन् । युनक्ति = युज+लट्+ति

(वाच्य०) उज्झितश्रमेण "सता"·················प्रवृत्तेन भूयते·········लोलुपेन मनसाहं युज्ये ॥ ४० ॥

(कोषः) लुब्धोऽभिलाषुकस्तृष्णक् समौ लोलुपलोलुभौ ॥ ४० ॥

(सरलार्थः) त्वं क्रमशः जगद्विद्वेषिणां असुराणां विघाताय स्वयमेव प्रयतसे, नास्ति अत्र ईषदपि मद्वचनस्यावश्यकता, तथापि एकान्ते त्वया सह भाषणाय लोलुपं मे मनः किञ्चिदभिधातुं अभिलषति

(भाषार्थ) परिश्रमकी पर्वाह न कर संसारके दुष्टोंको पीस डालनेके लिये आप विना कहेही प्रवृत्त हो रहे हैं, इसके लिये कुछ भी कहना व्यर्थही है, फिर भी एकान्त में आपके साथ भाषण करनेके लिये मैं विशेष उत्कण्ठित हो रहा हूं ॥४०॥

तदिन्द्रसन्दिष्टमुपेन्द्र यद्वचः क्षणं मया विश्वजनीनमुच्यते ।
समस्तकार्येषु गतेन धुर्य्यतामहिद्विषस्तद्भवता निशम्यताम्

(अन्वयः) तत् हे उपेन्द्र ! इन्द्रसन्दिष्टं विश्वजनीनं यत् वचः क्षणं मया उच्यते तत् अहिद्विषः समस्तकार्येषु धुर्य्यतां गतेन भवता निशम्यताम् ॥ ४१ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(सुबोधिनी) तत् (तस्मात्कारणात्) हे उपेन्द्र ! (हे (इन्द्रावरज !) इन्द्र सन्दिष्टं (इन्द्रोक्तं) विश्वजनीनं (जगतः हितकरं) यत्-वचः (यद्वाक्यं) क्षणं (क्षणमात्रं) "नतु चिरमित्यर्थः" मया, उच्यते (कथ्यते) तत् (वचः) अहिद्विषः (वृत्रघ्नः) समस्तकार्येषु (सकलकर्तव्येषु) धुर्य्यतां (अग्रेसरतां) गतेन (प्राप्तेन) भवता (त्वया) निशम्यताम् (श्रूयताम्) ॥४१॥

(समासः) इन्द्रेण सन्दिष्टं इन्द्रसन्दिष्टम् । विश्वस्मै जनाय हितं विश्वजनीनं । अहिं द्वेष्टीति अहिद्विट् तस्य । समस्तकार्येषु = समस्तानि कार्याणि समस्तकार्य्याणि तेषु । धुर्य्यतां = धुरं वहतीति धुर्य्यः, तस्य भावः धुर्य्यता ताम् ॥ ४१ ॥

(व्याकरणम्) धुर्य्यतां = धुर् + यत् + ता । अहिद्विषः = अहि + द्विष् + क्विप् । निशम्यतां = नि + शम् + लोट्-ताप् ॥ ४१ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्)···अहं ब्रवीमि····गतः भवान् निशाम्यतु ॥

(सरलार्थः) हे उपेन्द्र ! इन्द्रेण सन्दिष्टं जगतः हितकरं वचः अहं वच्मि इन्द्रस्य सर्वेषु कर्मसु प्रधानतया अभिमतः भवान् अवधानपूर्वकं तत् शृणोतु ॥ ४१ ॥

(भाषार्थ) हे उपेन्द्र ! जगत्‌के कल्याणको करनेवाला इन्द्रका सन्देश मैं कहता हूं, आप इन्द्रके प्रधान पुरुष हैं इसलिये सावधान होकर सुनें ॥ ४१ ॥

अभूदभूमिः प्रतिपक्षजन्मनां भियां तनूजस्तपनद्युतिर्दितेः ।
यमिन्द्रशब्दार्थनिषूदनं हरेर्हिरण्यपूर्वं कशिपुं प्रचक्षते ।४२।

(अन्वयः) प्रतिपक्षजन्मनां भियां अभूमिः तपनद्युतिः दितेः तनूजः अभूत् । हरेः इन्द्रशब्दार्थनिषूदनं यं हिरण्यपूर्वं कशिपुं प्रचक्षते ॥ ४२ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(सुबोधिनी) प्रतिपक्षजन्मनां (रिपुप्रभवानां) भियां (भीतीनां) अभूमिः (अनाधारः, अविषयः इति वा) तपनद्युतिः (सूर्यसमतेजाः) दितेः (कश्यपपत्न्याः) तनूजः (शरीरजः, दैत्य इत्यर्थः) अभूत्। हरेः (इन्द्रस्य) इन्द्रशब्दार्थनिषूदनं (परमैश्वर्यरूपार्थनिवर्तकम्) यं (दैत्यं) हिरण्यपूर्वं कशिपुं (नाम्ना हिरण्यकशिपुं) प्रचक्षते (कथयन्ति) ॥ ४२ ॥

(समासः) प्रतिकूलः पक्षः प्रतिपक्षः, तस्मात् जन्म यासां ताः प्रतिपक्षजन्मानस्तासां। न भूमिः अभूमिः। तन्वा जात इति तनूजः। तपनस्य द्युतिरिव द्युतिर्यस्य सः। इन्दति परमैश्वर्यं लभते इति इन्द्रः, इन्द्ररूपः शब्दः इति इन्द्रशब्दः तस्य अर्थः इन्द्रशब्दार्थः, तस्य निषूदनः तम्। हिरण्यपूर्वं = हिरण्यं पूर्वौ यस्य तम् ॥ ४३ ॥

(व्याकरणम्) भियां = भी + क्विप्। प्रचक्षते = प्र + चक्ष + लट्-अन्ते ॥ ४३ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्)...अभूम्या...द्युतिना...तनूजेन अभावि। निषूदनः यः...पूर्वः कशिपुः प्रख्यायते ॥ ४२ ॥

(सरलार्थः) अरिभीतीनामनाधारः सूर्यसदृशतेजस्वी हिरण्यकशिपुर्नाम दैत्यः आसीत्, यः निजया ऐश्वर्यसम्पदा इन्द्रस्य अपि इन्द्रत्वं निरास्थत् ॥

(भाषार्थ) शत्रुओंसे कभी न डरनेवाला सूर्य सदृश तेजस्वी हिरण्यकशिपु नामका दैत्य था। जिसके ऐश्वर्यके सामने इन्द्रका भी ऐश्वर्य तुच्छ मालूम पड़ता था ॥ ४२ ॥

समत्सरेणासुर इत्युपेयुषा चिराय नाम्नः प्रथमाभिधेयताम्।
भयस्य पूर्वावतरस्तरस्विना मनःसु येन द्युसदां न्यधीयत ॥

(अन्वयः) समत्सरेण असुर इति नाम्नः चिराय प्रथमाभिधेयतां उपेयुषा तरस्विना येन द्युसदां मनःसु भयस्य पूर्वावतरः न्यधीयत ॥ ४३ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(सुबोधिनी) समत्सरेण (अन्यशुभद्वेषिणा) असुर इति (असुर इत्याख्यायाः) चिराय (चिरकालेन) प्रथमाभिधेयतां (अन्वर्थतया मुख्यार्थतां) उपेयुषा (प्राप्तवता) तरस्विना (बलवता) येन (हिरण्यकशिपुना) द्युसदां (देवानां) मनःसु (अन्तःकरणेषु) भयस्य (भीतेः) पूर्वावतरः (प्रथमः प्रवेशः) न्यधीयत (निहितः) ॥ ४३ ॥

(समासः) मत्सरेण सहितः समत्सरः तेन । प्रथमम् अभिधेयं प्रथमाभिधेयं, तस्य भावः प्रथमाभिधेयता ताम् । पूर्वावतरः = अवतरणं इति अवतरः, पूर्वः अवतरः इति पूर्वावतरः । द्युसदां = दिवि सीदन्ति इति द्युसदस्तेषां ॥ ४३ ॥

(व्याकरणम्) तरस्विना = तरः अस्य अस्ति इति तरस् + विनि । न्यधीयत = नि+धा+लङ्-त ॥ ४३ ॥

(वाच्य०) समत्सरः'''उपेयिवान् तरस्वी यः''''पूर्वावतरं न्यदधात् ।

(सरलार्थः) दैत्यराट् हिरण्यकशिपुः एव स्वर्लोकस्थितानामपि देवानां मनःसु भयस्य प्रथमोत्पादकः अभूत् ॥ ४३ ॥

(भाषार्थ) वही दैत्योंका राजा हिरण्यकशिपु स्वर्गलोक में रहने वाले देवताओं के मन में पहले पहल भय को पैदा करने वाला हुआ ॥ ४३ ॥

दिशामधीशांश्चतुरो यतः सुरानपास्य तं रागहृताः सिषेविरे ।
अवापुरारभ्य ततश्चला इति प्रवादमुच्चैरयशस्करं श्रियः॥४४॥

(अन्वयः) श्रियः, यतः दिशां अधीशान् चतुरः सुरान् अपास्य तं रागहृताः (सत्यः) सिषेविरे ततः आरभ्य अयशस्करं उच्चैः चला इति प्रवादं अवापुः ॥ ४४ ॥

(सुबोधनी) श्रियः (सम्पदः) यतः (यदा) दिशां, अधीशान् (दिक्पतीन्) चतुरः (चतुःसंख्यकान्) सुरान् (इन्द्र-वरुण-यम-कुबेरान्) अपास्य (विहाय) तं (हिरण्यकशिपुं)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

रागहृताः (अनुरागलुब्धाः) सत्यः, सिषेविरे (सेवितुमुपचक्रिरे) ततः (तत आरभ्य) अयशस्करं (दुष्कीर्तिकरं) उच्चैः (महत्) चलाः (अस्थिराः) इति (एतद्रूपं) प्रवादं (जनापवादं) अवापुः (प्रापुः) ॥ ४४ ॥

(समासः) रागहृताः = रागेण हृताः रागहृताः । अयशस्करं = न यशः अयशः, तत् करोतीति अयशस्करस्तम् ॥ ४४ ॥

(व्याकरणम्) सिषेविरे = सेव+लिट् + इरे । आरभ्य = आ + रम् + ल्यप् । अवापुः = अव+अप् + लिट् उस् ॥ ४४ ॥

(वाच्य०) सः श्रीभिः रागहृताभिः सिषेवे । प्रवादः आपे ॥४४॥

(सरलार्थः) सम्पदः, हिरण्यकशिपोः शौर्यश्रवणेन अनुरागवशीभूताः सत्यः इन्द्रवरुणयमकुबेरान् परित्यज्य तमेव पर्यसेवन्त, तदा प्रभृति एव ताः "चलाः" इति लोकापवादमलभन् ॥ ४४ ॥

(भाषार्थ) वीरप्रिया चारो दिशाओं की राज्यलक्ष्मी हिरण्यकशिपुके शौर्यादि गुणको सुनकर उसपर अत्यन्त आसक्त हुई और उस दिनसे इन्द्रादि अपने पतियोंको छोड़ दिया । तभी से लक्ष्मी चञ्चल है ऐसा अपवाद इसे प्राप्त हुआ ॥ ४४ ॥

पुराणि दुर्गाणि निशातमायुधं बलानि शूराणि घनाश्च कंचुकाः
स्वरूपशोभैकफलानि नाकिनां गणैर्यमाशङ्क्य तदादि चक्रिरे ॥

(अन्वयः) नाकिनां गणैः यं आशङ्क्य तदादि स्वरूपशोभैकफलानि पुराणि दुर्गाणि चक्रिरे, आयुधं निशातं चक्रे, बलानि शूराणि चक्रिरे, कञ्चुकाः घनाः चक्रिरे ॥ ४५ ॥

(सुबोधिनी) नाकिनां (देवानां) गणैः (समूहैः) यं (हिरण्यकशिपुं) आशङ्क्य (बाधकरूपेण सम्भाव्य) तदादि (तदाप्रभृति) स्वरूपशोभैकफलानि (स्वरूपशोभैकप्रयोजन-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जनकानि) पुराणि (नगराणि) दुर्गाणि (प्राकारपरिखादिभिः अगम्यानि) चक्रिरे (विदधिरे) आयुधं (शस्त्रं) नशितं (तीक्ष्णं) बलानि (सैन्यानि) शूराणि (शौर्यवन्ति) कञ्चुकाः (लोहवर्माणि) घनाः (दुर्भेदाः) चक्रिरे ॥ ४५ ॥

(समासः) तदादि = स कालः आदिः यस्मिंस्तत् तदादि तद्यथा-स्यात्तथा । शोभनं इति शोभा, स्वं रूपं स्वरूपं स्वरूपस्य शोभा स्वरूपशोभा, सा एव एकं फलं येषां तानि । आयुधं = आयुध्यते अनेन इति आयुधं । नाकोऽस्त्येषान्ते नाकिनस्तेषाम् ॥ ४५ ॥

(व्याकरणम्) निशातं = नि + शो + क्त । चक्रे = कृ + लिट्-ए । चक्रिरे = कृ + लिट् = इरे ॥ ४५ ॥

(वाक्यपरिवर्तनम्) गणाः कञ्चुकान् घनान् चक्रुः ॥ ४५ ॥

(सरलार्थः) देवाः हिरण्यकशिपुसकाशात् भयमाशङ्क्य परितः प्राकारपरिखादीना पुरं गन्तुमशक्यं चक्रिरे, शत्रूणामभावात् चिरकालात् एकत्र स्थापितानां अत एव मलिनाग्रधाराणां कुण्ठितानां अस्त्राणां शाणो-ल्लेखनादिभिः तैक्ष्ण्यं विदधिरे । युद्धाभावात् स्फूर्तिरहिता अत एव सालसाः सैनिकाः कृत्रिमयुद्धादिव्यापारेण शौर्यवन्तः अभवन्, लौहकवचानि च अतिकठिनानि निर्ममिरे ॥ ४५ ॥

(भाषार्थ) देवताओंने हिरण्यकशिपुके भयसे अपने नगरके चहुंओर खाई खोदवाकर उसे शत्रुओंके लिये दुर्गम बनाया । जंग लगेहुए शस्त्रोंको सानपर चढ़वाकर पैना बनाया । युद्ध न होनेसे आलसी सैनिकोंको कवायत करवाकर फुर्तीला बनवाया और लोहे के कवचोंको सुदृढ़ बनवाया ॥ ४५ ॥

स सञ्चरिष्णुर्भुवनान्तरेषु यां यदृच्छयाशिश्रियदाश्रयः श्रियः ।
अकारि तस्यै मुकुटोपलस्खलत्करैस्त्रिसन्ध्यं त्रिदशैर्दिशे नमः ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(अन्वयः) भुवनान्तरेषु सञ्चरिष्णुः श्रियः आश्रयः सः यदृच्छया यां (दिशं) अशिश्रियत् मुकुटोपलस्खलत्करैः त्रिदशैः त्रिसन्ध्यं तस्यै दिशे नमः अकारि ॥ ४६ ॥

(सुबोधिनी) भुवनान्तरेषु (लोकान्तरेषु) सञ्चरिष्णुः (हिरण्यकशिपुः) यदृच्छया (स्वेच्छया) यां दिशं, अशिश्रियत् (अगमत्) मुकुटोपलस्खलत्करैः (किरीटरत्नेषु प्रस्खलद्धस्तैः, शिरसि बद्धाञ्जलिभिरिति यावत्) त्रिदशैः (देवैः) त्रिसन्ध्यं (त्रिकालं) तस्यै (दैत्याश्रितायै) दिशे, नमः (नमस्कारः) अकारि (विहितः) ॥ ४६ ॥

(समासः) मुकुटेषु उपलाः मुकुटोपलाः तेषु स्खलन्तः कराः येषां ते मुकुटोपलस्खलत्कराः तैः । तिस्रः दशा येषान्ते तैः त्रिदशैः, सम्यक् ध्यायति परमात्मानं अस्यां सा सन्ध्या, तिसृणां सन्ध्यानां समाहारः त्रिसन्ध्यम् । अन्यानि भुवनानि भुवनान्तराणि तेषु ॥ ४६ ॥

(व्याकरणम्) अशिश्रियत् = श्रि+लुङ्—तिप् = अ+ श्रि + चङ् तू—अशिश्रि+अ = तू । अकारि = कृ = लुङ् = त ॥ ४६ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) सञ्चरिष्णुना······आश्रयेण·········तेन········ या (दिक्) अश्रायि····केरा····त्रिदशाः····नमः अकार्षुः ॥ ४६ ॥

(सरलार्थः) तस्य माहात्म्यं किमुपवर्णयामः—सः स्वेच्छया यां दिशं आश्रयतिस्म, देवाः सन्ध्यादिवनन्दनेऽपि दिङ् नियमं परित्यज्य तद्भयात् तामेव दिशं प्रणमन्तिस्म ॥ ४६ ॥

(भाषार्थ) भुवनोंमें भ्रमण करनेवाला हिरण्यकशिपु अपनी इच्छासे जिस दिशामें जाता था, सन्ध्या वन्दनके समय दिशाके नियमको छोड़कर देवलोग उसी दिशाकी ओर मुखकर तीनोंकालके सन्ध्या समयमें नमस्कार किया करते थे ॥ ४६ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सटाच्छटाभिन्नघनेन बिभ्रता नृसिंह सैंहीमतनुं तनुं त्वया ।
समुग्धकान्तास्तनसङ्गभङ्गुरैरुरोविदारं प्रतिचस्करे नखैः ॥

(अन्वयः) हे नृसिंह ! अतनुं सैंहीं तनुं बिभ्रता सटाच्छटाभिन्नघनेन त्वया सः मुग्धकान्तास्तनसङ्गभङ्गुरैः नखैः उरोविदारं प्रतिचस्करे ॥ ४७ ॥

(अन्वयः) हे नृसिंह ! (नृसिंहावतार भगवन् !) अतनुं (महतीं) सैंहीं (सिंहसम्बन्धिनीं) तनुं (मूर्तिं) बिभ्रता (धारयता) सटाच्छटाभिन्नघनेन (सटासमूहविदीर्णमण्डलेन) त्वया (भवता) सः (हिरण्यकशिपुः) मुग्धकान्तास्तनसङ्गभङ्गुरैः (मनोहरकामिनीकुचसम्पर्कभज्यमानैः) नखैः (कररुहैः) उरोविदारं (वक्षस्थलं विदार्य) प्रतिचस्करे (हतः) ॥ ४७ ॥

(समासः) ना सिंह इव नृसिंहः सत्सम्बुद्धौ हे नृसिंह ! अतनुं = न तनुः अतनुः तां । सैंहीं = सिंहस्य इयं सैंहीं तां । सटानां छटाः सटाच्छटाः, ताभिः भिन्ना घना येन सः तेन । कान्तायाः स्तनौ कान्तास्तनौ, मुग्धौ च तौ कान्तास्तनौ मुग्धकान्तास्तनौ, तयोः सङ्गः मुग्धकान्तास्तनसङ्गः, तेन भङ्गुरास्तैः । उरः विदार्य इति उरोविदारम् ॥ ४७ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) हे नृसिंह ······ अतनुं सैंहीं तनुं बिभ्रत् सटाच्छटाभिन्नघनः त्व तं·····प्रतिचस्करिथ ॥ ४७ ॥

(सरलार्थः) एवं सर्वलोकविलक्षणप्रभावशाली जगद्विजयी वज्रकठिनः अपि स हिरण्यकशिपुः भवता नखैर्विदारित इति वाङ्मनसयोरगोचरमहिम्नस्ते किमसाध्यम् ॥ ४७ ॥

(भाषार्थ) हे नृसिंह ! इतने प्रबल प्रतापी दैत्यराजको भी आपने नृसिंहावतार में कोमल नखोंसे पेट चीरकर मार डाला । आपकी महिमा कहांतक वर्णन की जाय ? ॥ ४७ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विनोदमिच्छन्नथ दर्पजन्मनो रणेन कण्ड्वास्त्रिदशैः समं पुनः
स रावणो नाम निकामभीषणं बभूव रक्षः क्षतरक्षणं दिवः ॥

(अन्वयः) अथ सः पुनः त्रिदशैः समं रणेन दर्पजन्मनः कण्ड्वाः विनोदं इच्छन् दिवः क्षतरक्षणं निकामभीषणं रावणः नाम रक्षः बभूव ॥ ४८ ॥

(सुबोधिनी) अथ (अनन्तरं) सः (हिरण्यकशिपुः) पुनः (भूयः) त्रिदशैः समं (देवैः सह) रणेन (संग्रामेण) दर्पजन्मनः (अहङ्कारप्रभवायाः) कण्ड्वाः (कण्डूयनस्य) विनोदं (अपनोदं) इच्छन् (अभिलषन्) दिवः (स्वर्गस्य) क्षतरक्षणं (नष्टसंरक्षणं) निकामभीषणं (अतिभयङ्करं) रावणो नाम (रावण इति नामधेयं) रक्षः (राक्षसः) बभूव राक्षसयोनौ जातः ॥ ४८ ॥

(समासः) त्रिदशैः = तिस्रो दशा येषान्ते तैः त्रिदशैः । दर्पजन्मनः = दर्पात् जन्म यस्याः सा दर्पजन्मा तस्याः । क्षतरक्षणं = रक्ष्यते अनेन इति रक्षणं, क्षतं रक्षणं येन तत् । निकामभीषणं = निकामं भीषणं निकामभीषणम् । विश्रवसोऽपत्यं पुमान् रावणः ॥ ४८ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) तेन पुनः .... इच्छता निकामभीषणेन दिवः क्षतरक्षणेन रावण इति नाम्ना रक्षसा बभूवे ॥ ४८ ॥

(व्याकरणम्) विनोदं = वि+नुद्+घञ् । इच्छन् = इष् + शतृ । बभूव = भू+लिट् । विश्रवसोऽपत्यं पुमान् रावण इति विग्रहे विश्रवसो विश्रवणरवणाविति प्रकृतेरवणादेशः ॥ ४८ ॥

(सरलार्थः) एवं पञ्चत्वमासाद्य अपि, देवैः सह बद्धवैरः सः आन्तरं सुरवैरं न तत्याज । पुनरपि निजभुजकण्डूतेः विनोदमभिलषन् अयमेव रावणो नाम राक्षसो भूत्वा पुनः प्रादुर्बभूव ॥ ४८ ॥

(भाषार्थ) देवताओंके साथ लड़नेकी इच्छा पूर्ण न होनेके कारण वही हिरण्यकशिपु अब इस जन्ममें रावणके नामसे

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उत्पन्न होकर अपनी रण-कण्डूतिको दूर करने चाहता है ॥ ४८ ॥

प्रभुर्बुभूषुर्भुवनत्रयस्य यः शिरोऽतिरागाद्दशमं* चिकर्तिषुः ।
अतर्कयद्विघ्नमिवेष्टसाहसः प्रसादमिच्छासदृशं पिनाकिनः ४९

* अत्रत्यमैतिह्यम्—

सूत उवाचः—

रावणो राक्षसश्रेष्ठो मानी मानपरायणः ।
आराध्य च हरं तत्र कैलासे पर्वतोत्तमे ॥ १ ॥
कियत्कालं समाराध्य प्रसन्नो न हरो यदा ।
ततश्चायं हिमवतो दक्षिणे वृक्षखण्डके ॥ २ ॥
भूमौ गर्तं तदा कृत्वा तत्राग्निञ्च समादधौ ।
तत्समीपे शिवं स्थाप्य हवनं विविधं तथा ॥ ३ ॥
चकार राक्षसश्रेष्ठो न प्रसन्नस्तथापि ह ।
तदा शिरांसि च्छित्वा स पूजनं शङ्करस्य च ॥ ४ ॥
आरब्धञ्च तदा तेन च्छिन्नानि नव वै यदा ।
एकस्मिन्नवशिष्टे तु प्रसन्नः शङ्करस्तदा ॥ ५ ॥

शिव उवाच ।

मनसश्चेप्सितं ब्रूहि ददामि तव राक्षस ।

राक्षस उवाच ।

यदि प्रसन्नो देवेश देहि मे बलमुत्तमम् ॥ ६ ॥
शिरांसि पूर्ववत्स्वामिन् कुरु मे शङ्कर प्रभो ।
इति तस्य वचः श्रुत्वा भक्तिमत्त्वाच्चकार सः ॥ ७ ॥
यथेप्सितं ददौ तस्मै ह्यतुलं बलमुत्तमम् ।
शिरांसि पूर्ववत्कृत्वा नीरुजानि तथा पुनः ॥ ८ ॥
प्रसादं तस्य सम्प्राप्य जगाम भवनं प्रति ।

इति शैवं पुराणम् ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(अन्वयः) यः भुवनत्रयस्य प्रभुः बुभूषुः अतिरागात् दशमं शिरः चिकर्तिषुः इष्टसाहसः "सः" इच्छासदृशं पिनाकिनः प्रसादं विघ्नं इव अतर्कयत् ॥ ४९ ॥

(सुबोधिनी) यः (रावणः) भुवनत्रयस्य प्रभुः (ईशः) बुभूषुः (भवितुमिच्छुः) अतिरागात् (अत्युत्साहात्, नतु फले विलम्बो भवतीति आत्मनो निर्वेदात्) दशमं, शिरः (मस्तकं) चिकर्तिषुः (चिच्छेदिषुः) इष्टसाहसः (प्रियसाहसः) सः, इच्छासदृशं (स्वेच्छानुकूलं पिनाकिनः (शिवस्य) प्रसादं (वरं) विघ्नं (अन्तरायं) इव, अतर्कयत् (अकल्पयत्) ॥ ४६ ॥

(समासः) त्रयः अवयवा अस्य इति त्रयं, भुवनानां त्रयं भुवनत्रयं तस्य । अतिगतः रागः अतिरागः तस्मात् । सहसा अविवेकेन कृतं कर्म साहसं, इष्टं साहसं अस्य असौ इष्टसाहसः । इच्छासदृशं=समान इव पश्यति इति सदृशः इच्छायाः सदृश इति इच्छासदृशः तम् । पिनाकिनः=पिनाकः अस्यास्तीतिपिनाकी तस्य ॥ ४९ ॥

(व्याकरणम्) बुभूषुः = भवितुमिच्छुः बुभूषु—भू + सन् + उ । चिकर्तिषुः = कर्तितुमिच्छुः—चिकर्तिषुः = कृत+सन्+उ । अतर्कयत् = तर्क+णिच् + स्वार्थे + लङ्—ति ॥ ४६ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) येन प्रभुणा बुभूषुणा चिकर्तिषुणा साहसेन इच्छासदृशः विघ्नः इव अतर्क्यत ॥ ४९ ॥

(सरलार्थः) भुवनत्रयस्य प्रभुर्भवितुमभिलाषुकः स रावणः निजैः कमलभूतैः नव शिरोभिः क्रमशः शिवं अपपूजत्, परं स न अप्रीयत, ततः शिवप्रसादाय दशमं शिरः कर्तितुं इच्छितवति रावणे शिवः प्रसन्नो भूत्वा अस्मै मनोऽभिलषितं वरं ददौ ॥ ४९ ॥

(भाषार्थ) तीनों लोकके साम्राज्यकी प्राप्तिके लिये रावण शङ्कर भगवानकी आराधना कर रहा था और उनके जल्दी

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रसन्न होनेके लिये इसने क्रम क्रम से अपने नौ सिर काटकर उनपर चढ़ा दिये दसवां सिर भी काटकर चढ़ानेही चाहता था कि शङ्करभगवानने प्रसन्न होकर उसे उसका मन चाहा वरदान दिया, परन्तु इस साहसीके मन में इस बात की कलक सदाके लिये रह गई कि दसवां सिर भी मैं भगवान् की भेंट न कर सका ॥ ४९ ॥

समुत्क्षिपन् यः पृथिवीभृतां वरं वरप्रदानस्य चकार शूलिनः ।
त्रसत्तुषाराद्रिसुतासंसम्भ्रमस्वयंग्रहाश्लेषसुखेन निष्क्रयम् ५०

(अन्वयः) यः पृथिवीभृतां वरं समुत्क्षिपन् शूलिनः वरप्रदानस्य त्रसत्तुषाराद्रिसुतासंसम्भ्रमस्वयंग्रहाश्लेषसुखेन निष्क्रयं चकार ॥ ५० ॥

(सुबोधिनी) यः (रावणः) पृथिवीभृतां (पर्वतानां) वरं (श्रेष्ठं कैलासं) समुत्क्षिपन् (दर्पात् उपरि प्रक्षिपन्) शूलिनः (शिवस्य) वरप्रदानस्य (इष्टवितरणस्य) त्रसत्तुषाराद्रिसुतासंसम्भ्रमस्वयंग्रहाश्लेषसुखेन (बिभ्यत्याः पार्वत्याः स्वयंग्रहालिङ्गनसुखेन) निष्क्रयं (विनिमयं, प्रत्युपकार निर्गतिमित्यर्थः) चकार (कृतवान्) ॥ ५० ॥

(समासः) पृथिवीं बिभ्रतीति पृथिवीभृतस्तेषां । शूलिनः=शूलमस्य अस्तीति शूली तस्य । वरस्य प्रदानं वरप्रदानं तस्य । तुषाराद्रेः सुता तुषाराद्रिसुता, त्रसन्ती च असौ तुषाराद्रिसुता, तस्याः ससम्भ्रमः स्वयङ्ग्रहः तेन आश्लेषः त्रसत्तुषा० तेन सुखं त्रसत्तुषा० तेन ।

(व्याकरणम्) समुत्क्षिपन्=समुत्क्षिपतीति समुत्क्षिपन्=सम्+उत्+क्षिप्+शतृ । चकार=कृ+लिट्+ति—अ ॥ ५० ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) येन समुत्क्षिपता निष्क्रयः चक्रे ॥ ५० ॥

(सरलार्थः) रावणः एकदा बलदर्पात् कैलासपर्वतं ऊर्ध्वं प्रचिक्षेप

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तदा पर्वतीयभागानां इतस्ततश्चलनादन्योन्यमाघातेन भगवती पार्वती भीत्या प्रियप्रार्थनां विनैव झटिति शिवस्य कण्ठं सुदृढं आलिलिङ्ग तेन त्रैलोक्याधिपत्यसुखादपि उत्कृष्टसुखप्राप्त्या सः शिवस्य प्रत्युपकृतिं चकार ॥

(भाषार्थ) रावणने अपने बलके घमंडमें आकर एक समय कैलास पर्वतको बगलिया कर तान दिया था। उस समय छोटे छोटे पर्वतीय भागोंके लड़खड़ा जानेसे पार्वती अत्यन्त भयभीत हो महादेवजी के गलेमें आकर लपट गई। पार्वतीके इस स्वयंग्रहालिङ्गन के सुख को देकर रावणने मानों शङ्कर भगवानके वरदान का बदला चुका दिया ॥ ५० ॥

पुरीमवस्कन्द लुनीहि नन्दनं मुषाण रत्नानि हरामराङ्गनाः ।
विगृह्य चक्रे नमुचिद्विषा वली य इत्थमस्वास्थ्यमहर्दिवं दिवः

(अन्वयः) बली यः नमुचिद्विषा विगृह्य पुरीं अवस्कन्द नन्दनं लुनीहि रत्नानि मुषाण अमराङ्गनाः हर इत्थं अहर्दिवं दिवः अस्वास्थ्यं चक्रे । ५१ ॥

(सुबोधिनी) बली (पराक्रमी) यः (रावणः) नमुचिद्विषा (नमुचेररिणा इन्द्रेण सह) विगृह्य (विरुध्य) पुरीं (अमरावतीं) अवस्कन्द (पुनः पुनरवरुरोध) नन्दनं (नन्दनवनं, लुनीहि (पुनः पुनश्चिच्छेद) रत्नानि (मरकतमण्यादीनि) मुषाण (पुनः पुनर्मुमोष) अमराङ्गनाः (देवपत्न्यः) हर (पुनः पुनर्जहार) इत्थं (अनेन प्रकारेण) अहर्दिवं (नक्तन्दिवं) दिवः (स्वर्गस्य) अस्वास्थ्यं (उपद्रवं) चक्रे (कृतवान्, पीडां जनयामासेत्यर्थः ॥ ५१ ॥

केचनैनमेवं व्याख्यान्ति =

बली वलवान् रावणः नमुचिद्विषा इन्द्रेण विगृह्य विरुध्य अहर्दिवं अहन्यहनि दिवः स्वर्गस्य अस्वास्थ्यं चक्रे पीड़ां जनयामास । कथं

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तदित्याह—सहि अनुचरान् प्रति आह—भोः प्रहस्त ! पुरीं अमरावतीं अवस्कन्द निरुन्धि, अयि महोदर ! त्वमितो नन्दनं लुनीहि छिन्धि, त्वञ्च बाष्कल ! रत्नानि मुषाण कोषं रिक्तीकुरु, त्वं पुनः कुम्भकर्ण ! अमराङ्गनाः हर, सुरवनिताः वन्दीकुरु, इत्थं स अस्वास्थ्यं चक्रे ॥ ५१ ॥

(समासः) नमुचिद्विषा = नमुचिं द्वेष्टीति नमुचिद्विट् तेन । अमराङ्गनाः = अमराणां अङ्गनाः अमराङ्गनास्ताः । अहर्दिवं = अहनि च दिवा च अहर्दिवं । अस्वास्थ्यं = स्वस्थस्य भावः स्वास्थ्यं, न स्वास्थ्य अस्वास्थ्यम्

(व्याकरणम्) अत्रावस्कन्द, लुनीहीत्यादौ सर्वत्र क्रियासमभिहारे लोट् लोटौ हिस्वौ वाच तध्वमोः इत्यनुवृत्तौ "समुच्चयेऽन्यतरस्ताम्" इति विकल्पेन कालसामान्ये लोट् , तत्प्रयुक्तं तिङादि कार्यञ्च ॥ ५१ ॥

(सरलार्थः) रावणः इन्द्रेण सह विरुध्य इन्द्रपुरीं अमरावतीं पुनः पुनरवरुरोध, नन्दनवनमपि भूयोभूयोऽभनक् , रत्नानि मुमोष, सुरकामिनीः जहार, इत्थं प्रतिदिनं स्वर्गस्थानां पीडामुत्पादयामास ॥५१॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) येन बलिना···पुरी अवस्कन्द्यस्व···लूयस्व···मुष्यस्व ह्रियस्व ॥ ५१ ॥

(भाषार्थ) रावण ने इन्द्र के साथ विरोध कर अमरावती पर बार बार चढ़ाई की नन्दनवन को तहस नहस कर डाला। रत्नों को चुराया। अप्सराओं को हरण किया। इस प्रकार प्रतिदिन स्वर्ग में भी अशान्ति मचाए रहा करता था ॥ ५१ ॥

सलीलयातानि न भर्तुरभ्रमोर्न चित्रमुच्चैःश्रवसः पदक्रमम् ।
अनुद्रुतः संयति येन केवलं बलस्य शत्रुः प्रशशंस शीघ्रताम् ॥

(अन्वयः) संयति येन अनुद्रुतः बलस्य शत्रुः अभ्रमोः भर्तुः सलीलयातानि न (प्रशशंस) उच्चैःश्रवसः चित्रं पदक्रमं (अपि) न (प्रशशंस) केवलं शीघ्रतां प्रशशंस ॥ ५२ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(सुबोधिनी) संयति (युद्धे) येन (रावणेन) अनुद्रुतः (अनुधावितः) बलस्य शत्रुः (इन्द्रः) अभ्रमोः (करिण्याः) भर्तुः (ऐरावतस्य) सलीलयातानि (सविलासगमनानि) न प्रशशंस (न तुष्टाव) उच्चैःश्रवसः (निजाश्वस्य) चित्रं नानाविधं) पदक्रमं (पादविक्षेपं) न प्रशशंस, किन्तु केवलं (एकां) शीघ्रतां (शीघ्रगामित्वं एव) प्रशशंस ॥ ५२ ॥

(समासः) सलीलयातानि = लीलया सहितानि सलीलानि, सलीलानि यातानि सलीलयातानि । पदक्रमं = पदानां क्रमः पदक्रमः तम् । संयम्यन्ते अस्मिन् इति संयत् तस्याम् ॥ ५२ ॥

(कोषः) "समुदायः स्त्रियां संयत्समित्याजिसमिद्युधः" इत्यमरः, "ऐरावतोऽभ्रमातङ्गैरावणाभ्रमुवल्लभाः" इत्यमरः ॥ ५२ ॥

(व्याकरणम्) अनुद्रुतः = अनु+द्रु+क्त । संयति = सम् + क्विप् । प्रशशंस = प्र+शस्+लिट्—तिप्—णल् ॥ ५२ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्)······अनुद्रुतेन······शत्रुणा······प्रशशंसिरे······चित्रः···पदक्रमः न प्रशशंसे शीघ्रता प्रशशंसे ॥ ५२ ॥

(सरलार्थः) बहुवारं संग्रामे निर्जितमपि पुरन्दरं ऐरावतस्य उच्चैःश्रवसश्च गतिलाघवात् रावणः गृहीतुं न शशाक अतोऽयमैरावताश्वयोः केवलं धावनसत्त्वरतामेव प्रशशंस गतिचातुर्यं न बहुमेने ॥ ५२ ॥

(भाषार्थ) अनेक बार युद्ध में पराजित भी इन्द्र को ऐरावत और उच्चैःश्रवा के शीघ्र गति के कारण रावण न पकड़ सका इसलिये इन्द्रने ऐरावत और उच्चैःश्रवा के उत्तमोत्तम गतियों की प्रशंसा न कर केवल उनके शीघ्र गति की ही प्रशंसा की ॥ ५२ ॥

अशक्नुवन् सोढुमधीरलोचनः सहस्ररश्मेरिव यस्य दर्शनम् ।
प्रविश्य हेमाद्रिगुहागृहान्तरं निनाय बिभ्यद्दिवसानि कौशिकः

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(अन्वयः) अधीरलोचनः कौशिकः सहस्ररश्मेः इव यस्य दर्शनं सोढुं अशक्नुवन् हेमाद्रिगुहागृहान्तरं प्रविश्य बिभ्यत् दिवसानि निनाय ॥ ५३ ॥

(सुबोधिनी) अधीरलोचन (चञ्चलाक्षः) कौशिकः (महेन्द्रः, उलूकश्च) सहस्ररश्मेः (सूर्यस्य) इव (यथा) यस्य (रावणस्य) दर्शनं (अवलोकनं) सोढुं, (मर्षयितुं) अशक्नुवन् (अपारयन्) हेमाद्रिगुहागृहान्तरं (सुमेरुकन्दरसदनान्तरं) प्रविश्य (प्रवेशं कृत्वा) बिभ्यत् (त्रस्यन्) दिवसानि (दिनानि) निनाय (व्यतीयाय) ॥ ५३ ॥

(समासः) न धीराणि अधीराणि, अधीराणि लोचनानि यस्य सः । सहस्रं रश्मयो यस्य सः सहस्ररश्मः तस्य । हेम्नः अद्रिः हेमाद्रिः, तस्य गुहा हेमाद्रिगुहा सैव गृहं हेमाद्रिगुहागृहं, तस्य अन्तरं हेमाद्रिगुहागृहान्तरम्

(कोष) दरीतु कन्दरो वाऽस्त्री देवखातबिले गुहा, इत्यमरः ॥५३॥

(व्याकरणम्) अशक्नुवन्=न शक्नुवन् अशक्नु=शक+शतृ । सोढुं =सह+तुमुन् । बिभ्यत्=भी+शतृ । निनाय=नी+लिट्-तिप् णल् ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) अधीरलोचनेन कौशिकेन...... अशक्नुवता हेमाद्रिगुहागृहान्तरं प्रविश्य बिभ्यता दिवसा निन्यिरे ॥ ५३ ॥

(सरलार्थः) यथा दिवा उलूकः सूर्यस्य भीत्या निजकोटरात् न निःसरति तथैव अयमपि इन्द्रः रावणभीत्या गृहान्न निर्याति ॥ ५३ ॥

(भाषार्थ) दिनमें जैसे उल्लू सूर्यके भयसे बाहर नहीं निकलता उसी तरह इन्द्र भी रावणके भयसे बाहर न निकलकर सुवर्णाचलकी कन्दरामें दिन विताता था ॥ ५३ ॥

बृहच्छिलानिष्ठुरकण्ठघट्टनाद्विकीर्णलोलाग्निकणं सुरद्विषः ।
जगत्प्रभोरप्रसहिष्णु वैष्णवं न चक्रमस्याक्रमताधिकन्धरम् ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(अन्वयः) बृहच्छिलानिष्ठुरकण्ठघट्टनात् विकीर्णलोलाग्निकणं अप्रसहिष्णु वैष्णवं चक्रं जगत्प्रभोः सुरद्विषः अस्य अधिकन्धरं न अक्रमत ॥ ५४ ॥

(सुबोधिनी) बृहच्छिलानिष्ठुरकण्ठघट्टनात् (विशालप्रस्तर-कठोरकण्ठसङ्घर्षणात्) विकीर्णलोलाग्निकणं (विक्षिप्तचपल-स्फुलिङ्गं) अप्रसहिष्णु (अनभिभावकं) प्रसहनमभिभव इति वृत्तिकारः, वैष्णवं (विष्णुसम्बन्धि) चक्रं (सुदर्शनचक्रं) जगत्प्रभोः (लोकस्वामिनः) अस्य सुरद्विषः (देवशत्रोः) अधिकन्धरं (अधिग्रीवं) न अक्रमत (न क्रमतेस्म) ॥ ५४ ॥

(समासः) बृहच्छिलानिष्ठुरकण्ठघट्टनात्=शिला इव निष्ठुरः शिला-निष्ठुरः, शिलानिष्ठुरः कण्ठः शिलानिष्ठुरकण्ठः, बृहन् शिलानिष्ठुरकण्ठः बृहच्छिलानिष्ठुरकण्ठः, तत्र घट्टनं बृहच्छिलानिष्ठुरकण्ठघट्टनं तस्मात्। विकीर्णलोलाग्निकणं=अग्नेः कणाः अग्निकणाः, विकीर्णाः लोला अग्निकणा येन तत्। अप्रसहिष्णु=न प्रसहिष्णु अप्रसहिष्णु। जग-त्प्रभोः=जगतां प्रभुः जगत्प्रभुः तस्य। वैष्णवं=विष्णोरिदं वैष्णवं। अधिकन्धरं=कन्धरायां अधि इति अधिकन्धरम् ॥ ५४ ॥

(व्याकरणम्) अप्रसहिष्णु=प्र+सह+इष्णुच्। अक्रमत+क्रम+लङ्+त ॥ ५४ ॥

(कोषः) "कण्ठोगलोऽथ ग्रीवायां शिरोधिः कन्धरेत्यपि" इत्यमरः।

(वाच्यान्तरम्)..........विकीर्णलोलाग्निकणेन अप्रसहिष्णुना वैष्णवेन चक्रेण......न अक्रम्यत ॥ ५४ ॥

(सरलार्थ) भगवान् विष्णुरेनं हिंसितुं स्वीयं सुदर्शनं चक्रं प्रचि-क्षेप। पाषाणवत्कठिनेऽस्य कण्ठे तस्य संघट्टनात् केवलमग्निकणा एवे-तस्ततो विकीर्णाः, अस्य किञ्चिदप्यपकर्तुं नालमभवत् ॥५४॥

(भाषार्थ) विष्णु भगवानने इसको मारनेके लिये अपना सुदर्शनचक्र छोड़ा पत्थरकी तरह अत्यन्त कठिन इसके गलेसे

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उसके टकराने पर केवल अग्नि के कण चारो ओर छिटक गये, उससे रावणका कोइ अपकार नहीं हुआ ॥ ५४ ॥

विभिन्नशङ्खः कलुषीभवन्मुहुर्मदेन दन्तीव मनुष्यधर्मणः।
निरस्तगाम्भीर्यमपास्तपुष्पकं प्रकम्पयामास न मानसं न सः॥

(अन्वयः) सः मदेन दन्ती इव विभिन्नशङ्खः कलुषीभवत् निरस्तगाम्भीर्यं अपास्तपुष्पकं मनुष्यधर्मणः मानसं न प्रकम्पयामास इति न (किन्तु प्रकम्पयामास एव) ॥ ५५ ॥

(सुबोधिनी) सः (रावणः) मदेन (अहङ्कारेण) दन्ती—इव (हस्तीव) विभिन्नशङ्खः (विघट्टितकम्बुः) "अतएव" कलुषीभवत् (मलिनीभवत्) निरस्तगाम्भीर्यं (नष्टगाम्भीर्यं) अपास्तपुष्पकं (निरस्तपुष्पकं) मनुष्यधर्मणः (कुबेरस्य) मानसं (मनः) न प्रकम्पयामास न (न प्रकम्पयामास इति न किन्तु प्रकम्पयामास एव ॥ ५५ ॥

(समासः) विभिन्नशङ्खः = विभिन्नः शङ्खः = निधिभेदः कम्बुश्च येन सः । निरस्तगाम्भीर्यं = निरस्तं गाम्भीर्यं अविकारित्वं अगाधत्वञ्च यस्य तत् । अपास्तपुष्पकं = अपास्तानि पुष्पाणि, पुष्पकं = विमानञ्च यस्मात् तत् अपास्तपुष्पकम् । मनुष्यधर्म्मणः = मनुष्यस्य इव धर्म्मः यस्य सः मनुष्यधर्म्मा तस्य ॥ ५५ ॥

(कोषः) "कुबेरस्त्र्यम्बकसखो यक्षराट् गुह्यकेश्वरः । मनुष्यधर्म्मा धनदो राजराजो धनाधिपः" इत्यमरः ॥ ५५ ॥

(व्याकरणम्) कलुषीभवत् = अकलुषं कलुषं सम्पद्यमानं भवत् कलुषीभवत् = कलुष = च्वि+भू = शतृ । प्रकम्पयामास = प्र+कम्प+णिच्+लिट्+णल्+ ॥ ५५ ॥

(वाच्यान्तरम्) तेन.....दन्तिना...शंखेन....प्रकम्पयामासे ।

(सरलार्थः) मदोन्मत्तः हस्ती यथा मानसरोवरम्प्रविश्य तज्जलमाविलं करोति तत्रस्थानि रत्नानि च नाशयति, तथैव असौ रावणः अपि

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कुबेरनगरीम्प्रविश्य शङ्खनिधिं भेदयित्वा रत्नैश्च कुबेरं वियोजयित्वा तस्य विमानरत्नं जग्राह ॥ ५५ ॥

(भाषार्थ) जैसे मदमस्त हाथी अपने मदकी गर्मीको शान्त करनेके लिये सरोवरमें उतरता है और उससे वहांके पुष्प, कमल, और शंख आदि कुचले जाते हैं और पानी गन्दा हो जाता है उसी तरह रावणने भी कुबेरके शंखनिधिको नष्टकर डाला; पुष्पक विमान छीन लिया और कुबेरके मनकी तथा मानसरोवर की गंभीरताको नष्टकर उसे बारंबार कंपाया ॥ ५५ ॥

रणेषु तस्य प्रहिताः प्रचेतसा सरोषहुङ्कारपराङ्मुखीकृताः ।
प्रहर्तुरेवोरगराजरज्जवो जवेन कण्ठं सभयाः प्रपेदिरे ॥५६॥

(अन्वयः) रणेषु प्रचेतसा प्रहिताः उरगराजरज्जवः तस्य सरोषहुङ्कारपराङ्मुखीकृताः (अत एव) सभयाः (सत्यः) जवेन प्रहर्तुः एव कण्ठं प्रपेदिरे ॥ ५६ ॥

(सुबोधिनी) रणेषु (सङ्ग्रामेषु) प्रचेतसा (वरुणेन) प्रहिताः (प्रयुक्ताः) उरगराजरज्जवः (नागपाशाः) तस्य (रावणस्य) सरोषहुङ्कारपराङ्मुखीकृताः (सकोपहुङ्कारेण व्यावर्तिताः) अत एव, सभयाः (भीताः, सत्यः) जवेन (वेगेन) प्रहर्तुः (प्रयोक्तुः) एव, कण्ठं (गलप्रदेशं) प्रपेदिरे (प्राप्ताः) ॥ ५६ ॥

(समासः) उरगराजरज्जवः=उरगाणां राजानः उरगराजाः, उरगराजाः रज्जवः इव इति उरगराजरज्जवः । सरोषहुङ्कारपराङ्मुखीकृताः=हुङ्करणं हुङ्कारः, परांचि मुखानि यासान्ताः पराङ्मुखाः, अपराङ्मुखाः पराङ्मुखाः सम्पद्यमानाः कृता इति पराङ्मुखीकृताः, रोषेण सहितः सरोषः, सरोषः हुङ्कारः सरोषहुंकारः, तेन पराङ्मुखीकृता इति सरोषहुङ्कारपराङ्मुखीकृताः । सभयाः=भयेन सहिताः सभयाः॥५६॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(कोषः) दन्ती दन्तावलो हस्ती, मनुष्यधर्मा धनदो राजराजो धनाधिपः, "प्रचेता वरुणः पाशी" इत्याद्यमराः ॥ ५६ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्)"...प्रहिताभिः...रज्जुभिः......कृताभिः सभयाभिः (सतीभिः) कण्ठः प्रपेदे ॥ ५६ ॥

(व्याकरणम्) प्रहिताः=प्र+हि+क्त । प्रहर्तुः=प्र+हृ+तृच् । प्रपेदिरे=प्र+लिट्+इरे ॥ ५६ ॥

(सरलार्थः) सङ्ग्रामे वरुणेन रावणं प्रति प्रयुक्तः नागपाशः तस्य हुङ्कारेण सभयं पलाय्य पुनः वरुणस्यैव कण्ठं आलिलिङ्ग ॥ ५६ ॥

(भाषार्थ) युद्धके अवसरमें वरुणके नागपाश फेंकने पर रावणके हुङ्कारसे भयभीत हो वह वरुणके ही गले में आकर लिपट गया ॥ ५६ ॥

परेतभर्तुर्महिषोऽमुना धनुर्विधातुमुत्खातविषाणमण्डलः ।
हृतेऽपि भारे महतस्त्रपाभरादुवाह दुःखेन भृशानतं शिरः ।५७

(अन्वयः) अमुना धनुः विधातुं उत्खातविषाणमण्डलः परेतभर्तुः महिषः, भारे हृते अपि महतः त्रपाभरात् भृशानतं शिरः दुःखेन उवाह ॥ ५७ ॥

(सुबोधिनी) अमुना (रावणेन) धनुः (शार्ङ्गं) विधातुं (निर्मातुं) उत्खातविषाणमण्डलः (उत्पाटितशृङ्गवलयः) परेतभर्तुः (यमस्य) महिषः, भारे (विषाणरूपे) हृते (अपहृते) अपि, महतः (बृहतः) त्रपाभरात् (लज्जाभरात्) भृशानतं (अत्यर्थमानतं) शिरः (मस्तकं) दुःखेन (क्लेशेन) उवाह (वहतिस्म) ॥ ५० ॥

(समासः) उत्खातविषाणमण्डलः=विषाणयोः मण्डलं विषाणमण्डलं, उत्खातं विषाणमण्डलं यस्य सः । परेतभर्तुः=परेतानां भर्ता परेतभर्ता तस्य ॥ ५७ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्)"......महिषेण......ऊहे ॥ ५७ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(सरलार्थः) रावणः धनुः निर्मातुं यमस्य महिषस्य शृंगमुत्पाटितवान् । तेन लोके मुखं दर्शयितुं लज्जमानो दुःखेन चिराय नतशिरा वर्तते ।

(भाषार्थ) रावणने अपना धनुष बनानेके लिये यमराजके वाहन भैंसेका सींग उखाड़ डाला । इस कारण लज्जाके भारसे अत्यन्त झुके हुए अपने सिरको वह किसी तरह धारण कर सका ॥

स्पृशन् सशङ्कः समये शुचावपि स्थितः कराग्रैरसमग्रपातिभिः
अघर्मघर्मोदकबिन्दुमौक्तिकैरलञ्चकारास्य वधूरहस्करः ॥५८॥

(अन्वयः) अहस्करः शुचौ समये स्थितः अपि असमग्रपातिभिः कराग्रैः स्पृशन् अघर्मघर्मोदकबिन्दुमौक्तिकैः अस्य वधूः अलञ्चकार ॥ ५८ ॥

(सुबोधिनी) अहस्करः (सूर्यः) शुचौ समये (ग्रीष्मकाले, अनुपहते आचारे च) स्थितः अपि (वर्तमानः-अपि) असमग्रपातिभिः (सङ्कुचितवृत्तिभिः) कराग्रैः (कराणां किरणानां, हस्तानां च अग्रैः अग्रभागैः) सशङ्कः (सभयः) स्पृशन् (परामृशन्) अघर्मघर्मोदकबिन्दुमौक्तिकैः (अनुष्णस्वेदोदबिन्दुरूपमुक्ताफलैः) अस्य (रावणस्य) वधूः (प्रियाः) अलञ्चकार (अलङ्कृतवान्) ॥ ५८ ॥

(समासः) अहस्करः = अहः करोति इति अहस्करः । असमग्रपातिभिः = न समग्रं असमग्रं, असमग्रं यथा तथा पतन्ति इति असमग्रपातीनि तैः । अघर्मघर्मोदकबिन्दुमौक्तिकैः = न घर्मः अघर्मः, उदकस्य बिन्दवः उदकबिन्दवः, घर्मस्य उदकबिन्दवः घर्मोदकबिन्दवः, अघर्माः घर्मोदकबिन्दवः अघर्मघर्मोदकबिन्दवः, ते एव मौक्तिकानि तैः ॥५८॥

(कोषः) शुचिः शुद्धेऽनुपहते शृङ्गाराषाढयोरपि । ग्रीष्मे हुतवहेऽपि स्यात् । समयाः शपथाचारकालसिद्धान्तसंविदः । इति विश्वामरौ ॥५८॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(व्याकरणम्) अहस्करः = अहन्+कृ+ट । अलञ्चकार = अलं कृ+लिट् ति+अ ॥ ५८ ॥

(वाच्यान्तरम्) अहस्करेण शुचौ समये स्थितेन अपि अस······स्पृशता······वध्वः, अलञ्चक्रिरे ॥ ५८ ॥

(सरलार्थः) सूर्यः ग्रीष्मसमये अपि रावणभीत्या असम्पूर्णकिरणैः तस्य प्रियाः संस्पृशन् मुक्तासदृशैः स्वेदबिन्दुभिस्ता अलञ्चकार ॥ ५८ ॥

(भाषार्थ) सूर्यनारायण ग्रीष्मऋतुमें भी अपने किरणोंको इतना समेटे रहा करते थे जिससे गर्मी उतनीही पड़े कि रानियोंके शरीरपर पसीनेके बिंदू मोतियोंकी तरह उत्पन्न होकर उन्हें अलंकृत मात्र कर सकें ॥ ५८ ॥

कलासमग्रेण गृहानमुञ्चता मनस्विनीरुत्कयितुं पटीयसा ।
विलासिनस्तस्य रतिं वितन्वता न नर्मसाचिव्यमकारि नेन्दुना

(अन्वयः) कलासमग्रेण गृहान् अमुञ्चता मनस्विनीः उत्कयितुं पटीयसा रतिं वितन्वता इन्दुना विलासिनः तस्य नर्मसाचिव्यं न अकारि (इति) न ॥ ५६ ॥

(सुबोधिनी) कलासमग्रेण (कलाभिः सम्पूर्णेन) गृहान् (रावणगृहान्) अमुञ्चता (अपरित्यजता) मनस्विनीः (मानिनीः) उत्कयितुं (उत्कण्ठयितुं) पटीयसा (चतुरेण) रतिं (अनुरागं) वितन्वता (विस्तारयता) इन्दुना (चन्द्रेण) विलासिनः (विलसनशीलस्य) तस्य (रावणस्य) नर्मसाचिव्यं (क्रीड़ासचीवतां) न अकारि (न कृतं इति न किन्तु कृतमेव) ॥ ५९ ॥

(समासः) कलासमग्रेण = कलाभिः समग्रः कलासमग्रः तेन । पटीयसा=अतिशयेन पटुः इति पटीयान् तेन । नर्मसाचिव्यं=सचिवस्य भावः साचिव्यं, नर्मणि साचिव्यं नर्मसाचिव्यम् ॥ ५६ ॥

(कोषः) क्रीडालीला च नर्म च, इत्यमरः ॥५६ ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(व्याकरणम्) उत्कयितुं="उत्क उन्मनाः" इति निपातनात् उत्कशब्दात् णिच् + तुमुन् । पटीयसा=पटु+इयसुन् । विलासिनः= वि+लस्+घिणुन् वितन्वता । वि+तन+शतृ । अकारि=कृ+लुङ्+त ।

(वाच्यान्तरम्)······समग्रेण·······अमुञ्चन्·····पटीयान् इन्दुः·····अकार्षीत् ॥ ५९ ॥

(सरलार्थः) सकलाभिः कलाभिः तस्य गृहे वर्तमानश्चन्द्रः कामिनीनां काममुद्दीपयन् विलासिनः रावणस्य च रतिं वर्धयन् सर्वदा तस्य रतिकार्येषु अमात्यपदमलमकरोत् ॥५९॥

(भाषार्थ) कृष्णपक्षमें भी अपनी सम्पूर्ण कलाओं के साथ रावणके यहां रहनेवाले इसीकारण मानिनी नायिकाओंको उत्कण्ठित करनेवाले चन्द्रमाने रावणके कामविलासका उद्दीपन कर कामकेलिके मन्त्रित्वका काम किया ॥ ५६ ॥

विदग्धलीलोचितदन्तपत्रिकाविधित्सया नूनमनेन मानिना ।
न जातु वैनायकमेकमुद्धृतं विषाणमद्यापि पुनः प्ररोहति ॥

(अन्वयः) मानिना अनेन विदग्धलीलोचितदन्तपत्रिकाविधित्सया जातु उद्धृतं एकं वैनायकं विषाणं अद्यापि न प्ररोहति नूनम् ॥ ६० ॥

(सुबोधिनी) मानिना (मानवता) अनेन (रावणेन) विदग्धलीलोचितदन्तपत्रिकाविधित्सया (विलासिनीविलासयोग्यदन्तमयपत्रनिर्मित्सया) जातु (कदाचित्) उद्धृतं (उत्पाटितं) एकं, वैनायकं (गणेशसम्बन्धि) विषाणं (दन्तः) अद्यापि (अधुना अपि) पुनः (भूयः) न प्ररोहति (न आविर्भवति) ॥

(समासः) विदग्धलीलोचितदन्तपत्रिकाविधित्सया=विधातुमिच्छा विधित्सा, विदग्धाः लीलाः विदग्धलीलाः, अथवा विदग्धानां लीला

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विदग्धलीलाः, तासां उचिताः विदग्धलीलोचिताः विदग्धलीलोचिताः दन्तपत्रिकाः विदग्धलीलोचितदन्तपत्रिकाः, तासां विधित्सा तया । मानिना =मानः अस्ति अस्य असौ मानी तेन । वैनायकं=विनयति अपाकरोति विघ्नान् इति विनायकः, विनायकस्य इदं वैनायकम् ॥ ६० ॥

(कोषः) विषाणं पशुशृङ्गे स्यात्क्रीडाद्विरददन्तयोः । इति विश्वः ॥

(व्याकरणम्) उद्धृतं=उत्+हृ+क्त । प्ररोहति=प्र+रुह्+लट्+तिप् ॥ ६० ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्)·······उद्धृतेन वैनायकेन एकेन विषाणेन न आरुह्यते ॥ ६० ॥

(सरलार्थः) एकदा रावणः प्रियपत्नीनां कर्णभूषणनिर्मित्सया गणेशस्य एकं दन्तं उत्पाटितवान्, सच नाद्यावधि पुनः प्रादुरभूत्, अतस्तत आरभ्य एव एकदन्तो विनायक इति लोकप्रसिद्धिः जाता ॥ ६० ॥

(भाषार्थ) मानी इस रावणने एक समय अपनी प्रियाके धारण करने योग्य दांतका कर्णभूषण बनानेकी इच्छासे विनायक का एक दांत उखाड़ डाला । जो आज तक फिरसे उत्पन्न न हुआ और वे सदाके लिये एकदन्त विनायक इस नामसे प्रसिद्ध हो गये ।

निशान्तनारीपरिधानधूननस्फुटागसाप्यूरुषु लोलचक्षुषः ।
प्रियेण तस्यानपराधबाधिताः प्रकम्पनेनानुचकम्पिरे सुराः ॥

(अन्वयः) निशान्तनारीपरिधानधूननस्फुटागसा अपि ऊरुषु लोलचक्षुषः अस्य प्रियेण प्रकम्पनेन अनपराधबाधिताः सुराः अनुचकम्पिरे ॥ ६१ ॥

(सुबोधिनी) निशान्तनारीपरिधानधूननस्फुटागसा (अन्तःपुरस्थप्रियापरिधानप्रकम्पनेन स्फुटापराधवता) अपि, ऊरुषु (तासां सक्थिषु) लोलचक्षुषः (सतृष्णनयनस्य) अस्य (रावणस्य) प्रियेण (प्रियकारिणा) प्रकम्पनेन (वायुना) अनपराधबाधिताः

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(अपराधाभावे अपि राजपुरुषैः पीडिताः) सुराः (देवाः) अनुचकम्पिरे (अनुकम्पिताः) ॥ ६१ ॥

(समासः) निशान्ते नार्यः निशान्तनार्यः, तासां परिधानानि तेषां धूननं तेन स्फुटं आगः यस्य सः तस्य । अनपराधबाधिताः = अनपराधे बाधिताः अनपराधबाधिताः ॥ ६१ ॥

(कोषः) लोलश्चलसतृष्णयोः, सक्थिक्लीबे पुमानूरुः,इत्यमरो ॥६१॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) निशान्तनारीपरिधानधूननस्फुटागाः अपि अस्य प्रियः प्रकम्पनः अनपराधबाधितान् सुरान् अनुचकम्पे ॥ ६१ ॥

(सरलार्थः) सर्वे सुराः तत्रत्यैरधिकारिभिरतिशयं पीडिता अपि तेषाममर्यादमाचरणं रावणाय निवेदयितुं न शेकुः, परं वायुः स्वयमुपाये-नान्तः प्रविश्य अन्तःपुरवासिनीनां सुन्दरीणां वसनान्दोलनेन विषयिणो रावणस्य समये समये प्रियं सम्पादयन् सुराणामनपराधं, राजपुरुषाणाञ्च-प्रमादं निवेदयन् तान् कष्टान्मोचयामास ॥ ६१ ॥

(भाषार्थ) रावणके अन्तःपुरमें रानियोंकी साड़ियाँ वायुसे जब उड़ाकरें तब रावण उनकी नग्न जांघोंको देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ करता था और इसी कारण, यद्यपि वायु रानियोंके साथ इस प्रकारके व्यवहारसे स्पष्टापराधी था तथापि रावणका प्रेम-पात्र बना था । रावणके यहांके अधिकारियों द्वारा जब २ देव लोग सताये जाते थे तव तब रावणका कृपापात्र वायु रावणके पास उनके अनपराधको निवेदनकर राजपुरुषोंके त्राससे उन्हें बचाया करता था ॥ ६१ ॥

तिरस्कृतस्तस्य जनाभिभाविना मुहुर्महिम्ना महसां महीयसाम् ।
बभार बाष्पैर्द्विगुणीकृतं तनुस्तनूनपाद्धूमवितानमाधिजैः ॥

(अन्वयः) तस्य जनाभिभाविना महीयसां महसां महिम्ना मुहुः तिरस्कृतः तनुः तनूनपात् आधिजैः बाष्पैः द्विगुणीकृतं धूमवितानं बभार ॥ ६२ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(सुबोधिनी) तस्य (रावणस्य) जनाभिभाविना (लोकतिरस्कारिणा) महीयसां (अतिमहतां) महसां (तेजसां) महिम्ना (महत्त्वेन) मुहुः (वारं वारं) तिरस्कृतः (भर्त्सितः) अत एव, तनुः (कृशः) तनूनपात् (अग्निः) आधिजैः (मनोखेदजन्यैः) बाष्पैः (नेत्रजलैः) द्विगुणीकृतं (द्विरावृत्तं) धूमवितनं (धूममण्डलं) बभार (धारयामास) ॥ ६२ ॥

(समासः) जनाभिभाविना = जनं अभिभवतीति जनाभिभावी तेन । महीयसां = अतिशयेन महत् इति महीयः तेषां । महिम्ना = महतो भावः इति महिमा तेन । तनूनपात् = तनुं न पातयतीति तनूनपात् । आधिजैः = आधेः जाताः आधिजास्तैः । द्विगुणीकृतं = द्वौ गुणौ अस्य द्विगुणं, अद्विगुणं द्विगुणं सम्पद्यमानं कृतं इति द्विगुणीकृतम् । धूमवितानं = धूमस्य वितानं धूमवितानम् ॥ ६२ ॥

(कोषः) गुणस्त्वावृत्तिशब्दादिज्येन्द्रियामुख्यतन्तुषु, इति वैजयन्ती बाष्पो नेत्रजलोष्मणोः, इत्यमरः ॥६२॥

(व्याकरणम्) तिरस्कृतः = तिरस् + कृ + क्त । महिम्नः = महतो भाव इति महत् + इमनिच् । बभार = भृ+लिट् + ति + णल् ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) तिरस्कृतेन···तनुना तनूनपाता बभ्रे ॥६२॥

(सरलार्थः) तस्य सकललोकतिरस्कारिणा तेजसा पुनः पुनः पराभूतः अग्निरपि तत्सन्निधौ निस्तेजस्को धूमायमान एवास्ते ॥ ६२ ॥

(भाषार्थ) रावणके लोकोत्तर तेजसे पराभूत अग्निनें मानसिक दुःखसे उत्पन्न निश्वासकी उष्मा छोड़ते हुए द्विगुणित धूवेंको धारण किया । रावणके तेजके सामने अग्निका तेज फीका पड़ गया था, केवल धूंआ ही रह गया था ॥ ६२॥

परस्य मर्माविधमुज्झतां निजं द्विजिह्वितादोषमजिह्मगामिभिः ।
तमिद्धमाराधयितुं सकर्णकैः कुलैर्न भेजे फणिनां भुजङ्गता ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(अन्वयः) इद्धं तं अराधयितुं परस्य मर्माविधं निजं द्विजिह्वतादोषं उज्झतां फणिनां अजिह्मगामिभिः सकर्णकैः कुलैः भुजङ्गता न भेजे ॥ ६३ ॥

(सुबोधिनी) इद्धं (दीप्तं) तं (रावणं) आराधयितुं (सेवितुं) परस्य (स्वेतरस्य) मर्माविधं (मर्मवेधकं) निजं (स्वीयं) द्विजिह्वतादोषं (विषत्वादि सर्पस्वरूपं दोषं) उज्झतां (मुञ्चतां) फणिनां (सर्पाणां) अजिह्मगामिभिः (ऋजुगतिभिः) सकर्णकैः (चक्षुःश्रवस्त्वं विहाय आविष्कृतकर्णैः) कुलैः (समूहैः) भुजङ्गता (सर्पता) न भेजे (न सिषेवे, त्यक्तेत्यर्थः) ॥

पिशुन (खल) पक्षे =

इद्धं (दीप्तं) तं (रावणं) आराधयितुं (सेवितुं) परस्य (स्वेतरस्य) मर्माविधं (कुलाचारव्रतवेधकं) निजं (स्वकीयं) द्विजिह्वतादोषं (पिशुनतारूपं दोषं) उज्झतां (त्यजतां) तेषां, अजिह्मगामिभिः (करचरणादिमद्विग्रहधारित्वात् सरलगतिभिः) सकर्णकैः (सनियामकैः) कुलैः (समूहैः) भुजङ्गता (विटत्वं) न भेजे (त्यक्ता) ॥ ६३ ॥

(समासः) मर्माविधं = मर्माणि विध्यति इति मर्मावित् तं । द्विजिह्वतादोषं = द्वे जिह्वे एषां द्विजिह्वाः, तेषां भावः द्विजिह्वता तस्यां यो दोषः (सर्पपक्षे-विषत्वादिः अन्यत्र पिशुनता) तं । फणिनां = फणाः सन्ति येषां ते फणिनस्तेषां । अजिह्मगामिभिः = न जिह्मं अजिह्मं, अजिह्मं यथा तथा गच्छन्तीति अजिह्मगामिनः तैः । भुजङ्गता = भुजाभ्यां गच्छन्ति इति भुजङ्गास्तेषां भावो भुजङ्गता ॥ ६३ ॥

(कोषः) द्विजिह्वौ सर्पसूचकौ । भुजंगो विटसर्पयोः, इत्यमरहलायुधौ ।

(व्याकरणम्) उज्झतां=उज्झ+शतृ । इद्धं = इन्ध+क्त । आराधयितुं=आ+राध् + णिच्+तुमुन् । भेजे = भज् + लिट् +ए ॥ ६३ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(वाच्यपरिवर्तनम्)........परस्य......अजिह्मगामीनि सकर्णकानि फणिनां कुलानि भुजंगतां न भेजिरे ॥ ६३ ॥

(सरलार्थः) रावणे शासितरि सति खलैः अपि खलत्वं, सर्पैरपि सर्पत्वं सर्वथा परित्यक्तं । वेषभावक्रियाभिः सौम्यत्वं, दयार्द्रत्वञ्चाश्रितम् ॥

(भावार्थ) रावणकी सेवा करनेके लिये सर्पोंने अपने दृष्टिविषत्वादि दोषको छोड़ दिया और चुगलखोरोंनें बाणकी तरह लगनेवाले मर्मवेधी अपने शब्दोंको छोड दिया ॥६३॥

तदीयमातंगघटाविघट्टितैः कटस्थलप्रोषितदानवारिभिः ।
गृहीतदिक्कैरपुनर्निवर्तिभिश्चिराय याथार्थ्यमलम्भि दिग्गजैः ।

(अन्वयः) तदीयमातङ्गघटाविघट्टितैः कटस्थलप्रोषितदानवारिभिः गृहीतदिक्कैः अपुनर्निवर्तिभिः दिग्गजैः चिराय याथार्थ्यं अलम्भि ॥ ६४ ॥

(सुबोधिनी) तदीयमातङ्गघटाविघट्टितैः (रावणमत्तहस्तीनां समूहैरभिहतैः) अत एव, कटस्थलप्रोषितदानवारिभिः (गण्डस्थलेभ्यः अपगतदानजलैः) गृहीतदिक्कैः (प्रपलाय्य दिशाश्रितैः) अपुनर्निवर्तिभिः (पुनरागमनरहितैः, भयात् तत्रैव स्थितैरित्यर्थः) दिग्गजैः (दिङ्मातङ्गैः) चिराय (चिरकालार्थं) याथार्थ्यं (दिक्षुस्थिता गजा दिग्गजा इति अनुगतार्थनामकत्वं) अलम्भि (लब्धम्) ॥ ६४ ॥

(समासः) तदीयमातंगघटाविघट्टितैः=तस्य इमे तदीयाः, तदीयाश्च ते मातङ्गा तदीयमातङ्गाः, तेषां घटा तदीयमातङ्गघटा, तया विघट्टितास्तैः । कटस्थलप्रोषितदानवारिभिः = प्रशस्तः कटः कटस्थलं, दानानां वारीणि दानवारीणि, कटस्थलात् प्रोषितानि कटस्थलप्रोषितानि, कटस्थलप्रोषितानि दानवारीणि एषां ते कटस्थलप्रोषितदानवारयस्तैः । गृहीतदिक्कैः =गृहीताः दिशः एभिस्तैः । अपुनर्निवर्तिभिः = पुनः निवर्तन्ते इति पुनर्निवर्तिनः, न पुनर्निवर्तिन इति अपुनर्निवर्तिनः तैः । दिग्गजैः= दिक्षु

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

गजाः (वा) दिगीशा गजा दिग्गजास्तैः। याथार्थ्यं = अर्थम् अनतिक्रम्य इति यथार्थं, तस्य भावः याथार्थ्यम् ॥ ६४ ॥

(वाच्यान्तरम्)·········विघट्टिताः, कटस्थलप्रोषितदानवारयः, गृहीतदिक्काः अपुनर्निवर्तिनः दिग्गजाः अलप्सत ॥ ६४ ॥

(सरलार्थः) रावणस्य गजैः ताडिताः गजाः दिगन्तानधिशिश्रियुः, तथा तदीयगजभिया अद्यापि दिगन्तान् न मुञ्चन्तः निजं दिग्गजत्वं अन्वर्थयन्ति ॥ ६४ ॥

(भाषार्थ) रावणके हाथियोंके समूहसे परास्त दिशाओंके हाथी अपनी २ दिशाओंमें ही रह गये और आजतक लौटकर आये नहीं इसलिये उनका नाम सदाके लिये "दिग्गज" ऐसा प्रसिद्ध हुआ ॥ ३४ ॥

अभीक्ष्णमुष्णैरपि तस्य सोष्मणः सुरेन्द्रवन्दीश्वसितानिलैर्यथा।
सचन्दनाम्भःकणकोमलैस्तथा वपुर्जलार्द्रापवनैर्न निर्ववौ ॥

(अन्वयः) सोष्मणः तस्य वपुः अभीक्ष्णं उष्णैः अपि सुरेन्द्रवन्दीश्वसितानिलैः यथा निर्ववौ तथा सचन्दनाम्भःकण-कोमलैः जलार्द्रापवनैः न निर्ववौ ॥

(सुबोधिनी) सोमष्णः (स्मरज्वरसहितस्य) तस्य (रावणस्य) वपुः (शरीरं) अभीक्ष्णं (अत्यन्तं) सुरेन्द्रवन्दी-श्वसितानिलैः (देवेन्द्रस्य बन्दीभूतसुन्दरीणां विश्वासमारुतैः) यथा, निर्ववौ (शान्तिमाप) तथा, सचन्दनाम्भःकणकोमलैः (चन्दनसहितजलबिन्दुवत्स्निग्धैः) जलार्द्रापवनैः (जलोक्षित-तालवृन्तानां वायुभिः) न निर्ववौ (न शान्तिमाप) ॥

(समासः) सोष्मणः = उष्मणा सहितः सोष्मा तस्य। सुरेन्द्रवन्दी-श्वसितानिलैः = सुराणां इन्द्रः सुरेन्द्रः, तस्य वन्द्यः सुरेन्द्रवन्द्यः, तासां श्वसितानि सुरेन्द्रवन्दीश्वसितानि तेषां अनिलाः सुरेन्द्रवन्दीश्वसितानिलाःस्तैः।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सचन्दनाम्भःकणकोमलैः=चन्दनमिश्रं अम्भः चन्दनाम्भः, तस्य कणाः चन्दनाम्भःकणाः, तैः सह वर्तमानाः सचन्दनाम्भःकणाः, ते च ते कोमलाः सचन्दनाम्भःकणकोमलास्तैः । जलार्द्रापवनैः=जलेन आर्द्रा जलार्द्रा, तस्याः पवनास्तैः जलार्द्रापवनैः ॥ ६५ ॥

(कोषः) गात्रं वपुः संहननं शरीरं वर्ष्म विग्रहः, इत्यमरः । धुवित्रं तालवृन्तं स्यादुत्क्षेपव्यजनं च तत्, जलेनार्द्रं जलार्द्रा स्यात्, इति वैजयन्ती

(व्याकरणम्) निर्ववौ=निर्+वा + लिट्+णल् ॥ ६५ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्)········वपुषा········निर्ववे ॥ ६५ ॥

(सरलार्थः) चन्दनादिसुगन्धियुतजलशीतलैः पवनैः कामज्वर-पीड़ितस्य तस्य मानसं तथा शान्तिं न लेभे यथा व्यजनचालने नियुक्तानां सुरेन्द्रबन्दीनां उष्णेनापि दुःखनिश्वासेन शान्तिमलभत् ॥६५॥

(भाषार्थ) काम सन्तापसे सन्तप्त कामी रावणके शरीरको कैदकीहुई सुरसुन्दरियोंके अत्यन्त उष्ण निःश्वास वायुसे जितना सुख और शान्ति मिलती थी उतना सुख और शान्ति चन्दन मिश्रित जलसे आर्द्र पंखेकी ठंढी ठंढी हवासे भी नहीं मिलती थी ॥ ६५॥

तपेन वर्षाः शरदा हिमागमो वसन्तलक्ष्म्या शिशिरः समेत्य च
प्रसूनक्लृप्तिं दधतः सदर्तवः पुरेऽस्य वास्तव्यकुटुम्बितां ययुः॥

(अन्वयः) सदा प्रसूनक्लृप्तिं दधतः ऋतवः, वर्षाः तपेन, हिमागमः शरदा, शिशिरः वसन्तलक्ष्म्या, च समेत्य अस्य पुरे वास्तव्यकुटुम्बितां ययुः ॥

(सुबोधिनी) सदा (सर्वदा) प्रसूनक्लृप्तिं (कुसुम-सम्पत्तिं) दधतः, (धारयन्तः) ऋतवः (वसन्तादिषड्ऋतवः) वर्षाः (प्रावृट्) तपेन (ग्रीष्मेन) हिमागमः (हेमन्तः) शरदाः (शरदृतुना) शिशिरः (शिशिरतुः) वसन्तलक्ष्म्या (वसन्तश्रिया

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

च), समेत्य (मिलित्वा) अस्य (रावणस्य) पुरे (नगरे) वास्तव्यकुटुंबितां (प्रतिवासित्वं) ययुः (जग्मुः) ॥

(समासः) हिमागमः = हिमं आगमयति इति हिमागमः । वसन्तलक्ष्म्या = वसन्तस्य लक्ष्मीः वसन्तलक्ष्मीः तया । प्रसूनक्लृप्तिं=प्रसूनानां क्लृप्तिः प्रसूनक्लृप्तिः, तां । वास्तव्यकुटुम्बितां = वसन्ति इति वास्तव्याः, कुटुम्बानि सन्ति एषां इति कुटुम्बिनः वास्तव्याश्च ते कुटुम्बिनः वास्तव्यकुटुम्बिनः, तेषां भावः वास्तव्यकुटुम्बिता तां ॥६६ ॥

(कोषः) प्रसूनं कुसुमं सुमम् ; उष्ण उष्मागमस्तपः, स्त्रियां प्रावृट् स्त्रियां भूम्नि वर्षा अथ शरत्स्त्रियामित्याद्यमराः ॥ ६६ ॥

(व्याकरणम्) दधतः=धा+शतृ । समेत्य=सम्+आ+इ + ल्यप् । ययुः=या + लिट्+उस् ॥६६॥

(वाच्यान्तरम्) दधद्भिः ऋतुभिः वर्षाभिः·······हिमागमेन······· शिशिरेण·····समेत्य कुटुम्बिता यये ॥ ६६ ॥

(सरलार्थः) सर्वे ऋतवः रावणपुरे युगपदेव स्थित्वा अस्य सर्वर्तूद्भवानि पुष्पाणि एककालमेव उपायनीचक्रुः ॥

(भाषार्थ) रावणकी राजधानी लंकामें छहो ऋतुओंने—वर्षानें ग्रीष्म के साथ, शरद्नें हेमन्तके साथ और वसन्तलक्ष्मीनें शिशिर के साथ दाम्पत्य सम्बन्ध को जोडकर नागरिक की हैसियतसे—अपना डेरा डाल रक्खा था और भिन्न २ ऋतुओंमें उत्पन्न होनेवाले पुष्पों को रावण के नजर किया करते थे ॥

अमानवं जातमजं कुले मनोः प्रभाविनं भाविनमन्तमात्मनः ।
मुमोच जानन्नपि जानकीं न यः सदाभिमानैकधना हि मानिनः

(अन्वयः) अमानवं अजं मनोः कुले जातं प्रभाविनं भवन्तं आत्मनः अन्तं भाविनं जानन् अपि यः जानकीं न मुमोच हि, मानिनः सदा अभिमानैकधनाः भवन्ति ॥ ६७ ॥

(सुबोधिनी) अमानवं (अमानुषं) अजं (न जातं) मनोः कुले (मनुवंशे) जातं (उत्पन्नं) प्रभाविनं (प्रभावशा-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

लिनं) भवन्तं (त्वां) आत्मनः (स्वस्य) अन्तं (अन्तकरं) भाविनं (भविष्यन्तं) जानन् अपि (विद्वन्नपि यः (रावणः) जानकीं (सीतां) न मुमोच (न तत्याज) हि (यतः) मानिनः (मानवन्तः) सदा (नित्यं) अभिमानैकधनाः (मानधनाः), भवन्तीतिशेषः ॥ ६७ ॥

(समासः) अमानवं=मनोः अयं, मानवः न मानवः अमानवः तम्। अजं=न जातः इति अजः तम्। प्रभाविनं=प्रकृष्टो भावः प्रभावः सः अस्य अस्ति इति प्रभावी तम्। भाविनं=अवश्यं भविष्यति इति भावी तम्। अन्तयति (अन्तं करोति) इति अन्तः, तम्। जानकीं=जनकस्य इयं इति जानकी ताम्। अभिमानः एव एकं धनं एषां ते अभिमानैकधनाः। सदा=सर्वस्मिन् काले इति सदा ॥६७॥

(व्याकरणम्) जानन्=ज्ञा+शतृ। मुमोच=मुच्+लिट्+ति+णल् ॥ ६७ ॥

(वाच्यान्तरम्) जानता···येन जानकी न मुमुचे। मानिभिः अभि···धनैः भूयते ॥ ६७ ॥

(सरलार्थः) अयमेव राक्षसः पूर्वजन्मनि रामावतारे भवन्तं स्वस्य अन्तकरं जानन् अपि दारामपजहार। तस्मिन् समयेऽपि स भवतैव हतः ॥ ६७ ॥

(भाषार्थ) उस रावणने मनुके वंशमें विष्णुके अवतार भगवान् श्रीरामचन्द्रजीको अपना मारनेवाला जानते हुए भी भगवती जानकीको नहीं छोड़ा, ठीक ही है–बात के धनी मानी पुरुष, प्राण भलेही दे दें पर अपनी टेक नहीं छोड़ते ॥ ६७ ॥

इमरत्यदो दाशरथिर्भवन् भवानमुं वनान्ताद्वनितापहारिणम्।
पयोधिमाबद्धचलज्जलाविलं विलंघ्य लंकां निकषा हनिष्यति ॥

(अन्वयः) भवान् दाशरथिः भवन् वनान्तात् वनिता-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पहारिणं अमुं आबद्धचलज्जलाविलं पयोधिं विलङ्घ्य लङ्कां निकषा हनिष्यति, अदः स्मरति ? ॥ ६८ ॥

(सुबोधिनी) भवान् (त्वं) दाशरथिः (दशरथापत्यं रामः) भवन् (सन्) वनान्तात् (दण्डकारण्यात्) वनितापहारिणं (सीतापहारिणं) अमुं (रावणं) आबद्धचलज्जलाविलं (बद्धसेतुत्वाच्चञ्चलजलपङ्किलं) पयोधिं (समुद्रं) विलङ्घ्य (उल्लङ्घ्य) लङ्कां निकषा (लङ्का समीपे) हनिष्यति (अवधीत्) अदः (एतत्-हननं) स्मरति (भवान् अभिजानाति कच्चित् ?) ॥ ६८ ॥

(समासः) वनस्य अन्तः वनान्तस्तस्मात् । वनितां अपहरतीति वनितापहारी तम् । पयोधिं=पयांसि धीयन्ते अस्मिन् इति पयोधिः तं । आबद्धचलज्जलाविलं=चलन्ति जलानि अस्य चलज्जलः आबद्धश्च चलज्जलश्च आबद्धचलज्जलः, आबद्धचलज्जलश्च आविलश्च आबद्धचलज्जलाविलः तम् । दाशरथिः=दशरथस्य अपत्यं पुमान् दाशरथिः ॥६८॥

(कोषः) समया निकषाशब्दौ सामीप्येत्वव्यये मतौ, इति हलायुधः ॥

(व्याकरणम्) हनिष्यति=हन्+लट्+स्य=ति । लङ्का—निकषा इति अव्यययोगे द्वितीया । स्मरति=स्मृ+लट्+ति ॥६८॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) भवता दाशरथिना भवता.........हारी असौ.......हनिष्यते.......स्मर्यते ॥ ६८ ॥

(सरलार्थः) दशरथपुत्रो भूत्वा भुवं अवतीर्णो भवान् वनमध्यात् दारापहारिणमेनं राक्षसमवधीदिति स्मरति किम् ? ॥ ६८ ॥

(भावार्थ) आपने रामावतारमें दशरथके यहां जन्मले कर स्त्री हरण करनेवाले उस रावणको समुद्रपर पुल बांधकर लंकाके पास मारा था, क्या यह आपको स्मरण है ? ॥ ६८ ॥

अथोपपत्तिं छलनापरोऽपरामवाप्य शैलूष इवैष भूमिकाम् ।
तिरोहितात्मा शिशुपालसंज्ञया प्रतीयते सम्प्रति सोऽप्यसः परैः।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(अन्वयः) अथ सम्प्रति छलनापरः एषः शैलूषः भूमिकां इव अपरां उपपत्तिं अवाप्य शिशुपालसंज्ञया तिरोहितात्मा सन् सोऽपि परैः असः प्रतीयते ॥ ६६ ॥

(सुबोधिनी) अथ (राक्षसदेहत्यागानन्तरं) सम्प्रति (अधुना) छलनापरः (प्रतारणापरः) एषः (रावणः) शैलूषः (नटः) भूमिकां (रूपान्तरग्रहणं) इव, अपरां (अन्यां) उपपत्तिं (स्वरूपं) जन्मान्तरमित्यर्थः, अवाप्य (प्राप्य) शिशुपालसंज्ञया (शिशुपाल इति नाम्ना) तिरोहितात्मा (प्रच्छन्नरूपः सन्) सोऽपि (रावण एव सन्नपि) परैः (अन्यैः) असः (तस्मादितरः) प्रतीयते (ज्ञायते) ॥६६॥

(समासः) छलनापरः=छलना परं प्रधानं वस्तु अस्य सः तिरोहितात्मा=तिरोहितः आत्मा यस्य सः । शिशुपालसंज्ञया=शिशुपाल इति संज्ञा शिशुपालसंज्ञा तया । असः=सः न भवतीति असः ॥ ६६ ॥

(कोषः) शैलूषो नटभिल्लयोः । भूमिका रचनायां स्यान्मूर्त्यन्तरपरिग्रहे, इति विश्वः ॥ ६६ ॥

(व्याकरणम्) शैलूषः=शिलूषस्य ऋषेरपत्यं पुमान् शैलूषः शिलूष+अण् । प्रतीयते=प्रति+इ+लट्+ते ॥ ६६ ॥

(वाच्यान्तरम्) छलनापरं एतं शैलूषं तिरोहितात्मानं (सन्तं) तम् अपि परे अतं प्रतीयन्ति ॥ ६६ ॥

(सरलार्थः) यथा कश्चन नटः रूपान्तरं परिकल्प्य तद्देशवेषभाषादिभिः अन्य इव प्रतीयते तद्वत् अयमपि शिशुपालः मानुषदेहपरिग्रहाद् अन्य इव भासते परमस्य दौर्जन्यं तु पूर्वजन्मसदृशमेवेत्यसौ अवश्यमेव वध्यः ॥ ६६ ॥

(भावार्थ) अब इस समय उस रावणने नाटकके पात्र की तरह अपना वेश बदलकर अपना नाम शिशुपाल रक्खा

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

है। और संसारको क्लेश दे रहा है, यह है वही रावणही, पर देखनेमें उससे भिन्न सा मालूम पड़ता है ॥ ६९ ॥

स बाल आसीद्वपुषा चतुर्भुजो मुखेन पूर्णेन्दुनिभस्त्रिलोचनः।
युवा कराक्रान्तमहीभृदुच्चकैरसंशयं सम्प्रति तेजसा रविः ॥७०

(अन्वयः) सः बालः "सन्" वपुषा चतुर्भुजः आसीत् मुखेन पूर्णेन्दुनिभः त्रिलोचनः (आसीत्) युवा सः कराक्रान्तमहीभृत् "सन्" उच्चकैः तेजसा असंशयं रविः (वर्तते)॥

(सुबोधिनी) सः (शिशुपालः) बालः (शिशुः) सन्, वपुषा (शरीरेण) चतुर्भुजः (भुजचतुष्टयवान्) (आसीत्) मुखेन (आननेन) पूर्णेन्दुनिभः (पूर्णचन्द्रसदृशः) त्रिलोचनः (लोचनत्रयवान्) (आसीत्) सम्प्रति (इदानीं) युवा (तरुणः) सन्, कराक्रान्तमहीभृत् (अधिष्ठितराजकः, सूर्यपक्षे किरणैर्व्याप्तशैलः) उच्चकैः तेजसा (महता-महसा) असंशयं (निःसंशयं) रविः (सूर्यः—वर्तते) ॥ ७० ॥

(समासः) चतुर्भुजः=चत्वारः भुजाः अस्य सः। पूर्णेन्दुनिभः= पूर्णश्च असौ इन्दुः पूर्णेन्दुः, पूर्णेन्दुना तुल्यः पूर्णेन्दुनिभः। त्रिलोचनः= त्रीणि लोचनानि अस्य सः त्रिलोचनः। महीं बिभ्रतीति महीभृतः, करेण आक्रान्ताः कराक्रान्ताः, कराक्रान्ता महीभृतो येन सः कराक्रान्तमहीभृत्। असंशयं=अविद्यमानः संशयः अस्मिंस्तत्तथा असंशयम् ॥ ७० ॥

(कोषः) गात्रं वपुः संहननं शरीरं वर्ष्म विग्रहः। वयस्थस्तरुणो युवा। इत्यमरौ ॥ ७० ॥

(व्याकरणम्) आसीत्=अस्+लङ्+ति ॥ ७० ॥

(सरलार्थः) स रावणः बाल्ये पूर्णचन्द्राननः तथा भुजचतुष्टयवान् आसीत्, सम्प्रति यौवने तेजसा साक्षात्सूर्य इव दृश्यते ॥ ७० ॥

(भाषार्थ) यह शिशुपाल बाल्यावस्थामें ही चार भुजा वाला, अर्थात् विष्णुके सदृश था और मुखसे पूर्णचन्द्र के

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

समान था अतएव तीन नेत्र वाले शङ्करजीकी तरह था। अब इस समय तारुण्यावस्थामें और और राजाओंसे कर लेने वाला हुआ है। सूर्य पक्षमें—(कर=किरणोंसे आक्रान्त =व्याप्त है महीभृत=पर्वत जिसके) ऐसा यह निःसंशय सूर्य है ॥ ७० ॥

स्वयं विधाता सुरदैत्यरक्षसामनुग्रहावग्रहयोर्यदृच्छया ।
दशाननादीनभिराद्धदेवतावितीर्णवीर्यातिशयान् हसत्यसौ ॥

(अन्वयः) यदृच्छया सुरदैत्यरक्षसां अनुग्रहावग्रहयोः स्वयं विधाता असौ अभिराद्धदेवतावितीर्णवीर्यातिशयान् दशाननादीन् हसति ॥ ७१ ॥

(सुबोधिनी) यदृच्छया (स्वेच्छया) सुरदैत्यरक्षसां (देवदानवराक्षसानां) अनुग्रहावग्रहयोः (प्रसादनिग्रहयोः) स्वयं विधाता (कारकः) असौ (शिशुपालः) अभिराद्धदेवतावितीर्णवीर्यातिशयान् (पूजितदेवतानुग्रहेण प्राप्तप्रबलप्रभावान्) दशाननादीन् (रावणादीन्) हसति (उपहसति) ॥

(समासः) दितेः अपत्यानि पुमांसः दैत्याः, सुराश्च दैत्याश्च रक्षांसि च सुरदैत्यरक्षांसि तेषां । अनुग्रहावग्रहयोः=अनुग्रहश्च अवग्रहश्च अनुग्रहावग्रहौ तयोः । अभिराद्धदेवतावितीर्णवीर्यातिशयान्=वीर्यस्य अतिशयः वीर्यातिशयः, अभिराद्धाश्च ता देवताश्च अभिराद्धदेवताः, ताभिः वितीर्णः वीर्यातिशयो येषां तान् । दशाननादीन्=दश आननानि अस्य असौ दशाननः, स आदिर्येषां ते दशाननादयस्तान् ॥ ७१ ॥

(कोषः) स्वेच्छा यदृच्छा स्वच्छन्दः स्वैरता चेति ते समा इत्यमरः ॥

(व्याकरणम्) विधाता=विदधाति इति विधाता=वि+धा+तृच् । हसति=हस+लट्+ति ॥ ७१ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) विधात्रा अमुना''''अतिशयाः दशाननादयः हस्यन्ते ॥ ७१ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(सरलार्थः) असौ शिशुपालः, देवदानवराक्षसानभिभूय, "अनन्य-प्रसादलब्धैश्वर्यस्य मम पुरतः पूर्वभवानां वराकानां रावणादीनां का कथा ये च खलु देवतानुग्रहादेव ऐश्वर्यम्प्राप्नुवन्तः" इति पूर्वान् दैत्यान् हसति।७१।

(भावार्थ) देवताओंके वरदानसे नहीं, किन्तु अपने पुरुषार्थसे देव दानवों और राक्षसों पर दया करनेवाला या उनको दण्ड देनेवाला यह शिशुपाल देवताओंकी कृपासे प्राप्त शक्तिवाले रावणादिका उपहास करता है॥ ७१॥

बलावलेपादधुनाऽपि पूर्ववत्प्रबाध्यते तेन जगज्जिगीषुणा ।
सतीव योषित्प्रकृतिः सुनिश्चला पुमांसमभ्येति भवान्तरेष्वपि ।

(अन्वयः) जिगीषुणा तेन बलावलेपात् अधुना अपि पूर्ववत् जगत् प्रबाध्यते, सुनिश्चला प्रकृतिः, सती योषित् इव भवान्तरेषु अपि पुमांसं अभ्येति॥ ७२॥

(सुबोधिनी) जिगीषुणा (जेतुमिच्छुना) तेन (शिशुपालेन) बलावलेपात् (बलगर्वात्) अधुना (इदानीं) अपि (पूर्वजन्मनि इव) जगत् (लोकं) प्रबाध्यते (पीड्यते) तथाहि, सुनिश्चला (स्थिरा) प्रकृतिः (स्वभावः) सती (पतिव्रता) योषित् (स्त्री) इव, भवान्तरेषु (जन्मान्तरेषु अपि) पुमांसं (पुरुषं) अभ्येति (अभिगच्छति)॥ ७२॥

(समासः) बलावलेपात्=बलस्य अवलेपः बलावलेपः तस्मात् । जिगीषुणा=जेतुमिच्छुः जिगीषुः तेन । भवान्तरेषु=अन्ये भवाः भवान्तराणि तेषु ।। ७२ ।।

(कोषः) एतर्हि सम्प्रतीदानीमधुना साम्प्रतं तथा । त्रिष्वथो जगती-लोको विष्टपं भुवनं जगत् । स्त्रीयोषिदबला योषा । इत्याद्यमराः ।।७२।।

(व्याकरणम्) प्रबाध्यते=प्र+बाध्+लट्+ते । अभ्येति=अभि+इ+लट्+ति ।। ७२ ।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(वाच्यपरिवर्तनम्) जिगीषुः सः प्रबाधते। सत्या योषिता इव सुनिश्चलया प्रकृत्या····पुमान् अभीयते ॥ ७२ ॥

(सरलार्थः) यथा काचित् साध्वी स्त्री स्वप्नेऽपि परपुरुषमनभिलषमाणा प्रेत्य पुनस्तमेव पूर्वं पतिम्भजते तथैव अस्य शिशुपालस्यापि पूर्वजन्मभवः जगत्त्रासकरः दुष्टस्वभावः अस्मिन्नपि जन्मनि तमासाद्य लोकं पीडयति ॥ ७२ ॥

(भावार्थ) शिशुपाल अपने पूर्व जन्ममें जिस समय वह रावण था, जिस तरह जगत्को सता रहा था, उसी तरह इस जन्ममें भी सता रहा है लोगोंको सतानेकी पहले जन्मकी प्रकृति इस जन्ममें भी उसको प्राप्त हुई है, जैसे सती स्त्रीको उसके दूसरे जन्ममें भी उसका पुरुष उसे प्राप्त होता है॥७२॥

तदेनमुल्लंघितशासनं विधेर्विधेहि कीनाशनिकेतनातिथिम्।
शुभेतराचारविपक्त्रिमापदो विपादनीया हि सतामसाधवः॥

(अन्वयः) तत् विधेः उल्लङ्घितशासनं एनं कीनाशनिकेतनातिथिं विधेहि हि शुभेतराचारविपक्त्रिमापदः असाधवः सतां विपादनीयाः खलु ॥ ७३ ॥

(सुबोधिनी) तत् (तस्मात् कारणात्) विधेः (ब्रह्मणः) अपि, उल्लङ्घितशासनं (अतिक्रान्तमर्यादं, उल्लङ्घितविधिशासनं इति वा) एनं (शिशुपालं) कीनाशनिकेतनातिथिं (कृतान्तगृहस्य अभ्यागतं) विधेहि (कुरु) हि (यतः) शुभेतराचारविपक्त्रिमापदः (दुराचारेण परिपक्वापदः) असाधवः (दुष्टाः) सतां (सज्जनानां) विपादनीयाः (वध्याः) खलु ॥ ७३ ॥

(समासः) उल्लंघितशासनं=उल्लंघितं शासनं येन सः उल्लंघितशासनः तं। कीनाशनिकेतनातिथिं=कीनाशस्य निकेतनं कीनाशनिकेतनं, तस्य अतिथिः तं। शुभेतराचारविपक्त्रिमापदः=पाकेन निर्वृत्ताः पक्त्रिमाः,

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शुभात् इतर इति शुभेतरः, शुभेतरः आचारः शुभेतराचारः, तेन विपक्त्रिमा आपद एषान्ते । असाधवः=न साधवः इति असाधवः ।। ७३ ।।

(कोष) कीनाशः कर्षके क्षुद्रे कृतान्तोपांशुघातिनोः, इत्यमरः ।।७३।।

(व्याकरणम्) विधेहि=वि+धा+लोट्+ति । निपातनीयाः नि+पत्+णिच्+अनीयर् ।। ७३ ।।

(सरलार्थः) त्रिजगच्छासकस्य ब्रह्मणः आज्ञाविघातकः अयं नूनं यमस्य आतिथ्यमासादनीयः । दुष्टा दुराचारादिनिजदोषेणैव नाशमायान्ति साधवस्तु निमित्तमात्रं भवन्ति, अतः शिशुपालहनने आत्मदोषं माद्राक्षीः ॥

(भाषार्थ) इसलिये विधाताकी भी आज्ञाको उल्लङ्घन करनेवाले इस शिशुपालको आप यमराजके यहांका अतिथि बनावें। निरन्तर दुष्टता करते रहनेसे भरे हुए पापके घड़ेवाले असाधुओंको सत्पुरुषोंने अवश्य दण्ड देना चाहिये ॥ ७३ ॥

हृदयमरिवधोदयादुदूढद्रढिम दधातु पुनः पुरन्दरस्य ।
घनपुलकपुलोमजाकुचाग्रद्रुतपरिरम्भनिपीड़नक्षमत्वम् ।।७४।।

(अन्वयः) अरिवधोदयात् उदूढद्रढिम पुरन्दरस्य हृदयं पुनः घनपुलकपुलोमजाकुचाग्रद्रुतपरिरम्भनिपीड़नक्षमत्वं दधातु ॥ ७४ ॥

(सुबोधिनी) अरिवधोदयात् (रिपुनाशलाभात्) उदूढद्रढिम (धृतदार्ढ्यं) पुरन्दरस्य (पुरुहूतस्य) हृदयं (चित्तं) पुनः (भूयः) घनपुलकपुलोमजाकुचाग्रद्रुतपरिरम्भनिपीड़नक्षमत्वं (सान्द्रपुलकशचीस्तनाग्रयोः शीघ्रालिङ्गनपीड़नसहत्वं) दधातु (धारयतु) ॥ ७४ ॥

(समासः) अरिवधोदयात्=अरेः वधः अरिवधः स एव उदयः अरिवधोदयः तस्मात् । उदूढद्रढिम=उदूढः द्रढिमा येन तत् उदूढ द्रढिम । पुरन्दरस्य=पुरः (शत्रुपुराणि) दारयतीति पुरन्दरः तस्य । घनः पुलकः ययोस्तौ घनपुलकौ, कुचयोः अग्रौ कुचाग्रौ, पुलोम्नः जातेति

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पुलोमजा, पुलोमजायाः कुचाग्रौ पुलोमजाकुचाग्रौ, घनपुलकौ च तौ पुलोमजाकुचाग्रौ घनपुलकपुलोमजाकुचाग्रौ तयोः द्रुतं (शीघ्रं) यः परिरम्भः (आलिङ्गनं) तत्र यत् निपीड़नं, तस्य क्षमत्वं, तत् ॥ ७४ ॥

(कोषः) वृद्धश्रवाः सुनासीरः पुरुहूतः पुरन्दरः, इत्यमरः ॥७४॥

(वाच्यान्तरम्) अरिवधोदयात् उदूढद्रढिम्ना पुरन्दरस्य हृदयेन ·······धीयताम् ॥ ७४ ॥

(व्याकरणम्) दधातु=धाञ्+लोट्+ति (उ) । द्रढिम= दृढ+इमनिच् ॥ ७४ ॥

(सरलार्थः) शिशुपालवधात् लब्धस्वास्थ्यः शक्रः इदानीं त्वत्प्रसादात्कण्टकरहितं स्वीयं राज्यं भुनक्तु ॥ ७४ ॥

(भावार्थ) शत्रुके वधसे प्राप्त दृढ़तावाला इन्द्रका हृदय कामसे पुलकित इन्द्राणीके स्तनोंको आलिंगन करनेमें पुनः सामर्थ्य प्राप्त करे ॥ ७५ ॥

ओमित्युक्तवतोऽथ शार्ङ्गिण इति व्याहृत्य वाचं नभ-
स्तस्मिन्नुत्पतिते पुरः सुरमुनाविन्दोः श्रियं बिभ्रति ।
शत्रूणामनिशं विनाशपिशुनः क्रुद्धस्य चैद्यं प्रति
व्योम्नीव भ्रुकुटिच्छलेन वदने केतुश्चकारास्पदम् ।७५॥

(अन्वयः) तस्मिन् सुरमुनौ इति वाचं व्याहृत्य नभः उत्पतिते पुरः इन्दोः श्रियं बिभ्रति (सति) अथ ओम् इति उक्तवतः चैद्यं प्रति क्रुद्धस्य शार्ङ्गिणः वदने, व्योम्नि इव अनिशं शत्रूणां विनाशपिशुनः केतुः भ्रुकुटिच्छलेन आस्पदं चकार ।७५।

(सुबोधिनी) तस्मिन् सुरमुनौ (नारदे) इति-वाचं (इत्थम्भूतां वाणीं) व्याहृत्य (उक्त्वा) नभः (आकाशं) उत्पतिते (उद्गते) पुरः (अग्रे) इन्दोः (चन्द्रस्य) श्रियं (शोभां) बिभ्रति (धारयति) सति, अथ (नारदवाक्यानन्तरं)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ओमित्युक्तवतः (तथास्त्वित्यङ्गीकृतवतः) चैद्यं (शिशुपालं) प्रति, क्रुद्धस्य (कुपितस्य) शार्ङ्गिणः (श्रीकृष्णस्य) वदने (मुखे) व्योम्नि (आकाशे) इव (यथा) अनिशं (निरन्तरं) शत्रूणां (अरीणां) विनाशपिशुनः (नाशसूचकः) केतुः (दुष्टग्रहः) भ्रुकुटिच्छलेन (भ्रूभङ्गव्याजेन) आस्पदं (स्थितिं) चकार (कृतवान्) ॥ ७५ ॥

(समासः) शार्ङ्गिणः=शृङ्गस्य विकारः शार्ङ्गं तत् अस्य अस्ति इति शार्ङ्गी तस्य । सुरमुनौ=सुराणां मुनिः सुरमुनिः तस्मिन् । विनाशपिशुनः=विनाशस्य पिशुनः विनाशपिशुनः । भ्रुकुटिच्छलेन=भ्रुवः कुटिः भृकुटिः, सा एव छलं तेन । अनिशं=अविद्यमाना निशा (विरतिः) यस्मिन् तत् यथा तथा अनिशम् ॥ ७५ ॥

(कोषः) केतुर्द्युतौ पताकायां ग्रहोत्पातादिलक्ष्मसु, पिशुनौ खलसूचकौ । इत्यमरौ ॥ ७५ ॥

(व्याकरणम्) व्याहृत्य=वि+आ+हृ+ल्यप् । बिभ्रति+भृ +शतृ । चकार=कृ+लिट्+ति+णल् ॥ ७५ ॥

(वाच्यान्तरम्) पिशुनेन केतुना.......................चक्रे ॥७५॥

(सरलार्थ) नारदः इत्थं वाचं व्याहृत्य विरराम । हरिश्च शिशुपालवधं स्वाचकार । ततः मुनिः प्रसन्नमानसो भूत्वा दिवमभिप्रतस्थे । हरिरपि रिपुनाशं चिन्तयन्तत्र तस्थौ ॥ ७५ ॥

(भाषार्थ) नारद महामुनि इस प्रकार कहकर आकाशमें जाकर चन्द्रमाकी शोभा धारण करने लगे। और नारदमुनिकी बातको अंगीकार करनेवाले, शिशुपालपर अति क्रुद्ध भगवान् श्रीकृष्णके मुखपर—आकाशमें उत्पातकी तारा केतुकीतरह भृकुटि दिखाई देने लगी। तात्पर्य यह कि:—

नारद महामुनि इन्द्रका सन्देश सुनाकर जब आकाशमें चले गये तब वे चन्द्रमाकी तरह दिखाई देने लगे और इधर भगवान् श्रीकृष्णका मुख क्रोधसे अत्यन्त लाल हो गया और

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उन्होंने शिशुपालको मारना कबूल किया। श्रीकृष्णके मुखपर भृकुटि इस तरह चढ़गई थी कि जिस तरह आकाशमें शत्रुओंके नाशका सूचक केतु उदय हुआ हो। शुभ्र होनेसे नारद मुनि चन्द्रमा समान थे और श्रीकृष्णका मुख आकाश था और भृकुटि केतु (तारा) थी। आकाशमें चन्द्रमाके समीप धूमकेतुके उदय होनेसे राजाओंका नाश होता है। इसलिये शिशुपालका अवश्य नाश होगा। कहा भी है कि :—

"चन्द्रमभ्युत्थितः केतुः क्षितीशानां विनाशकृत्" ॥ ७५ ॥

इति श्रीस्मार्तकर्मानुष्ठाननिष्ठ कश्यपवंशावतंस-स्वधर्मधुरन्धर पाठकोपाह्व जयकृष्णशर्म्म-तनुजनुषा गौरीनाथ-शर्म्मणा विरचितया सुबोधिन्याख्यया व्याख्यया सरलार्थया च संवलितौ महाकविश्रीमाघकृतौ शिशुपालवधे महाकाव्ये कृष्णनारद सम्भाषणं नाम प्रथमः सर्गः।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

द्वितीयः सर्गः ।

यियक्षमाणेनाहूतः पार्थेनाथ द्विषन्मुरम् ।
अभिचैद्यं प्रतिष्ठासुरासीत्कार्यद्वयाकुलः ॥ १ ॥

(अन्वयः) अथ यियक्षमाणेन पार्थेन आहूतः अभिचैद्यं प्रतिष्ठासुः मुरं द्विषन् कार्यद्वयाकुलः आसीत् ॥ १ ॥

(सुबोधिनी) अथ (इन्द्रसन्देशश्रवणानन्तरं) यियक्षमाणेन (यष्टुमिच्छता) पार्थेन (पृथापुत्रेण राज्ञा युधिष्ठिरेण) आहूतः (आकारितः) तथा, अभिचैद्यं (शिशुपालं प्रति) प्रतिष्ठासुः (प्रस्थातुमिच्छुः) मुरं द्विषन् (मुरारिः श्रीहरिः) कार्यद्वयाकुलः (सुरकार्यसुहृत्कार्यरूपेण व्याकुलः) आसीत् (अभवत्) ॥ १ ॥

(समासः) अभिचैद्यम्=चैद्यं अभिलक्ष्य इति अभिचैद्यम् । कार्यद्वयाकुलः=द्वौ अवयवौ अस्य इति द्वयं, कार्ययोः द्वयं कार्यद्वयं, कार्यद्वयेन आकुलः कार्यद्वयाकुलः ॥ १ ॥

(व्याकरणम्) यियक्षमाणेन=यष्टुमिच्छति यियक्षमाणः तेन । यज्+सन्+लट्+शानच् । प्रतिष्ठासुः=प्रस्थातुमिच्छुः प्रतिष्ठासुः=प्र+स्था=सन्+उ । आहूतः=आ+ह्वेञ्+क्त । आसीत्+ अस्+लङ्+ति ॥ १ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्)..........आहूतेन.......प्रतिष्ठासुना...... द्विषता........कुलेन अभूयत ॥ १ ॥

(सरलार्थः) नारदवचनात् हरिणा चैद्याभियानं स्वीकृतं, तदैव राजसूये युधिष्ठिरस्य निमन्त्रणमपि समधिगतम् । एककालं युद्धाभिगमनं यज्ञमण्डपाभिगमनं च सर्वथा असंभवमत एतयोर्मध्ये प्रथमं मया किं विधेयमिति वितर्कयन्मुरारिर्निश्चयं न लेभे ॥ १ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(भावार्थ) नारद मुनिके द्वारा इन्द्रका सन्देश सुनकर भगवान् श्रीकृष्णने शिशुपालपर चढ़ाई करनेका निश्चय किया, इसी अवसरमें धर्मराज युधिष्ठिरका राजसूययज्ञमें पधारनेके लिये निमंत्रण भी मिला—इस तरह परस्पर विरुद्ध दोनों आवश्यक कार्योंके एकही समय उपस्थित होनेसे भगवान् श्रीकृष्ण बड़ी चिन्तामें पड़े।

सार्धमुद्धवसीरिभ्यामथासावासदत्सदः।
गुरुकाव्यानुगां बिभ्रच्चान्द्रीमभिनभः श्रियम्॥ २॥

(अन्वयः) अथ असौ अभिनभः गुरुकाव्यानुगां चान्द्रीं श्रियं बिभ्रत् उद्धवसीरिभ्यां सार्द्धं सदः आसदत्॥ २॥

(सुबोधिनी) अथ (सन्देशानन्तरं) असौ (हरिः) उद्धवसीरिभ्यां (उद्धवबलरामाभ्यां) सार्द्धं (सह) अभिनभः (आकाशे) गुरुकाव्यानुगां (बृहस्पति-शुक्रानुयायिनीं) चान्द्रीं (चन्द्रसम्बन्धिनीं) श्रियं (शोभां) बिभ्रत् (धारयन्) सदः (सभां) आसदत् (अगमत्)॥ २॥

(समासः) गुरुकाव्यानुगां=अनुगच्छतीति अनुगः, गुरुश्च काव्यश्च गुरुकाव्यौ, गुरुकाव्यौ अनुगौ यस्यां सा तां। चान्द्रीं=चन्द्रस्य इयं चान्द्री तां उद्धवसीरिभ्यां=सीरः अस्ति अस्य इति सीरी, उद्धवश्च सीरी च। उद्धवसीरिणौ ताभ्यां, नभसि इति अभिनभः॥ २॥

(कोषः) नभोऽन्तरिक्षं गगनम्, शुक्रो दैत्यगुरुः काव्य उशना भार्गवः कविरित्यमरौ॥ २॥

(व्याकरणम्) बिभ्रत्=भृ+शतृ। आसदत्=आ+सद+लुङ्+तिप्॥ २॥

(वाच्यपरिवर्तनम्)......अमुना......बिभ्रता......आसादि॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(सरलार्थः) इत्थं सन्दिहानो हरिः बलेन उद्धवेन च साकं मन्त्रणागृहं प्रविवेश ।। २ ।।

(भाषार्थ) और इस विषयपर विचार करनेके लिये उद्धव और बलदेवजीको साथ लेकर मंत्रणागृहमें आये, उस समय भगवान् श्रीकृष्णकी शोभा आकाशमें गुरु और शुक्रके सहित चन्द्रमाकी सी मालूम पड़ती थी ॥ २ ॥

जाज्वल्यमाना जगतः शान्तये समुपेयुषी ।
व्यद्योतिष्ट सभावेद्यामसौ नरशिखित्रयी ।। ३ ।।

(अन्वयः) जगतः शान्तये समुपेयुषी जाज्वल्यमाना असौ नरशिखित्रयी सभावेद्यां व्यद्योतिष्ट ॥ ३ ॥

(सुबोधिनी) जगतः (संसारस्य) शान्तये (अनुपद्रवाय) समुपेयुषी (सम्मिलिता, सङ्गता वा) जाज्वल्यमाना (अत्यर्थं ज्वलन्ती) असौ (एषा) नरशिखित्रयी (अग्निसदृशतेजस्वि-पुरुषाणां त्रयी) सभावेद्यां (सभा-परिष्कृतभूमौ) व्यद्योतिष्ट (दीप्यतेस्म) ॥ ३ ॥

(समासः) नरशिखित्रयी=त्रयः अवयवाः अस्य सा त्रयी, नरा एव शिखिनः नरशिखिनः, नरशिखिनां त्रयी नरशिखित्रयी । सभा एव वेदिः सभावेदिः, तस्यां ।। ३ ।।

(कोषः) वेदिः परिष्कृता भूमिः, इत्यमरः ।। ३ ।।

(व्याकरणम्) व्यद्योतिष्ट=वि+द्युत्+लुङ्+त । जाज्वल्यमाना=ज्वल+यङ्+लिट्+शानच्+टाप् । समुपेयुषी=सम्+उप+इ+क्वसु+ङीप् ।। ३ ।।

(वाच्यपरिवर्तनम्)''''समुपेयुष्या जाज्वल्यमानया अमुया''''''नरशिखित्रय्या व्यद्योति ।। ३ ।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(सरलार्थः) जगन्मङ्गलकरणाय सम्मिलिता हरि-उद्धव-बलरामाः सभाभूमौ भृशं बभासिरे ॥ ३ ॥

(भावार्थ) जगत्के उपद्रवोंको शान्त करनेके लिये एकत्रित हुए, आहवनीय, दक्षिण और गार्हपत्यरूप अग्निके समान ये तीनों महापुरुष सभारूप वेदीपर सुशोभित हुए ॥३॥

रत्नस्तम्भेषु सङ्क्रान्तप्रतिमास्ते चकाशिरे। उत्प्रेक्षा
एकाकिनोऽपि परितः पौरुषेयवृता इव ॥ ४ ॥

(अन्वयः) रत्नस्तम्भेषु सङ्क्रान्तप्रतिमाः ते एकाकिनः अपि परितः पौरुषेयवृताः इव चकाशिरे ॥ ४ ॥

(सुबोधिनी) रत्नस्तम्भेषु (रत्नखचितस्तम्भेषु) सङ्क्रान्तप्रतिमाः (सँल्लग्नप्रतिबिम्बाः) ते (बलराम-श्रीकृष्णोद्धवाः) एकाकिनः (एकैकाः, असहाया इत्यर्थः) अपि, परितः (सर्वतः) पौरुषेयवृताः (पुरुषसमूहेन आवृताः) इव, चकाशिरे (दीप्यन्ते स्म) ॥ ४ ॥

(समासः) रत्नस्तम्भेषु=रत्नानां स्तम्भाः रत्नस्तम्भाः तेषु। सङ्क्रान्तप्रतिमाः=सङ्क्रान्ता प्रतिमा एषां ते। पौरुषेयवृताः = पुरुषाणां समूहः पौरुषेयं तेन वृताः पौरुषेयवृताः ॥ ४ ॥

(कोषः) समन्ततस्तु परितः सर्वतो विष्वगित्यपि, इत्यमरः ॥ ४ ॥

(व्याकरणम्) चकाशिरे = काश्+लिट्+इरे । एकाकी = एक +आकिनिच् असहाये ॥ ४ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्)·········प्रतिमैः तैः एकाकिभिः वृतैः चकाशे।

(सरलार्थः) यद्यपि ते तदानीं मन्त्रणागृहं अनुचररहितं विदधुः तथापि रत्नखचितस्तम्भेषु सङ्क्रान्तप्रतिबिम्बतया ते सानुचरा इव अलक्ष्यन्त ॥ ४ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(भाषार्थ) यद्यपि ये तीनों वहां अकेले ही थे, इनके साथ और कोई न था, परन्तु सभामण्डपके रत्नजटित खंभों- में इनका प्रतिबिम्ब पड़नेपर एक-एकभी ये अनेकसे मालूम पड़ते थे ॥ ४ ॥

अध्यासामासुरुत्तुङ्गहेमपीठानि यान्यमी। उपमा
तैरूहे केसरिक्रान्तत्रिकूटशिखरोपमा ॥ ५ ॥

(अन्वयः) अमी यानि उत्तुङ्गहेमपीठानि अध्यासामासुः तैः केसरिक्रान्तत्रिकूटशिखरोपमा ऊहे ॥ ५ ॥

(सुबोधिनी) अमी (एते त्रयः, रामकृष्णोद्धवाः) यानि, उत्तुङ्गहेमपीठानि (उन्नतस्वर्णमयासनानि) अध्यासामासुः (अधितष्ठुः) तैः (पीठैः) केसरिक्रान्तत्रिकूटशिखरोपमा (सिंहाक्रान्तत्रिकूटाचलशृङ्गसादृश्यं) ऊहे (ऊढा) ॥ ५ ॥

(समासः) उत्तुङ्गहेमपीठानि=हेम्नः पीठानि हेमपीठानि उत्तुङ्गानि हेमपीठानि उत्तुङ्गहेमपीठानि। केसरिक्रान्तत्रिकूटशिखरोपमा=केसराः सन्त्येषां ते केसरिणः, त्रिकूटस्य शिखराणि त्रिकूटशिखराणि, केसरिभिः क्रान्तानि केसरिक्रान्तानि, केसरिक्रान्तानि त्रिकूटशिखराणि, केसरिकान्त- त्रिकूटशिखराणि तेषां उपमा ॥ ५ ॥

(कोषः) पीठमासनम्, सिंहो मृगेन्द्रः पञ्चास्यो हर्यक्षः केसरी हरिः, कूटोऽस्त्री शिखरं शृङ्गम्—इत्याद्यमराः ॥ ५ ॥

(व्याकरणम्) अध्यासामासुः=अधि+आस+लिट्+उस्। ऊहे =वह+लिट्+ए।

(वाच्यपरिवर्तनम्) अमीभिः......अध्यासामासिरे......तानि केसरिक्रान्तत्रिकूटशिखरोपमामूहुः ॥ ५ ॥

(सरलार्थः) एतेषामासनाधिष्ठानेन तानि आसनानि सिंहैराक्रान्त- त्रिकूटाचलशिखरसमानशोभामलभन् ॥ ५ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(भाषार्थ) ये तीनों जिन ऊँचे सोनेके सिंहासनोंपर बैठे थे उन सिंहासनोंको त्रिकूट पर्वतके तीनों शिखरोंपर तीन सिंह बैठनेके जैसी शोभा प्राप्त हुई ॥ ५ ॥

गुरुद्वयाय गुरुणोरुभयोरथ कार्ययोः ।
हरिर्विप्रतिषेधन्तमाचचक्षे विचक्षणः ॥ ६ ॥

(अन्वयः) अथ विचक्षणः हरिः गुरुद्वयाय, गुरुणोः उभयोः कार्ययोः तं विप्रतिषेधं आचचक्षे ॥ ६ ॥

(सुबोधिनी) अथ (उपवेशनानन्तरं) विचक्षणः (प्राज्ञः) हरिः (श्रीकृष्णः) गुरुद्वयाय (पितृव्यज्येष्ठभ्रातृभ्यामित्यर्थः) गुरुणोः (महतोः) उभयोः-कार्ययोः (चैद्यवध-यज्ञगमनरूपयोः) तं, विप्रतिषेधं (विरोधं) आचचक्षे (आख्यातवान्) ॥ ६ ॥

(समासः) गुरुद्वयाय = द्वौ अवयवौ अस्य इति द्वयं गुर्वोः द्वयं गुरुद्वयं तस्मै ॥ ६ ॥

(कोषः) गुरुर्महत्याङ्गिरसे पित्रादौ धर्मदेशके, इति हैमः ॥ ६ ॥

(व्याकरणम्) विचक्षणः = विचष्टे इति विचक्षणः=वि+चक्ष+ल्युट् । आचचक्षे = आ+चक्ष+लिट्+ए ॥ ६ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्)............विचक्षणेन हरिणा............सः विप्रतिषेधः आचचक्षे ॥ ६ ॥

(सरलार्थः) ततः तेषामुपवेशनानन्तरं हरिः प्रास्तावीत्—एकतः सुहृत्कार्यं, अपरतः रिपुदमनं, एतदुभयमपि युगपदेव प्राप्तं तयोर्देशश्च पृथक् पृथक्, अहञ्च एक एव, किमिदानीमनुष्ठेयम् ॥६॥

(भाषार्थ) इसके बाद भगवान् श्रीकृष्णने बलराम और उद्धवजीके सामने एक साथ न होनेवाले ऐसे उपर्युक्त दोनों कार्योंका विरोध उपस्थित किया ॥ ६ ॥

द्योतितान्तःसभैः कुन्दकुड्मलाग्रदतः स्मितैः ।
स्नपितेवाभवत्तस्य शुद्धवर्णा सरस्वती ॥ ७ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(अन्वयः) कुन्दकुड्मलाग्रदतः तस्य सरस्वती द्योतितान्तःसभैः स्मितैः स्नपिता इव शुद्धवर्णा अभवत् ॥ ७ ॥

(सुबोधिनी) कुन्दकुड्मलाग्रदतः (माघ्यकुसुमकलिकाग्रभागसदृशदतः) तस्य (श्रीकृष्णस्य) सरस्वती (वाणी) द्योतितान्तःसभैः (प्रकाशितसभाभ्यन्तरैः) स्मितैः (मन्दहास्यैः स्नपिता इव (क्षालितेव) शुद्धवर्णा (स्पष्टाक्षरतया स्वच्छकान्तिः) अभवत् (बभूव) ७ ॥

(समासः) कुन्दकुड्मलाग्रदतः = कुन्दानां कुड्मलानि कुन्दकुड्मलानि, तेषां अग्राणि कुन्दकुड्मलाग्राणि, तानि इव दन्ता अस्य सः कुन्दकुड्लाग्रदन् तस्य । शुद्धवर्णा = शुद्धः वर्णः अस्याः सा । द्योवितान्तःसभैः = अन्तः प्रधाना सभा अन्तःसभा, द्योतिता अन्तःसभा यैस्तैः ॥ ७ ॥

(कोषः) माघ्यं कुन्दं, इत्यमरः ॥ ७ ॥

(व्याकरणम्) स्नपिता = स्ना+णिच् (पुक्)+क्त । अभवत् = भू+लङ्+तिप् ॥ ७ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्)·······सरस्वत्या···········स्नपितया········ शुद्धवर्णया अभूयत ॥ ७ ॥

(सरलार्थः) स्मितपूर्वाभिभाषी हरिः स्मितपूर्वमभाषत । तदानीं तस्य दन्तकान्तिभिः मन्त्रणागृहमालोकितमभूत् ॥ ७ ॥

(भाषार्थ) माघ महीनेके कुन्द फूलकी कलिके अग्र भागकी तरह दांतवाले भगवानकी मन्द हास्य युक्त वाणी, मन्दस्मितसे स्नानकी हुईकी तरह शुद्ध—निर्मल और स्पष्टाक्षरोंवाली थी॥

भवद्गिरामवसरप्रदानाय वचांसि नः ।
पूर्वरङ्गः प्रसङ्गाय नाटकीयस्य वस्तुनः ॥ ८ ॥

(अन्वयः) भवद्गिरां अवसरप्रदानाय नः वचांसि । पूर्वरङ्गः नाटकीयस्य वस्तुनः प्रसङ्गाय (एव भवति) ॥ ८ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(सुबोधिनी) भवद्गिरां (युष्मद्वाचां) अवसरप्रदानाय (अवकाशप्रदानाय) एव, नः (अस्माकं) वचांसि (वाक्यानि) तथाहि = * पूर्वरङ्गः (नाट्यपूर्वकृत्यं) नाटकीयस्य (अभिनेयस्य) वस्तुनः (विषयस्य) प्रसङ्गाय (प्रवर्त्तनाय) भवतीतिशेषः ॥ ८ ॥

(समासः) भवद्गिरां=भवतोः गिरः भवद्गिरः तासां। अवसरप्रदानाय=अवसरति अस्मिन्निति अवसरः, अवसरस्य प्रदानं अवसरप्रदानं तस्मै। पूर्वरङ्गः=पूर्वं रज्यते अस्मिन्निति पूर्वरङ्गः। नाटकीयस्य=नाटके भवं नाटकीयं तस्य ॥ ८ ॥

(कोषः) गीर्वाग्वाणी सरस्वती, इत्यमरः ॥ ८ ॥

(व्याकरणम्) नाटकीयस्य=नाटक+छ+ईय ॥ ८ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्)....नः वचोभिः (भूयते) पूर्वरङ्गेण....(भूयते)

(सरलार्थः) यदहं अत्र ब्रवीमि नैतत्सिद्धान्तोन्नयनार्थं, किन्तु सद्वचनमाकर्ण्य भवतः को विचार उत्पद्यते तज्ज्ञानार्थमेव ॥ ८ ॥

(भाषार्थ) मेरा कहना केवल आपलोगोंके कथनको मौका देनेके लिये है जैसे पूर्वरङ्ग (नाटकके आरम्भमें किया जानेवाला मङ्गलाचरण) नाट्य कथाके आरम्भ करनेके लिये होता है ॥८॥

---

* पूर्वरङ्ग :—नृत्यस्थानस्य विघ्नोपशान्तये नाटकेतिवृत्तप्रस्तावात् पूर्वं सूत्रधारप्रधानो नटः यन् मङ्गलादिकमाचरति सः पूर्वरङ्गः। तथाच विश्वनाथः—"यन्नाट्यवस्तुनः पूर्वं रङ्गविघ्नोपशान्तये। कुशीलवाः प्रकुर्वन्ति पूर्वरङ्गः स उच्यये" रङ्गराजस्तु—पूर्वरङ्गं प्रस्तावनेति कथयामास, परं नैतत्समीचीनं, यतः "पूर्वरङ्गं विधायादौ सूत्रधारे विनिर्गते। प्रविश्य तद्वदपरः काव्यमास्थापयेन्नटः" ॥ इति तथा "प्रथमं पूर्वरङ्गश्च ततः प्रस्तावनेति च। आरम्भे सर्वनाट्यानामेतत्सामान्यमिष्यते" इति दशरूपकाद्युक्तभेदविरोधात्।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

करदीकृतभूपालो भ्रातृभिर्जित्वरैर्दिशाम् ।
विनाऽप्यस्मदलम्भूष्णुरिज्यायै तपसः सुतः ॥ ९ ॥

(अन्वयः) दिशां जित्वरैः भ्रातृभिः करदीकृतभूपालः तपसः सुतः अस्मत् विना अपि इज्यायै अलम्भूष्णुः ॥ ९ ॥

(सुबोधिनी) दिशां (काष्ठानां) जित्वरैः (विजयशीलैः) भ्रातृभिः (भीमादिभिः) करदीकृतभूपालः (वशीकृतराजमण्डलः) तपसः (धर्मस्य) सुतः (पुत्रः) अस्मत् विना (अस्माभिर्विना) अपि इज्यायै (यज्ञाय) अलं (समर्थः) भूष्णुः (भवनशीलः) ॥ ९ ॥

(समासः) करदीकृतभूपालः=करं ददाति इति करदाः, अकरदाः करदाः सम्पद्यमानाः कृताः करदीकृताः, करदीकृताः भूपालाः येन सः करदीकृतभूपालः ॥ ९ ॥

(कोषः) तपश्चान्द्रायणादौ स्याद्धर्मे लोकान्तरेऽपिच । विश्वः ॥

(व्याकरणम्) जित्वरैः = जि + क्वरप् । करदीकृता = करद+च्वि+कृ+क्त । भूष्णुः = भू+स्नु ॥ ९ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) भूपालेन........सुतेन........भूष्णुना अलं भविष्यते ॥ ९ ॥

(सरलार्थः) मम एवं विचारः—यद्यहं यज्ञे न गमिष्यामि तथापि युधिष्ठिरस्य यागः सम्पन्न एव भविता, अतः जैत्रयात्रैव प्रशस्ता नतु यागयात्रा ॥ ९ ॥

(भाषार्थः) धर्मराज युधिष्ठिर अपने दिग्विजयी भाइयोंके साथ राजसूययज्ञ पूर्ण कर सकते हैं, मेरे वहाँ न जानेसे उनकी कोई हानि नहीं। इसलिये शिशुपालपर चढ़ाई करना ही ठीक है॥

उत्तिष्ठमानस्तु परो नोपेक्ष्यः पथ्यमिच्छता ।
समौ हि शिष्टैराम्नातौ वर्त्स्यन्तावामयः स च ॥ १० ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(अन्वयः) उत्तिष्ठमानः परः पथ्यं इच्छता न उपेक्ष्यः, वर्त्स्यन्तौ आमयः स च शिष्टैः समौ आम्नातौ ॥ १० ॥

(सुबोधिनी) उत्तिष्ठमानः (वर्धमानः) परः (शत्रुः) पथ्यं (हितं) इच्छता (अभिलषता जनेन) न उपेक्ष्यः (न त्याज्यः, औदासीन्येन न द्रष्टव्य इत्यर्थः) हि (यतः) वर्त्स्यन्तौ (वर्धिष्यमाणौ) आमयः (व्याधिः) स च (शत्रुश्च) शिष्टैः (नीतिज्ञैः) समौ (समानौ) आम्नातौ (कथितौ)॥

(कोषः) रोगव्याधिगदामयाः, इत्यमरः ॥ १० ॥

(व्याकरणम्) उत्तिष्ठमानः = उत्तिष्ठते इत्युत्तिष्ठमानः = उद्+स्था+शानच्। पथ्यं = पथात् अनपेतं पथ्यं = पथिन्+यत्। उपेक्ष्यः = उपेक्षितुं योग्यः उपेक्ष्यः+उप+ईक्ष्+यत्। आम्नातौ = आ+म्ना+क्त, वर्त्स्यन्तौ = वृध्+लृटः स्थाने शतृ ॥ १० ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्)……..इच्छन् उत्तिष्ठमानं परं नोपेक्षेत….. ….आमयं तं च शिष्टाः समौ आम्नातवन्तः ॥ १० ॥

(सरलार्थः) यज्ञान्ते जैत्रयात्रा कृता सती उभयमपि कार्यं सिध्येदिति न मन्तव्यं—उपेक्षिते मयि वर्धमानः शत्रुः शिशुपालः असाध्य एव जायेत। वर्धिष्यमाणः रोगः शत्रुश्च कदापि नोपेक्ष्यः ॥ १० ॥

(भावार्थ) शत्रुकी उपेक्षा करना उचित नहीं है क्योंकि बढ़ता हुआ रोग और शत्रु इनको विद्वानोंने बराबर कहा है ॥ १० ॥

न दूये सात्वतीसूनुर्यन्मह्यमपराध्यति।
यत्तु दन्दह्यते लोकमदो दुःखाकरोति माम् ॥ ११ ॥

(अन्वयः) सात्वतीसूनुः मह्यं अपराध्यति यत् (ततः) न दूये। तु लोकं दन्दह्यते (इति, यत्) अदः मां दुःखाकरोति ॥ ११ ॥

LIBRARY, Jangamwadi Math, VARANASI, Acc. No. 2274

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(सुबोधिनी) सात्वतीसूनुः (शिशुपालः) यत् मह्यं अपराध्यति (मां द्वेष्टि) ततः, न दूये (न परितप्ये) तु (किन्तु) लोकं (संसारं) दन्दह्यते (अतिशयेन दहति) इति यत् , अदः (लोकदहनं) मां, दुःखाकरोति (दुःखमनुभावयति) ॥११॥

(समासः) सात्वतीसूनुः = सात्वत्याः सूनुः सात्वतीसूनुः ॥११॥

(कोषः) आत्मजस्तनयः सूनुः सुतः पुत्रः स्त्रियां त्वमीत्यमरः ।११।

(व्याकरणम्) दूये = दू+लट् = ए । अपराध्यति = अप+राध+लट्+तिप् । दुःखाकरोति = दुःख+डाच्+कृ + लट् + तिप् ॥

(वाच्यान्तरम्) सात्वतीसूनुना अपराध्यते अतो न दूयते यत्तु लोकः दन्दह्यते अमुना अहं दुःखाक्रियै ॥ ११ ॥

(सरलार्थः) चैद्यः मां द्रुह्यति अतो मे न विषादः, किन्त्वयं लोकं पीड़यतीत्यवश्यमेवायं प्रेतसदनम्प्रापयितव्यः ॥ ११ ॥

(भाषार्थ) शिशुपाल हमसे द्वेष करता है इसका हमें तनिक भी दुःख नहीं है परन्तु वह सारे संसारको सता रहा है यही मुझे विशेष दुखदायी है ॥ ११ ॥

मम तावन्मतमिदं श्रूयतामङ्ग वामपि ।
ज्ञातसारोऽपि खल्वेकः सन्दिग्धे कार्यवस्तुनि ॥१२॥

(अन्वयः) तावत् मम इदं मतं, अङ्ग वाम् अपि श्रूयतां । ज्ञातसारः अपि एकः कार्यवस्तुनि सन्दिग्धे खलु ॥ १२ ॥

(सुबोधिनी) तावत् (भवन्मतश्रवणपर्यन्तं) मम (मे) इदं (अदः) मतं (अभिप्रायः) अङ्ग (भोः) वाम् (युवयोः) अपि, 'मतं' श्रूयतां (तदपि मया श्रोतव्यं), अन्यथा सन्देहानिवृत्तेरितिभावः), ज्ञातसारः (ज्ञाततत्वार्थः) अपि, एकः (एकाकी) कार्यवस्तुनि (कर्तव्यार्थे) सन्दिग्धे (संशेते) खलु ॥ १२ ॥

(समासः) ज्ञातसारः=ज्ञातः सारो येन सः । कार्यवस्तुनि = कार्यं च तद् वस्तु च कार्यवस्तु तस्मिन् ॥ १२ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(कोषः) स्युः प्याट् पाडङ्गहैहेभोः, इत्यमरः ।। १२ ।।

(व्याकरणम्) श्रूयतां = श्रु + लोट् + ताम् । सन्दिग्धे = सम्+दिह्+लट्+ते ।। १२ ।।

(वाच्यपरिवर्तनम्) मतेन अनेन (भूयते)...........वामपि शृणवानि । ज्ञातसारेणापि एकेन कार्यवस्तुनि सन्दिह्यते खलु ।। १२ ।।

(सरलार्थः) उक्तमेतन्मम मतं किन्तु निर्णायकं न हि । युवयोरपि विज्ञेयमतो ब्रूतं निजं मतम् ।। १२ ।।

(भाषार्थः) मैंने अपना मत सुना दिया, अब आपका भी मत हमें सुनना चाहिये, तत्त्वज्ञानी भी यदि अकेला है तो वह वादग्रस्तविषय में ठीक-ठीक निर्णय नहीं कर सकता ॥ १२ ॥

यावदर्थपदां वाचमेवमादाय माधवः ।
विरराम महीयांसः प्रकृत्या मितभाषिणः ।।१३।।

(अन्वयः) माधवः यावदर्थपदां वाचं एवं आदाय विरराम । महीयांसः प्रकृत्या मितभाषिणः (भवन्ति) ॥ १३ ॥

(सुबोधिनी) माधवः (हरिः) यावदर्थपदां (अभिधेयसम्मिताक्षराम्) वाचं (वाणीं) एवं (उक्तप्रकारेण) आदाय (गृहीत्वा, उक्त्वेत्यर्थः) विरराम (तूष्णीम्बभूव)महीयांसः (उत्तमाः) प्रकृत्या (स्वभावेन) मितभाषिणः (स्वल्पभाषिणः) भवन्ति ॥ १३ ॥

(समासः) माधवः = मायाः (लक्ष्म्याः) धवः (पतिः) माधवः, ''धवः प्रियः पतिर्भर्ता'' इत्यमरः, यावदर्थपदां = यावान् अर्थः यावदर्थं, यावदर्थं पदानि यस्यां सा, यावदर्थपदा तां । महीयांसः = अतिशयेन महान्त इति महीयांसः । मितभाषिणः = मितं भाषितुं शीलं एषां ते मितभाषिणः । प्रकृतिः = प्रकृष्टा कृतिरस्याः सा प्रकृतिः ॥१३॥

(कोषः) प्रकृतिर्गुणसाम्ये स्यादमात्यादिस्वभावयोरिति विश्वः।।१३।।

(व्याकरणम्) आदाय = आ+दा+ल्यप् । विरराम = वि+

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

रम्+णल् । महीयांसः = महत्+ईयसुन् । मितभाषिणः = मित+भाष्+णिनि ॥ १३ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) माधवेन........विरेमे । महीयोभिः........मितभाषिभिः (भूयते) ॥ १३ ॥

(सरलार्थः) इत्थं स्वल्पाक्षरैः स्वमतम्प्रकाश्य हरिस्तूष्णीम्बभूव । महतामीदृशी एव कथनसरणिः, यत्ते वृथा बहु न जल्पन्ति ॥ १३ ॥

(भावार्थ) मितभाषी भगवान् श्रीकृष्ण इतना कहकर चुप हो गये बड़े लोग व्यर्थ की बकवाद नहीं किया करते॥१३॥

* ततः सपत्नापनयस्मरणानुशयस्फुरा ।
ओष्ठेन रामो रामौष्ठबिम्बचुम्बनचुञ्चुना ॥ १४ ॥

(अन्वयः) ततः सपत्नापनयस्मरणानुशयस्फुरा रामौष्ठबिम्बचुम्बनचुञ्चुना ओष्ठेन उपलक्षितः रामः जगाद ॥१४॥

(सुबोधिनी) ततः (हरिवचनानन्तरं) सपत्नापनयस्मरणानुशयस्फुरा (शिशुपालदुर्नीतिचिन्तनकृतपश्चात्तापेन स्फुरता) रामौष्ठबिम्बचुम्बनचुञ्चुना (रेवत्या मुखचुम्बनवित्तेन) ओष्ठेन, उपलक्षितः, रामः (बलरामः) जगाद (उवाच)॥ १४ ॥

(समासः) सपत्नापनयस्मरणानुशयस्फुरा=सपत्नस्य (शिशुपालस्य) अपनयाः (अपकाराः) सपत्नापनयाः, तेषां स्मरणं (चिन्तनं) सपत्नापनयस्मरणं तेन "यः" अनुशयः (पश्चात्तापः) सपत्नापनयस्मरणानुशयः, तेन स्फुरतीति सपत्नापनयस्मरणानुशयस्फुः तेन । रामौष्ठबिम्बचुम्बनचुञ्चुना=ओष्ठौ बिम्बं इवेति ओष्ठबिम्बं, रामायाः ओष्ठबिम्बं

---

* इत आरभ्य एकविंशतिमश्लोकपर्यन्तं अष्टभिः, कुलकेन वर्णयतिः—द्वाभ्यां युग्ममिति प्रोक्तं त्रिभिः श्लोकैर्विशेषकम् । कलापकं चतुर्भिः स्यात्तदूर्ध्वं कुलकं स्मृतम् ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

रामौष्ठबिम्बं रामौष्ठबिम्बस्य चुम्बनं रामौष्ठबिम्बचुम्बनं तेन वित्तः रामोष्ठ-बिम्बचुम्बनचुञ्चुः तेन ॥ १५ ॥

(कोषः) भवेदनुशयो द्वेषे पश्चात्तापानुबन्धयोः । रिपौ वैरिसपत्ना-रिद्विषद्द्वेषणदुर्हृदः, इति विश्वामरौ ॥ १४ ॥

(व्याकरणम्) जगाद = गद + लिट् + तिप् + णल् ॥ १४ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्)……रामेण जगदे ॥ १४ ॥

(सरलार्थः) ततः शिशुपालस्य अपकृतिं स्मारं स्मारं रोषकषा-यितनयनो रामः जगाद ॥ १४ ॥

(भाषार्थ) इस तरह श्रीकृष्णके भाषणसे शिशुपालकी दुष्टताका स्मरण होनेपर क्रोधसे फड़क रहे हैं ओष्ठ जिनके ऐसे बलराम बोले ॥ १४ ॥

विवक्षितामर्थविदस्तत्क्षणप्रतिसंहृताम् ।
प्रापयन्पवनव्याधेर्गिरमुत्तरपक्षताम् ॥ १५ ॥

(अन्वयः) विवक्षितां तत्क्षणप्रतिसंहृतां अर्थविदः पवन-व्याधेः गिरं उत्तरपक्षतां प्रापयन् (रामः जगाद) ॥ १५ ॥

(सुबोधिनी) विवक्षितां "वृद्धत्वाभिमानात् अग्रे" (वक्तुमिष्टां) तत्क्षणप्रतिसंहृतां (विवक्षाक्षणे रामानुरोधादनु-रुद्धां) अर्थविदः (कार्यज्ञस्य) पवनव्याधेः (वायुग्रस्तस्य उद्धवस्य) गिरं (वाचं) उत्तरपक्षतां (सिद्धान्तपक्षतां) प्रापयन् (लम्भयन्) (रामो जगाद) ॥ १५ ॥

(समासः) तत्क्षणप्रतिसंहृतां = स एव क्षणः तत्क्षणः, तत्क्षणे प्रतिसंहृता तत्क्षणप्रतिसंहृता तां । अर्थविदः = अर्थं वेत्तीति अर्थवित् तस्य । पवनव्याधेः = पवनः व्याधिः अस्य सः पवनव्याधिः, तस्य । उत्तरपक्षतां = उत्तरः पक्षः उत्तरपक्षः, तस्य भावः उत्तरपक्षता तां ॥ १५ ॥

(व्याकरणम्) विवक्षितां = वि + वच् + सन् + क्त । प्रापयन् = प्र + आप् + णिच् + शतृ ॥ १५ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(वाच्यपरिवर्तनम्)………प्रापयता (रामेण जगदे) ।।१५।।

(सरलार्थः) उद्धवोऽपि विवक्षुरासीत् परं रामं साग्रहं दृष्ट्वा तूष्णीमास । रामश्च उद्धवस्य वचनं अन्ते सिद्धान्तरूपे परिणमयितुं स्वयमेव ततः प्रथमं जगाद ।। १५ ।।

(भाषार्थ) उद्धव इसी विषयपर बलरामके पहले कुछ कहना चाहते थे पर बलरामने सिद्धान्त पक्षमें कहनेका महत्व देकर उन्हें उस समय रोक दिया ॥ १५ ॥

घूर्णयन्मदिरास्वादमदपाटलितद्युती ।
रेवतीवदनोच्छिष्टपरिपूतपुटे दृशौ ।। १६ ।।

(अन्वयः) मदिरास्वादमदपाटलितद्युती, रेवतीवदनोच्छिष्टपरिपूतपुटे दृशौ घूर्णयन् (रामो जगाद) ॥ १६ ॥

(सुबोधिनी) मदिरास्वादमदपाटलितद्युती (मद्यपानमदरक्तीकृतकान्ती) रेवतीवदनोच्छिष्टपरिपूतपुटे* (प्रियाऽऽननोच्छिष्टपवित्रपुटे) दृशौ (नयने) घूर्णयन् (भ्रामयन्) जगाद ॥ १६ ॥

(समासः) मदिरास्वादमदपाटलितद्युती = मदिराया आस्वादः मदिरास्वादः तेन मदः मदिरास्वादमदः, तेन पाटलिता द्युतिः ययोस्ते । रेवतीवदनोच्छिष्टपरिपूतपुटे = रेवत्याः वदनं, रेवतीवदनं, रेवतीवदने यत् उच्छिष्टं (अक्षिचुम्बनसंल्लग्नं ताम्बूलादि) रेवतीवदनोच्छिष्टं तेन परिपूते पुटे ययोः ते ।। १६ ।।

(कोषः) श्वेतरक्तस्तु पाटलः, वक्त्रास्ये वदनं तुण्डमाननं लपनं मुखमित्यमरौ ।। १६ ।।

---

* केलिमन्दिरे रतौ कामिनीनां, मृगयायां शुनाञ्च आननं पवित्रमिति नीतिविदः—"रतिकाले मुखं स्त्रीणां शुद्धमाखेटके शुनाम् ।" अन्यच्च —
गवां पश्चाद् द्विजस्याङ्घ्री योगिनां हृत्कवेर्वचः ।
परं शुचितमं विद्यान्मुखं स्त्रीवन्हिवाजिनाम् ।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(व्याकरणम्) घूर्णयन् घूर्ण + णिच् + शतृ ॥ १६ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) घूर्णयता रामेण (जगदे) ॥ १६ ॥

(सरलार्थः) मदमत्तनयनो रामः नयने घूर्णयन् जगाद ॥ १६ ॥

(भाषार्थः) नेत्र चुम्बनके समय रेवतीके मुख का उच्छिष्ट ताम्बूल आदिके लगनेसे पवित्र और मदिराके पानसे लाल लाल आखोंको घुमाते हुए (बलराम बोले) ॥ १६ ॥

आश्लेषलोलुपवधूस्तनकार्कश्यसाक्षिणीम् ।
म्लापयन्नभिमानोष्णैर्वनमालां मुखानिलैः ॥ १७ ॥

(अन्वयः) आश्लेषलोलुपवधूस्तनकार्कश्यसाक्षिणीं वनमालां, अभिमानोष्णैः मुखानिलैः म्लापयन् (जगाद) ॥ १७ ॥

(सुबोधिनी) आश्लेषलोलुपवधूस्तनकार्कश्यसाक्षिणीं (आलिङ्गनलुब्धवधूकुचकार्कश्योपद्रष्ट्रीं) वनमालां (वन्यस्रजं) अभिमानोष्णैः (अहङ्कारसन्तप्तैः) मुखानिलैः (निश्वासपवनैः) म्लापयन् (ग्लापयन्) जगाद ॥ १७ ॥

(समासः) आश्लेषलोलुपवधूस्तनकार्कश्यसाक्षिणीं—आश्लेषे लोलुपा आश्लेषलोलुपा, सा च असौ वधूः आश्लेषलोलुपवधूः, तस्याः स्तनौ आश्लेषलोलुपवधूस्तनौ, तयोः कार्कश्यं, तस्य साक्षिणी तां। अभिमानोष्णैः=अभिमन्यते इत्यभिमानः, तेन उष्णाः तैः । मुखानिलैः= मुखस्य अनिलाः मुखानिलास्तैः ॥ १७ ॥

(व्याकरणम्) म्लापयन्=म्लै + णिच् + पुक् + शतृ ॥ १७ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) म्लापयता जगदे ॥ १७ ॥

(सरलार्थः) रतौ आलिङ्गनसमये कुचकाठिन्यस्य अनुभवित्री वनमाला क्रोधोष्णेन मुखमारुतेन म्लाना जाता ॥ २७ ॥

(भाषार्थ) आलिङ्गन करने में उत्कण्ठ प्रियाके स्तनोंकी कठिनाईका अनुभव करनेवाली वनमालाको उष्ण निश्वासवायुसे म्लान करते हुए (बलराम बोले) ॥ १७ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दधत्सन्ध्यारुणव्योमस्फुरत्तारानुकारिणीः ।
द्विषद्द्वेषोपरक्तांगसंगिनीः स्वेदविप्रुषः ॥ १८ ॥

(अन्वयः) सन्ध्यारुणव्योमस्फुरत्तारानुकारिणीः द्विषद्द्वेषोपरक्ताङ्गसङ्गिनीः स्वेदविप्रुषः दधत् (रामः जगाद) ॥१८॥

(सुबोधिनी) सन्ध्यारुणव्योमस्फुरत्तारानुकारिणीः (सायङ्कालिकरक्ताकाशे स्फुरन्नक्षत्रानुसारिणीः) द्विषद्द्वेषोपरक्ताङ्गसङ्गिनीः (रिपोः क्रोधेन भृशमुपरक्ताङ्गसंसक्ताः , स्वेदविप्रुषः (घर्मोदबिन्दून्) दधत् (धारयन्) जगाद ॥ १८ ॥

(समासः) सन्ध्या=सम्यक् ध्यायति परमात्मानं अस्यां सा सन्ध्या सन्ध्यायां अरुणं सन्ध्यारुणं, सन्ध्यारुणं व्योम सन्ध्यारुणव्योम, तस्मिन् स्फुरन्त्यश्च ताः ताराश्च सन्ध्यारुणव्योमस्फुरत्ताराः, ताः अनुकुर्वन्ति इति सन्ध्यारुणव्योमस्फुरत्तारानुकारिणीः। द्विषद्द्वेषोपर०=द्विषतां द्वेषः द्विषद्द्वेषः तेन उपरक्तं द्विषद्द्वेषोपरक्तं, तच्च तदङ्गं द्विषद्द्वे० तस्मिन् सङ्गः अस्ति आसां ताः । स्वेदविप्रुषः = स्वेदस्य विप्रुषः ताः ॥ १८ ॥

(कोषः) पृषन्ति बिन्दु पृषताः पुमांसो विप्रुषः स्त्रियाम्, नक्षत्र-मृक्षं भं तारा, इत्यमरौ ॥ १८ ॥

(व्याकरणम्) दधद् = धा + शतृ ॥ १८ ॥

(वाच्यान्तरम्) दधता रामेण जगदे ॥ १८ ॥

(सरलार्थः) सायंकाले गगने नक्षत्राणीव क्रोधरक्ते तस्य शरीरे, घर्मबिन्दवः शुशुभिरे ॥ १८ ॥

(भाषार्थ) सन्ध्या समयके लाल आकाशमें चमकते नक्षत्रोंकी तरह शत्रुपर किये क्रोधसे लाल लाल शरीरपर उत्पन्न पसीनेके बिन्दुओंको धारण करता हुआ (बलराम बोला) ॥ १८ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रोल्लसत्कुण्डलप्रोतपद्मरागदलत्विषा । निदर्शनालंकार.
कृष्णोत्तरासंगरुचं विदधच्चौतपल्लवीम् ॥ १६ ॥

(अन्वयः) प्रोल्लसत्कुण्डलप्रोतपद्मरागदलत्विषा कृष्णोत्तरासङ्गरुचं चौतपल्लवीं विदधत् ॥ १६ ॥

(सुबोधिनी) प्रोल्लसत्कुण्डलप्रोतपद्मरागदलत्विषा (उल्लसत्कुण्डलस्यूतमाणिक्यशकलकान्त्या) कृष्णोत्तरासंगरुचं (नीलोत्तरीयकान्ति) चौतपल्लवीं (चूतपल्लववद्धूम्रां) विदधत् (कुर्वन्) जगाद ॥ १६ ॥

(समासः) प्रोल्लसत्कुण्डलप्रोतपद्मरागदलत्विषा=कुण्डलयोः प्रोतानि कुण्डलप्रोतानि, पद्मरागस्य दलानि पद्मरागदलानि, कुण्डलप्रोतानि पद्मरागदलानि कुण्डलप्रोतपद्मरागदलानि, तेषां त्विट् तया । कृष्णोत्तरासङ्गरुचं = उत्तरे ऊर्ध्वभागे आसज्यते इति उत्तरासङ्गः, कृष्णः उत्तरासङ्गः कृष्णोत्तराङ्गसः, तस्य रुक् ताम् । चौतपल्लवीं=चूतस्य पल्लवः चूतपल्लवः तस्य इयं चौतपल्लवी ताम् ॥ १६ ॥

(कोषः) द्वौ प्रावारोत्तरासङ्गौ समौ बृहतिका तथा, संख्यानमुत्तरीयञ्चेत्यमरः ॥ १६ ॥

(व्याकरणम्) विदधत्=वि + धा + शतृ ॥ १६ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) विदधता रामेण जगदे ॥ १६ ॥

(सरलार्थः) बलरामस्य नीलं वसनं कर्णधृतकुण्डलस्थपद्मरागकान्त्या मिलितं सत् चूतपल्लवाभं जातम् ॥ १६ ॥

(भाषार्थः) शोभमान कुण्डलोंमें जड़े हुए मानिकके टुकड़ेकी कान्तिसे नीले रंगके दुपट्टेको आमके पल्लवके समान रंगवाला बनाते हुए (बलराम बोले) ॥ १६ ॥

ककुद्मिकन्यावक्त्रान्तर्वासलब्धाधिवासया । तद्गुण-अ
मुखामोदं मदिरया कृतानुव्याधमुद्वमन् ॥ २० ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(अन्वयः) ककुद्मिकन्यावक्त्रान्तर्वासलब्धाधिवासया । मदिरया कृतानुव्याधं मुखामोदं उद्वमन् रामः जगाद ॥२०॥

(सुबोधिनी) ककुद्मिकन्यावक्त्रान्तर्वासलब्धाधिवासया (रेवतीवदनान्तस्थित्या प्राप्तसौरभातिशयया) मदिरया (सुरया) कृतानुव्याधं (कृतसंसर्गं, प्रियागण्डूषगन्धिनमित्यर्थः) मुखामोदं (निजमुखसौरभं) उद्वमन् (उद्गिरन्) रामः जगाद ॥२०॥

(समासः) ककुद्मि० ककुद्मिनः कन्या ककुद्मिकन्या, तस्या वक्त्रं ककुद्मिकन्यावक्त्रं, तस्य अन्तः ककुद्मिकन्यावक्त्रान्तः, तत्र वासेन लब्धः अधिवासः यया तया । आ समन्तात् मोदन्ते जना अनेन इति आमोदः, मुखस्य आमोदः मुखामोदः तम् । कृतानुव्याधं = कृतः अनुव्याधः अनेन कृतानुव्याधः तं कृतानुव्याधम् ॥ २० ॥

(कोषः) वक्त्रास्ये वदनं तुण्डमाननं लपनं मुखम् इत्यमरः ॥२१॥

(व्याकरणम्) उद्वमन् = उत् + वम् + शतृ ॥ २० ॥

(वाच्यपरिवर्तन) उद्वमता रामेण जगदे ॥ २० ॥

(सरलार्थः) कथनावसरे बलरामस्य मुखात् रेवत्याः प्राक्पीतायाः मदिरायाः सुगन्धो निःससार ॥ २० ॥

(भाषार्थ) रेवती के मुख में स्थित अतएव अत्यन्त सुगन्धित मदिरा से मिले हुए सौगन्ध को बोलने के समय बाहर फैलाते हुए (बलराम बोले) ॥ २० ॥

जगाद वदनच्छद्मपद्मपर्यन्तपातिनः ।
नयन्मधुलिहः श्वैत्यमुदग्रदशनांशुभिः ॥ २१ ॥

(अन्वयः) वदनच्छद्मपद्मपर्यन्तपातिनः मधुलिहः उदग्रदशनांशुभिः, श्वैत्यं नयन् रामः जगाद ॥ २१ ॥

(सबोधिनी) वदनच्छद्मपद्मपर्यन्तपातिनः (मुखकमलप्रान्तसञ्चारिणः) मधुलिहः (भ्रमरान्) उदग्रदशनांशुभिः

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(उच्छृतदन्तकिरणैः) श्वैत्यं (धवलिमानं) नयन् (प्रापयन्) रामः, जगाद ॥ २१ ॥

(समासः) वदनं छद्म यस्य तत् वदनच्छद्म, तदेव पद्मं वदनच्छद्म पद्मं तस्य पर्यन्तः वदनच्छद्मपद्मपर्यन्तः, तस्मिन् साधु पतन्ति इति वदन-च्छद्मपद्मपर्यन्तपातिनः। मधुलिहः=मधु लिहन्ति इति मधुलिहः। उदग्र-दशनांशुभिः=उद्गतानि अग्राणि एषां ते उदग्राः, दशनानां अंशवः, दशनांशवः, उदग्राः दशनांशवः ऊदग्रदशनांशवः तैः ॥ २१ ॥

(व्याकरणम्) श्वैत्यम्=श्वेतस्य भाव इति श्वेत + ष्यञ् (भावे)। नयन्=नी + शतृ ॥ २१ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) नयता रामेण जगदे ॥ २१ ॥

(सरलार्थः) तस्मिन् समये मदिरागन्धेन कमलभ्रान्त्या तन्मुखस्य समन्तत उड्डीयमानाः भ्रमराः तस्य दशनप्रभया शुभ्रा जाताः ॥ २१ ॥

(भावार्थ) मुखकमलके चारो ओर उडनेवाले भौंरोंको अपने दांतकी कान्तिसे सफेद करते हुए बलराम बोले ॥ २१ ॥

यद्वासुदेवेनादीनमनादीनवमीरितम् ।

वचसस्तस्य सपदि क्रिया केवलमुत्तरम् ॥ २२ ॥

(अन्वयः) वासुदेवेन अदीनं अनादीनवं यत् ईरितं तस्य वचसः सपदि क्रिया केवलं उत्तरम् ॥ २२ ॥

(सुबोधिनी) वासुदेवेन (कृष्णेन) अदीनं (अकातरं) अनादीनवं (दोषरहितं) यत् (उत्तिष्ठमानस्तु परो नोपेक्ष्यः पथ्यमिच्छता" इत्यादि वचः) ईरितं (कथितं) तस्य वचसः (उक्तवाक्यस्य) सपदि (सद्यः) क्रिया (अनुष्ठानं) एव, केवलं उत्तरं (समाधानम्) ॥ २२ ॥

(समासः) वासुदेवेन = वसुदेवस्य अपत्यं पुमान् वासुदेवः तेन।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अदीनं=न दीनं अदीनं । अनादीनवं = आदीनं यथा तथा वाति सर्वतो वहति इति आदीनवः, अविद्यमानः आदीनवः अस्मिन् तत् अनादीनवम् ॥

(कोषः) दोष आदीनवो मतः, इत्यमरः ॥ २२ ॥

(व्याकरणम्) आदीनं = न + दी + क्त । ईरितं=ईर + णिच् + क्त ॥ २२ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) वासुदेवः ईरितवान्........क्रियया केवलेन उत्तरेण (भूयते) ॥ २२ ॥

(सरलार्थः) कृष्णस्य वचनं उर्जस्वलं, दोषरहितञ्च । तत्र विचारस्यावसर एव नास्ति । तदधुना अविम्बेन विधेयमेव ॥ २२ ॥

(भाषार्थ) श्रीकृष्ण का वचन अत्यन्त शानदार और निर्दुष्ट है, अब इसका उत्तर ही यही है कि वह कार्य में परिणत किया जाय ॥ २२ ॥

नैतल्लघ्वपि भूयस्या वचो वाचातिशय्यते ।
इन्धनौघधगप्यग्निस्त्विषा नात्येति पूषणम् ॥ २३ ॥

(अन्वयः) लघु अपि एतत् वचः भूयस्या वाचा न अतिशय्यते इन्धनौघधक् अपि अग्निः त्विषा पूषणं न अत्येति ॥२३॥

(सुबोधिनी) लघु (संक्षिप्तं) अपि, एतत् (इदं) वचः (वचनं) भूयस्या (अधिकतरया) वाचा (वाण्या) न अतिशय्यते (नातिरिच्यते) तथाहि-इन्धनौघधक् (काष्ठराशिदाहकः) अपि, अग्निः (वन्हिः) त्विषा (कान्त्या) पूषणं (सूर्यं) न अत्येति (न अतिक्रामति) ॥ २३ ॥

(समासः) इन्धनौघधक्=इन्ध्यते एभिः इति इन्धनानि, इन्धनानां ओघः इन्धनौघः, तं दहतीति इन्धनौघधक् ॥ २३ ॥

(व्याकरणम्) अत्येति=अति + इ + लट् + तिप् ॥ २३ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्)......भूयसी वाक् न अतिशेते । इन्धनौघदहा अग्निना ......पूषा न अतीयते ॥ २३ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(सरलार्थः) परिमितवक्तुः अस्य अतिसंक्षिप्तं सदपि तात्पर्यपूर्णं वचः अस्माकमतिप्रपञ्चि तयाऽपि वाचा खण्डयितुं न शक्यते ॥२३॥

(भावार्थ) श्रीकृष्णका संक्षिप्त भी वचन लम्बी चौड़ी बातोंसे काटा नहीं जा सकता। लकड़ीकी टालको भस्म करने वाला भी अग्नि तेजसे सूर्यको दबा नहीं सकता ॥ २३ ॥

संक्षिप्तस्याप्यतोऽस्यैव वाक्यस्यार्थगरीयसः ।
सुविस्तरतरावाचो भाष्यभूता भवन्तु मे ॥ २४ ॥

(अन्वयः) अतः सुविस्तरा: मे वाचः सङ्क्षिप्तस्य अपि अर्थगरीयसः अस्य एव वाक्स्यय भाष्यभूता भवन्तु ॥२४॥

(सुबोधिनी) अतः (अस्मात्कारणात्) सुविस्तरतराः (प्रपञ्चिताः) मे (मम) वाचः (वचांसि) सङ्क्षिप्तस्य (अल्पाक्षरस्य) अपि, अर्थगरीयसः (सारगर्भस्य, *सूत्रकल्पस्येत्यर्थः) (अस्य वाक्यस्य) एव, भाष्यभूताः (भाष्यसमाः, व्याख्यानरूपा इत्यर्थः) भवन्तु ॥ २४ ॥

(समासः) सुविस्तरतराः=सुष्टु विस्तरः यस्याः सा सुविस्तरा, अतिशयेन सुविस्तरा इति सुविस्तरतरा । अर्थगरीयसः=अतिशयेन गुरु इति गरीयः, अर्थेन गरीयः अर्थगरीयः तस्य । भाष्यभूताः=भाष्येण तुल्याः भाष्यभूताः ॥ २४ ॥

(व्याकरणम्) संक्षिप्तस्य=सम्+क्षिप्+क्त । भवन्तु=भू+लोट्+झि ॥ २४ ॥

(वाच्यपरिवर्त्तनम्)·······सुविस्तरतराभिः मे वाग्भिः·······भाष्यभूताभिः भूयताम् ॥ २४ ॥

---

* अल्पाक्षरमसन्दिग्धं सारवद्विश्वतो मुखम् । अस्तोभमनवद्यञ्च सूत्रं सूत्रविदो विदुः ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(सरलार्थः) संक्षिप्तत्वात् अर्थगौरवाच्च सर्वे यथावत् हरेः वचांसि ज्ञातुं न शक्ष्यन्ति, अतः भाष्यस्य व्याख्यानरूपमिव तानि अहं विवृणोमि ।।

(भाषार्थः) इसलिये अत्यन्त विस्तृत मेरी वाणी, अति संक्षिप्त पर अर्थ गम्भीर श्रीकृष्णके वाक्यका भाष्य बने ॥ २४ ॥

विरोधिवचसो मूकान्वागीशानपि कुर्वते ।
जड़ानप्यनुलोमार्थान्प्रवाचः कृतिनां गिरः ॥ २५ ॥

(अन्वयः) कृतिनां गिरः विरोधिवचसः वागीशान् अपि मूकान्, अनुलोमार्थान् जड़ान् अपि, प्रवाचः कुर्वते ॥२५॥

(सुबोधिनी) कृतिनां (कुशलानां) गिरः (वचांसि) विरोधिवचसः (प्रतिकूलवादिनः) वागीशान् (वाक्पतीन्) अपि, मूकान् (वाग्रहितान्, निर्वाच इत्यर्थः, कुर्वते) अनुलोमार्थान् (अनुकूलभाषमाणान्) जड़ान् (मन्दान्) अपि, प्रवाचः (प्रगल्भवाचः) कुर्वते (विदधति) ॥ २५ ॥

(समासः) विरोधिवचसः=विरोद्धुं शीलं एषां तानि विरोधीनि, विरोधीनि वचांसि एषां ते विरोधिवचसः तान्। वागीशान्=वाचां ईशा वागीशास्तान्। अनुलोमार्थान्=अनुलोमः=अर्थः एषां तान्। प्रवाचः=प्रकृष्टा वाक् एषां तान् प्रवाचः। कृती=कृतमनेनेति कृती, तेषाम् ।। २५ ।।

(कोषः) वागीशो वाक्पतिः समावित्यमरः ।। २५ ।।

(व्याकरणम्) कुर्वते=कृ+लट्+अन्ते ।। २५ ।।

(वाच्यपरिवर्त्तनम्)..........गीर्भिः, ...विरोधिवचसः वागीशाः अपि मूकाः, अनुलोमार्थाः जडाः अपि प्रवाचः क्रियन्ते ।।२५।।

(सरलार्थः) कृतिनां गिरः केन खण्ड्यन्ताम्। ता एव विवृण्वन् जडोऽपि प्रज्ञायते। तन्नायं मम निन्द्यो यत्नः ।। २५ ।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(भावार्थ) अच्छा वक्ता अपनी वाणी से प्रतिपक्षी बृहस्पतिको भी चुप करा सकता है और अपने पक्षके मन्द-मति वालोंको प्रौढ वक्ता बना सकता है ॥ २५ ॥

षड्गुणाः शक्तयस्तिस्रः सिद्धयश्चोदयास्त्रयः।
ग्रन्थानधीत्य व्याकर्तुमिति दुर्मेधसोऽप्यलम् ॥ २६ ॥

(अन्वयः) दुर्मेधसः अपि ग्रन्थान् अधीत्य गुणाः षट्, शक्तयः तिस्रः, सिद्धयः च उदयाः त्रयः, इति व्याकर्तुं अलम् ॥ २६ ॥

(सुबोधिनी) दुर्मेधसः (मन्दबुद्धयः) अपि, ग्रथान् औशनसादीनि नीतिपुस्तकानि) अधीत्य (पठित्वा) गुणाः सन्धिविग्रहयानासनद्वैधीभावसमाश्रयाख्याः) षट् (षट् संख्य-काः) शक्तयः (प्रभुमन्त्रोत्साहाख्याः) तिस्रः, सिद्धयः (पूर्वोक्तशक्तित्रयसाध्याः, पुरुषार्थलाभात्मिकाः प्रभुसिद्धि-मन्त्रसिद्धिरुत्साहसिद्ध्याख्याः) उदयाः (वृद्धित्रयस्थानानि) इति व्याकर्तुं (व्याख्यातुं) अलं (समर्थाः) ॥ २६ ॥

(समासः) दुर्मेधसः=दुष्टा मेधा एषां ते दुर्मेधसः। शक्तयः= शक्यते आभिरिति शक्तयः ॥ २६ ॥

(कोषः) सन्धिर्ना विग्रहो यानमासनं द्वैधमाश्रयः। षड् गुणाः शक्तयस्तिस्रः प्रभावोत्साहमन्त्रजा इत्यमरः ॥ २६ ॥

(व्याकरणम्) सिद्धयः=सिध+क्तिन्। उदयाः=उद् + इ +अच् (भावे) अधीत्य=अधि + इ + ल्यप्। व्याकर्तुं=वि+आ + कृ+तुमुन् ॥ २६ ॥

(वाच्यपरिवर्त्तनम्) दुर्मेधोभिः........गुणैः षड्भिः....शक्तिभिः तिसृभिः सिद्धिभिः उदयैश्च त्रिभिः व्याकर्तुं अलं भूयते ॥ २६ ॥

(सरलार्थः) मूर्खा अपि नीतिग्रन्थानधीत्य गुणाः षट्, शक्तयः

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तिस्रः इत्यादि व्याख्यातुं समर्था एव, परन्तु ये तदनुसारं प्रयोगमपि जानन्ति त एव पण्डिताः ।। २६ ।।

(भावार्थ) जड़मति भी नीति ग्रन्थोंको रट कर गुण ६ होते हैं, शक्तियां ३ होती है, सिद्धियां ३ होती हैं आदि मोटी २ बातोंकी व्याख्या कर सकते हैं, परन्तु उसके तत्वको जानना और उसे कार्यमें परिणत करना बहुत कठिन है ॥ २६ ॥

अनिर्लोडितकार्यस्य वाग्जालं वाग्मिनो वृथा ।
निमित्तादपराद्धेषोर्धानुष्कस्येव वल्गितम् ।। २७ ।।

(अन्वयः) अनिर्लोडितकार्यस्य वाग्मिनः वाग्जालं, निमित्तात् अपराद्धेषोः धानुष्कस्य वल्गितं इव वृथा ॥२७॥

(सुबोधिनी) अनिर्लोडितकार्यस्य (अनालोचितकार्यस्य, कार्याकार्यमजानतः) वाग्मिनः (वावदूकस्य) वाग्जालं (वागाडम्बरः) निमित्तात् (लक्ष्यात्) * अपराद्धेषोः (स्खलितवाणस्य) धानुष्कस्य (धनुर्धारिणः) वल्गितं (आत्मविकत्थनं) इव, वृथा (निष्फलम्) ॥ २७ ॥

(समासः) अनिर्लोडितकार्यस्य=निर्लोडितं कार्यमनेनेति निर्लोडित-कार्यः, न निर्लोडितकार्यः अनिर्लोडितकार्यः तस्य । वाग्जालं=वाचां जालं वाग्जालं । अपराद्धेषोः=अपराद्धः इषुः अस्य अपराद्धेषुः तस्य । धानुष्कस्य=धनुः प्रहरणमस्य इति धानुष्कः तस्य ।। २७ ।।

(कोषः) अपराद्धपृषत्कोऽसौ लक्ष्याद्यश्च्युतसायक इत्यमरः ।।२७।।

(व्याकरणम्) वल्गितं=वल्ग+क्त । वाग्मि=वाच्+ग्मिनिं ।

(वाच्यपरिवर्त्तनम्) ....वाग्जालेन........वल्गितेन........ (भूयते) ।। २७ ।।

(सरलार्थः) ये च प्रयोक्तुमसमर्थाः, किङ्कार्यं किमकार्यमिति

---

* अपराद्धपृषत्कोऽसौ लक्ष्याद्यश्च्युतसायकः ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यथावन्न जानन्ति तेषां शास्त्रज्ञानं, लक्ष्यात् प्रभ्रष्टशरस्य धनुर्धारिणः आत्मस्तुतिरिव निष्फलम् ।। २७ ।।

(भाषार्थ) कर्त्तव्य और अकर्त्तव्यको न जाननेवाले वक्ताकी बातें व्यर्थ सी होती हैं, जैसे लक्ष्यसे चूके हुए बाणवाले धनुर्धारीकी सूखी डींग बघारना ॥ २७ ॥

सर्वकार्यशरीरेषु मुक्त्वाङ्गस्कन्धपञ्चकम् ।
सौगतानामिवात्मान्यो नास्ति मंत्रो महीभृताम् ॥२८॥

(अन्वयः) सर्वकार्यशरीरेषु अङ्गस्कन्धपञ्चकं मुक्त्वा सौगतानां आत्मा इव महीभृतां अन्यः मन्त्रः नास्ति ॥ २८ ॥

(सुबोधिनी) सर्वकार्यशरीरेषु (शरीरेषु इव सकलसन्धिविग्रहादिकार्येषु) अङ्गस्कन्धपञ्चकं (स्कन्धपञ्चकमिव-अङ्गपञ्चकं) मुक्त्वा (त्यक्त्वा) सौगतानां (बौद्धानां) आत्मा इव (क्षेत्रज्ञ इव) महीभृतां (राज्ञां) अन्यः (अङ्गपञ्चकातिरिक्तः) मन्त्रः (उपायः) नास्ति ॥ २८ ॥

(समासः) सर्वकार्यशरीरेषु=सर्वाणि कार्याणि सर्वकार्याणि, सर्वकार्याणि शरीराणि इव इति सर्वकार्यशरीराणि तेषु । अङ्गस्कन्धपञ्चकं= पञ्च एव इति पञ्चकं, अङ्गानि स्कन्धा इव इत्यङ्गस्कन्धाः, तेषां पञ्चकं अङ्गस्कन्धपञ्चकं । सौगतानां=सुगतः (भक्तिः, पूजापात्रं) एषां इति सौगताः तेषां । महीभृतां=महीं बिभ्रति इति महीभृतः तेषां ।। २८ ।।

(कोषः) सहायाः साधनोपाया विभागो देशकालयोः विपत्तेश्च प्रतीकारः सिद्धिः पञ्चाङ्गमिष्यते । इतिकामन्दकः ।। २८ ।।

(व्याकरणम्) अस्ति=अस्+लट्+ति ।। २८ ।।

(वाच्यपरिवर्त्तनम्)........आत्मना अन्येन मन्त्रेण न भूयते ।।

(सरलार्थः) यथा बौद्धानां शरीरेषु * स्कन्धपञ्चकेभ्य अतिरिक्त

* रूपवेदनाविज्ञानसंज्ञासंस्काराः पञ्च स्कन्धाः । तत्र विषयप्रपञ्चः

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आत्मा नास्ति तथैव भूपतीनां अपि सहायाद्यङ्गपञ्चकभिन्नः कश्चन मन्त्रः न विद्यते ॥ २८ ॥

(भावार्थ) जैसे बौद्धोंके यहाँ रूपादि पांच स्कन्धोंके अतिरिक्त आत्मा कोई दूसरी वस्तु नहीं है उसी तरह राजाओंके यहां भी पांच अङ्गोंके अतिरिक्त, मंत्र कोई दूसरी वस्तु नहीं है ॥ २८ ॥

मंत्रो योध इवाधीरः सर्वाङ्गैः संवृतैरपि ।
चिरं न सहते स्थातुं परेभ्यो भेदशङ्कया ॥ २९ ॥

(अन्वयः) संवृतैः अपि सर्वाङ्गैः (उपलक्षितः) मन्त्रः, अधीरः योधः इव परेभ्यः भेदशङ्कया चिरं स्थातुं न सहते ॥

(सुबोधिनी) संवृतैः (गुप्तैः) सर्वाङ्गैः (पूर्वोक्तैः सहायादिभिः) (उपलक्षितः) "सर्वतोभावेन गोपितः अपि" मन्त्रः (विचारः) अधीरः (कातरः) योधः (भटः) इव, परेभ्यः (शत्रुभ्यः) भेदशङ्कया मन्त्रस्फोटभिया) चिरं, (बहुकालं) स्थातुं (वर्तितुं) न सहते (न क्षमते) ॥ २९ ॥

पक्षे :—

संवृतैः (गुप्तैः) सर्वाङ्गैः (उरस्थलादिभिः) उपलक्षितः, कवचादिना सर्वाङ्गसंरक्षितोऽपीत्यर्थः, अधीरः (कातरः) योधः (भटः) परेभ्यः (शत्रुभ्यः) भेदशङ्कया (निजनाशभिया) चिरं स्थातुं न सहते (रणे चिरकालं न तिष्ठति, ततः क्षिप्रं पलायत इत्यर्थः) ॥ २९ ॥

(समासः) सर्वाङ्गैः=सर्वाणि अङ्गानि सर्वाङ्गानि तैः । भेदशङ्कया =भेदस्य शङ्का भेदशङ्का तया, अधीरः=न धीरः अधीरः ॥ २९ ॥

(कोषः) भटा योधाश्च योद्धार इत्यमरः ॥ २९ ॥

रूपस्कन्धः । तज्ज्ञानप्रपञ्चः वेदनास्कन्धः । आलयविज्ञानसन्तानो विज्ञानस्कन्धः । नामप्रपञ्चः संज्ञास्कन्धः । वासनाप्रपञ्चः संस्कारस्कन्धः ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(व्याकरणम्) योधः=युध्यते इति योधः=युध + अच्। स्थातुं =स्था + तुमुन्। सहते=सह+लट्+ते ॥ २९ ॥

(वाच्यपरिवर्त्तनम्) मन्त्रेण अधीरेण योधेन···सह्यते ॥२९॥

(सरलार्थः) मन्त्रः निश्चयानन्तरं सद्य एव अनुष्ठेयः, अन्यथा स भिद्येत ॥ २९ ॥

(भाषार्थ) जैसे लोहेके कवचसे सर्वांगको बचाता हुआ भी योधा शत्रुके प्रहारकी भीतिसे देर तक रणभूमिमें नहीं ठहर सकता उसी तरह उपायादि पांचों अंगोंसे सुरक्षित भी मन्त्र (सलाह) बहुत देर तक गुप्त नहीं रह सकता, उसका प्रकाशहो ही जाता है ॥ २९ ॥

आत्मोदयः परज्यानिर्द्वयं नीतिरितीयती ।
तदूरीकृत्य कृतभिर्वाचस्पत्यं प्रतायते ॥ ३० ॥

(अन्वयः) आत्मोदयः परज्यानिः इति द्वयं, इयती नीतिः, तत् ऊरीकृत्य कृतिभिः वाचस्पत्यं प्रतायते ॥ ३० ॥

(सुबोधिनी) आत्मोदयः (स्वस्य अभिवृद्धिः) परज्यानिः (शत्रोर्हानिः) इति द्वयं (आत्मनोऽभ्युदयः, शत्रोर्नाशश्चेतिद्वयं) इयती (एतावती) नीतिः (नयः) तद्द्वयं (स्वपराभ्युदयहानिरूपं द्वितयं) ऊरीकृत्य (अङ्गीकृत्य) कृतिभिः (कुशलैः) वाचस्पत्यं (वाग्मित्वं) प्रतायते (विस्तार्यते) ॥ ३० ॥

(समासः) आत्मोदयः=आत्मनः उदयः आत्मोदयः। परज्यानिः =परस्य ज्यानिः परज्यानिः। इयती=इदं परिमाणं अस्या इति इयती। वाचस्पत्यं=वाचस्पतेर्भावः वाचस्पत्यम्। द्वयं=द्वौ अवयवौ अस्य इति द्वयम् ॥ ३० ॥

(कोष) ऊरीकृतमुररीकृतमङ्गीकृतमाश्रुतं प्रतिज्ञातम्, कृती कुशल इत्यपीत्यमरौ ॥ ३० ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(व्याकरणम्) ऊरीकृत्य=ऊरी+कृ+ल्यप्। प्रतायते=प्र+तन्+लट्+ते ॥ ३० ॥

(वाच्यपरिवर्त्तनम्) द्वयेन (भूयते)। इयत्या नीत्या भूयते··· प्रतन्वन्ति ॥ ३० ॥

(सरलार्थः) आत्मनः अभ्युदयः शत्रोर्हानिरिति द्वितयमेव नीतेर्मूलम्, एतदाश्रय एव नीतितत्वविदुषां वाक्प्रञ्चः ॥ ३० ॥

(भाषार्थ) नीति वही है जिसमें अपना अभ्युदय और शत्रुकी हानि हो, विद्वान् लोग इसी नीतिको सामने रखकर व्याख्यानादि द्वारा इसे विस्तृत करते हैं ॥ ३० ॥

तृप्तियोगः परेणापि महिम्ना न महात्मनाम्।
पूर्णश्चन्द्रोदयाकाङ्क्षी दृष्टान्तोऽत्र महार्णवः ॥ ३१ ॥

(अन्वयः) महीयसां परेणापि महिम्ना तृप्तियोगः न। अत्र पूर्णः चन्द्रोदयाकाङ्क्षी महार्णवः दृष्टान्तः ॥ ३१ ॥

(सुबोधनी) महात्मनां (महानुभावानां सतां, परेणापि (प्रभूतेनापि) महिम्ना (ऐश्वर्येण) तृप्तियोगः (सन्तोषप्राप्तिः) न, अत्र (तृप्त्यभावे) पूर्णः (परिपूर्णः) अपि, चन्द्रोदयाकाङ्क्षी (चन्द्रोदयाभिलाषी) महार्णवः (महोदधिः) एव, दृष्टान्तः (निदर्शनम्) ॥ ३१ ॥

(समासः) महिम्ना=महतो भावः महिमा तेन। तृप्तियोगः=तृप्तेः योगः तृप्तियोगः। चन्द्रोदयाकांक्षी=चन्द्रस्य उदयः चन्द्रोदयः, तं आकाङ्क्षत इति चन्द्रोदयाकाङ्क्षी। महार्णवः—अर्णांनि (जलानि) सन्ति अस्मिन् इति अर्णवः, महान् अर्णवः महार्णवः। दृष्टान्तः=दृष्टः अन्तः (निश्चयः) अस्मिन् इति दृष्टान्तः। महान् आत्मा येषान्ते महात्मानः तेषाम् ॥ ३१ ॥

(व्याकरणम्) महिम्ना=महत्+इमनिच् ॥ ३१ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(वाच्यपरिवर्त्तनम्)......तृप्तियोगेन न (भूयते)।........पूर्णेन........काङ्क्षिणा महार्णवेन दृष्टान्तेन भूयते ॥ ३१ ॥

(सरलार्थः) "असन्तुष्टा द्विजा नष्टाः सन्तुष्टाः पार्थिवा इव" इति न्यायात् राज्ञा अभ्युदये अलं बुद्धिर्न कार्या। यतः परिपूर्णः अपि महार्णवः पुनरपि स्वाभ्युदयार्थं चन्द्रोदयमपेक्षत एव ॥ ३१ ॥

(भाषार्थ) राजाओंको अभ्युदयमें कभी सन्तोष नहीं करना चाहिये। इसमें दृष्टान्त रत्नाकर है—वह रत्नोंसे परिपूर्ण होने पर भी अपनी वृद्धिके लिये चन्द्रोदयको चाहता ही है ॥ ३१ ॥

सम्पदा सुस्थिरम्मन्यो भवति स्वल्पयाऽपि यः।
कृतकृत्यो विधिर्मन्ये न वर्धयति तस्य ताम् ॥ ३२ ॥

(अन्वयः) यः स्वल्पया अपि सम्पदा सुस्थिरम्मन्यः भवति। कृतकृत्यः विधिः तस्य तां, न वर्धयति इति मन्ये ॥३२॥

(सुबोधिनी) यः (जनः) स्वल्पया (अतिन्यूनया) अपि, सम्पदा (सम्पत्त्या) सुस्थिरंमन्यः (स्वस्थमानी) भवति, कृतकृत्यः (कृतार्थः) विधिः (दैवं) तस्य (जनस्य) तां (सम्पदं) न वर्धयति (न विस्तारयति) इति (इत्थं) मन्ये (तर्कयामि) ॥ ३२ ॥

(समासः) सुस्थिरंमन्यः=सुस्थिरं आत्मानं मन्यते इति सुस्थिरम्मन्यः। कृतकृत्यः=कृतं कृत्यं अनेन इति कृतकृत्यः ॥ ३२ ॥

(कोषः) दैवं दिष्टं भागधेयं भाग्यं स्त्री नियतिर्विधिः, इत्यमरः ॥३२॥

(व्याकरणम्) मन्ये=मन्+लट्+ए। वर्धयति=वृध+णिच्+लट्+तिप् ॥ ३२ ॥

(वाच्यान्तरम्) येन....सुस्थिरम्मन्येन भूयते....। कृतकृत्येन विधिना तस्य सा न वर्ध्यते इति मन्यते ॥ ३२ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(सरलार्थः) यः अत्यल्पया अपि सम्पदा आत्मानं कृतकृत्यं मन्यते । कृतार्थो विधिः तस्य सम्पदं न वर्धयति ।। ३२ ।।

(भाषार्थ) जो विद्वान् नाम मात्र ही सम्पत्ति प्राप्त कर सन्तुष्ट हो जाता है, उसका दैव भी उसकी इच्छानुसार ही अपनेको कृतार्थ समझ लेता है और फिर उसकी सम्पत्ति बढ़ाता नहीं ॥ ३२ ॥

समूलघातमघ्नन्तः परान्नोद्यन्ति मानिनः ।
प्रध्वंसितान्धतमसस्तत्रोदाहरणं रविः ।। ३३ ।।

(अन्वयः) मानिनः परान् समूलघातं अघ्नन्तः न उद्यन्ति । तत्र प्रध्वंसितान्धतमसः रविः उदाहरणम् ॥ ३३ ॥

(सुबोधिनी) मानिनः (अभिमानिनः) परान् (शत्रून्) समूलघातं, अघ्नन्तः (समूलमनुन्मूलयन्तः) न उद्यन्ति (उदयं न लभन्ते) तत्र (हत्वैव उदये) प्रध्वंसितान्धतमसः (विध्वंसितगाढान्धकारः) रविः (सूर्यः) उदाहरणं (दृष्टान्तः) ॥ ३३ ॥

(समासः) समूलघातं=मूलेन सह समूलं, समूलं हत्वा इति समूलघातम् । अघ्नन्तः=न घ्नन्त इत्यघ्नन्तः । मानिनः=मानः अस्ति एषां इति मानिनः । प्रध्वंसितान्धतमसः=अन्धं तम इति अन्धतमसं, प्रध्वंसितं अन्धतमसं अनेन इति प्रध्वंसितान्धतमसः । उदाहरणं=उदाह्रियत अनेन इति उदाहरणम् ।। ३३ ।।

(कोषः) ध्वान्ते गाढेऽन्धतमसम्, इत्यमरः ।। ३३ ।।

(व्याकरणम्) उद्यन्ति=उद्=इ + झि । उदाहरणं+उद्+आ+हृ+ल्युट् ॥ ३३ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) मानिभिः अघ्नद्भिः न उदीयते तमसेन रविणा उदाहरणेन (भूयते) ।। ३३ ।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(सरलार्थः) यथा रविः तिमिराणि अनुच्छिद्य न उदेति तथैव मानी अपि शत्रूननुन्मूल्य कृतकृत्यो न भवति ॥ ३३ ॥

(भाषार्थ) आत्माभिमानी लोग शत्रुओंका समूल नाश किये विना अभ्युदय प्राप्त नहीं करते। इसमें उदाहरण सूर्य है, जो अन्धकारका समूल नाश किये विना उदित नहीं होता ॥ ३३ ॥

विपक्षमखिलीकृत्य प्रतिष्ठा खलु दुर्लभा।
अनीत्वा पङ्कतां धूलिमुदकं नावतिष्ठते ॥ ३४ ॥

(अन्वयः) विपक्षं अखिलीकृत्य प्रतिष्ठा दुर्लभा खलु। उदकं धूलिं पङ्कतां अनीत्वा न अवतिष्ठते ॥ ३४ ॥

(सुबोधिनी) विपक्षं (रिपुं) अखिलीकृत्य (अनुन्मूल्य) प्रतिष्ठा (समादरः) दुर्लभा (दुष्प्रापा) खलु, उदकं (जलं) धूलिं (रजः) पङ्कतां (कदर्मत्वं) अनीत्वा (अप्राप्य) नाधः कृत्य, इत्यर्थः, न अवतिष्ठते (न तिष्ठति) ॥ ३४ ॥

(समासः) विपक्षं=विरुद्धः पक्षः अस्य विपक्षः तम्। अखिलीकृत्य=अखिलं खिलं सम्पद्यमानं कृत्वा इति अखिलीकृत्य। दुर्लभा=दुःखेन लभ्यत इति दुर्लभा ॥ ३४ ॥

(कोषः) रेणुर्द्वयोः स्त्रियां धूलिः पांसुर्ना न द्वयोः रजः, इत्यमरः ॥ ३४ ॥

(व्याकरणम्) प्रतिष्ठा=प्रति+स्था+अङ्। अवतिष्ठते=अव+स्था+लट् ते ॥ ३४ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्)....तिष्ठया दुर्लभया (भूयते) उदकेन.... अवस्थायते ॥ ३४ ॥

(सरलार्थः) शत्रौ अनुच्छिन्ने आत्मनः प्रतिष्ठा सर्वथैव दुर्लभा ॥

(भाषार्थ) शत्रुपक्षका जड़से नाश किये विना रहना बहुत ही कठिन है। जल मट्टीको जब तक कीचड़ बना कर नीचे नहीं दबा देता तब तक वह अपने स्वरूपमें नहीं आता ॥ ३४ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

म्रियते यावदेकोऽपि रिपुस्तावत्कुतः सुखम् ।
पुरः क्लिश्नाति सोमं हि सैंहिकेयोऽसुरद्रुहाम् ॥३५॥

(अन्वयः) एकः अपि रिपुः यावत् म्रियते तावत् सुखं कुतः ? हि सैंहिकेयः असुरद्रुहां पुरः सोमं क्लिश्नाति ॥३५॥

(सुबोधिनी) एकः-अपि (स्वयं एकाकी अपि) रिपुः (शत्रुः) यावत् (यावत्कालपर्यन्तं) म्रियते (अवतिष्ठते) तावत् (तदवधि, तावत्कालपर्यन्तमित्यर्थः,) सुखं कुतः हि (यतः) सैंहिकेयः (राहुः) असुरद्रुहां (देवानां) पुरः (अग्रे) सोमं (चन्द्रं) क्लिश्नाति (पीडयति) ॥ ३५ ॥

(समासः) सैंहिकेयः=सिंहिकाया अपत्यं पुमान् सैंहिकेयः । असुरद्रुहां=असुरेभ्यः द्रुह्यन्ति इति असुरद्रुहः तेषां ॥ ३५ ॥

(कोषः) तमस्तु राहुः स्वर्भानुः सैंहिकेयो विधुन्तुदः ॥ ३५ ॥

(व्याकरणम्) ध्रियते=धृ + लट् + ते । क्लिश्नाति=क्लिश् + लट् + ति ॥ ३५ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) ·······एकेन·······रिपुणा··········सुखेन (भूयते) सैंहिकेयेन·······सोमः क्लिश्यते ॥ ३५ ॥

(सरलार्थः) "अयं शिशुपालः एकाकी वर्तते अस्माकं किमपि कर्तुं न शक्ष्यति" इत्यपि न मन्तव्यं, एकोऽपि रिपुः दुःखदानाय पर्याप्तः । राहुः एकाकी अपि अनेकेष्वपि देवेषु स्थितेषु चन्द्रं ग्रसत्येव, अत एकोऽपि शत्रुरुच्छेत्तव्य एव "अग्नेः शेषमृणाच्छेषं शत्रुशेषं न शेषयेत्" इति भावः ॥ ३५ ॥

(भाषार्थ) जबतक एक भी शत्रु जीवित रहेगा तबतक सुख कहाँ ? राहु, देवताओंके सामने चन्द्रमाको ग्रसता ही है ॥ ३५ ॥

सखा गरीयान् शत्रुश्च कृत्रिमस्तौ हि कार्यतः ।
स्यातामभित्रौ मित्रे च सहजप्राकृतावपि ॥ ३६ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(अन्वयः) कृत्रिमः सखा शत्रुः च गरीयान्। हि तौ कार्यतः जातौ। सहजप्राकृतौ अमित्रौ मित्रे च स्याताम् ॥३६॥

(सुबोधिनी) कृत्रिमः (क्रियया सम्पादितः) सखा (सुहृत्) शत्रुः (रिपुः) च गरीयान् (श्रेष्ठः) हि (यतः) तौ (कृत्रिमामित्रशत्रू) कार्यतः (उपकारापकाररूपकार्यवशात्) जातौ। सहजप्राकृतौ (सहजं मित्रं मातृष्वसेयपितृष्वसेयादि, सहजशत्रुः पितृव्यतत्पुत्रादिः, पूर्वोक्तलक्षणरहितः प्राकृतश्च एतावुभावपि) अमित्रौ (शत्रू) मित्रे (सखायौ) च स्याताम् (अभूताम्) ॥ ३६ ॥

(समासः) कृत्रिमः=क्रियया निर्वृत्तः कृत्रिमः। गरीयान्=अतिशयेन गुरुः इति गरीयान्। सहजप्राकृतौ=सह जात इति सहजः, प्रकृत्या सिद्ध इति प्राकृतः, सहजश्च प्राकृतश्च सहजप्राकृतौ। अमित्रौ=न मित्रं अमित्रः तौ अमित्रौ ॥ ३६ ॥

(व्याकरणम्) कृत्रिमः=कृ+क्त्रि+मप्। स्यातां=अस+लिङ्+याताम् ॥ ३६ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) कृत्रिमेण सख्या शत्रुणा च गरीयसा (भूयते) सहजप्राकृताभ्यां अमित्राभ्यां मित्राभ्यां च भूयते ॥ ३६ ॥

(सरलार्थः) कार्यतः एव आत्यन्तिकः शत्रुः सखा वा जायते, प्राकृतौ वा तौ नात्यन्तिकः शत्रुः सखा वा ॥ ३६ ॥

(भाषार्थ) कृत्रिम मित्र और कृत्रिम शत्रु प्रधान होते हैं क्योंकि वे कार्यवश होते हैं सहज शत्रु और प्राकृत शत्रु सामान्य हैं क्योंकि ये कभी मित्र भी होते हैं और कभी शत्रु भी होते हैं, सहज मित्रः—मौसी और फूआके लड़के, सहज शत्रुः—चचेरे भाई और उनके लड़के, प्राकृत मित्रः—और प्राकृत शत्रु प्रकृतिसे ही हुआ करते हैं। कृत्रिम शत्रु सदा शत्रु ही रहता है और कृत्रिम मित्र सदा मित्र ही रहता है इसलिये ये ही दोनों श्रेष्ठ हैं ॥ ३६ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उपकर्त्रारिणा सन्धिर्न मित्रेणापकारिणा ।
उपकारापकारौ हि लक्ष्यं लक्षणमेतयोः ॥ ३७ ॥

(अन्वयः) उपकर्त्रा अरिणा (अपि) सन्धिः (कार्यः) अपकारिणा मित्रेण (अपि) सन्धिः न (कार्यः) हि उपकारापकारौ एतयोः लक्षणं लक्ष्यम् ॥ ३७ ॥

(सुबोधिनी) उपकर्त्रा (उपकारकारिणा) अरिणा (शत्रुणा) अपि, सन्धिः कार्य एव, अपकारिणा (अपकार-कारिणा) मित्रेण (सुहृदा) अपि, सन्धिः न (मेलनं न कार्यमित्यर्थः) हि (यतः) उपकारापकारौ (उपकृत्यपकृती) एतयोः (सुहृद्दुर्हृदोः) लक्षणं (स्वरूपं) लक्ष्यं (द्रष्टव्यम्) ॥ ३७ ॥

(समासः) उपकारापकारौ=उपक्रियते इत्युपकारः, अपक्रियते इत्यपकारः, उपकारश्च अपकारश्च उपकारापकारौ । लक्षणं=लक्ष्यते अनेन इति लक्षणम् ।। ३७ ।।

(कोषः) रिपौ वैरिसपत्नारिद्विषद्द्वेषणदुर्हृदः, इत्यमरः ।।३७।।

(व्याकरणम्) उपकर्त्रा=उप+कृ + तृच् (तृतीया) अपकारिणा =अप + कृ + णिनि (तृतीया) ।। ३७ ।।

(वाच्यपरिवर्तनम्)............सन्धि कुर्यात् उपकारापकाराभ्यां लक्षणेन लक्ष्येण भूयते ।। ३७ ।।

(सरलार्थः) शत्रुरपि उपकारी चेत् स सन्धातव्य एव । अथ सुहृदपि अपकारी स्यात्तदाऽवश्यं सोऽपि यातव्यः ।। ३७ ।।

(भाषार्थ) उपकार करनेवाले शत्रुसे भी मेल कर लेना चाहिये अपकार करनेवाले मित्रसे नहीं । क्योंकि उपकार करनेवाला ही मित्र है और अपकार करनेवाला ही शत्रु है ॥ ३७ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

त्वया विप्रकृतश्चैद्यो रुक्मिणीं हरता हरे ।
बद्धमूलस्य मूलं हि महद्वैरतरोः स्त्रियः ॥ ३८ ॥

(अन्वयः) हे हरे ! रुक्मिणीं हरता त्वया चैद्यः विप्रकृतः, बद्धमूलस्य वैरतरोः स्त्रियः महत् मूलम् ॥ ३८ ॥

(सुबोधिनी) हे हरे ! (हे कृष्ण !) रुक्मिणीं (भीष्मकन्यां) हरता (अपहरता, *राक्षसधर्मेण उद्वहता) त्वया (भवता) चैद्यः (शिशुपालः) विप्रकृतः (विप्रियं प्रापितः) बद्धमूलस्य (रूढमूलस्य) वैरतरोः (द्वेषवृक्षस्य) स्त्रियः (कामिन्यः) महत् (प्रधानं) मूलं (कारणम्) ॥३८॥

(समासः) बद्धमूलस्य=बद्धं मूलं अनेन बद्धमूलः तस्य । वैरतरोः=वैररूपः तरुः वैरतरुस्तस्य ॥ ३८ ॥

(व्याकरणम्) विप्रकृतः=वि + प्र+कृ+क्त । चैद्यः=चेदीनां अयं चैद्यः, चेदि + ष्यञ् । हरता=हृ + शतृ ॥ ३८ ॥

(सरलार्थः) हे कृष्ण ! त्वमपि शिशुपालस्य अपकारकरणात् कृत्रिमः शत्रुरसि । यतः बन्धुभिः शिशुपालाय वाग्दत्ता रुक्मिणी त्वया अपहृता ॥ ३८ ॥

(भाषार्थ) हे कृष्ण रुक्मिणीको हरणकर आपने शिशुपालसे बैर ठाना है, स्त्रियां वैरकी जड़ हुआ करती हैं ॥३८॥

त्वयि भौमं गते जेतुमरौत्सीत्स पुरीमिमाम् ।
प्रोषितार्यमणं मेरोरन्धकारस्तटीमिव ॥ ३९ ॥

(अन्वयः) त्वयि भौमं जेतुं गते (सति) सः इमां पुरीं प्रोषितार्य्यमणं मेरोः तटीं अन्धकारः इव अरौत्सीत् ॥३९॥

---

* "गन्धर्वो राक्षसश्चैव धर्म्मौ क्षत्रस्य तौ स्मृतौ" इति याज्ञवल्क्यः ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(सुबोधिनी) त्वयि (भवति) भौमं (नरकासुरं) जेतुं (स्वायत्तीकर्तुं) गते (प्रस्थिते सति) सः (शिशुपालः) इमां पुरीं (द्वारकानगरीं) प्रोषितार्य्यमणं (प्रोषितसूर्यं, अस्तमितसूर्यं) मेरोः (सुमेरोः) तटीं (सानुं) अन्धकारः (तमः) इव (यथा) अरौत्सीत् (रुद्धवान्) ॥ ३९ ॥

(समासः) भौमं=भूमेरपत्यं पुमान् भौमः तं । प्रोषितार्यमणं=प्रोषितः अर्यमा यस्याः सा प्रोषितार्यमा, तां ॥ ३९ ॥

(कोषः) सूरसूर्यार्यमादित्यद्वादशात्मदिवाकराः, इत्यमरः ॥३९॥

(व्याकरणम्) अन्धकारः=अन्धं करोति इत्यन्धकारः=अन्ध + कृ + अच् । अरौत्सीत्=रुध + लुङ् + तिप् ॥ ३९ ॥

(वाच्यपरिवर्त्तनम्) तेन इयं पुरी प्रोषितार्य्यमा मेरोः तटी अन्धकारेण इव अरोधि ॥ ३९ ॥

(सरलार्थः) सोऽपि तव कृत्रिमः शत्रुः, यतः त्वयि नरकविजये व्यापृते स द्वारकापुरीमुपरुरोध ॥ ३९ ॥

(भाषार्थ) और जब आपने नरकासुरको जीतनेके लिये यहांसे प्रस्थान किया था उस समय उसने भी द्वारकाको घेरकर आपसे वैर ठाना। जैसे सूर्यके आगे जानेपर सुमेरुके शिखरको अन्धकार घेर लेता है ॥ ३९ ॥

आलप्यालमिदं बभ्रोर्यत्सदारानपाहरत् ।
कथापि खलु पापानामलमश्रेयसे यतः ॥ ४० ॥

(अन्वयः) सः बभ्रोः दारान् अपाहरत् (इति) यत् इदं आलप्य अलं। यतः पापानां कथा अपि अश्रेयसे अलम् ॥४०॥

(सुबोधिनी) सः (शिशुपालः) बभ्रोः (यादवान्तर्गतस्य बभ्रुनाम्नः भूपस्य) दारान् (भार्यां) अपाहरत् (अपहृतवान्) इति (इत्थं) यत्-इदं (यत्-एतत्, दारापहरणरूपं कर्म) तत्, आलप्य (उच्चार्य) अलं (न कथनीयमित्यर्थः) यतः

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(यस्मात्) पापानां (पापिनां) कथा (कथनमपि) अश्रेयसे (अमङ्गलाय) अलं (समर्था) ॥ ४० ॥

(कोषः) भार्या जायाथ पुं भूम्नि दाराः स्यात्तु कुटुम्बिनीत्यमरः ॥ ४० ॥

(व्याकरणम्) आलप्य+आ+लप्+ल्यप् । अपाहरत्=अप+हृ+लङ्+तिप् ॥ ४० ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) तेन………दाराः अपाह्रियन्त………येन (भूयते)………कथया……(भूयते) ॥ ४० ॥

(सरलार्थः) अहो दुर्नयः । शिशुपालः यादववंशीयस्य बभ्रोर्दारानपाहरदित्युक्त्वा अलम् । अस्य कथाऽपि अमङ्गलजननी ॥ ४० ॥

(भाषार्थ) और उस शिशुपाल ने बभ्रु यादव की स्त्री का हरण किया आदि बातें कहना भी व्यर्थ है, क्योंकि पापियों की कथा सुनने से भी पाप ही होता है ॥ ४० ॥

विराद्ध एवं भवता विराद्धा बहुधा च नः ।
निर्वर्त्यतेऽरिः क्रियया स श्रुतश्रवसः सुतः ॥ ४१ ॥

(अन्वयः) एवं भवता विराद्धः बहुधा च नः विराद्धा श्रुतश्रवसः सः सुतः क्रियया अरिः निर्वर्त्यते ॥ ४० ॥

(सुबोधिनी) एवं (उक्तप्रकारेण) भवता (त्वया) विराद्धः (विप्रकृतः) बहुधा (अनेकधा) नः (अस्माकं च) विराद्धा (विप्रकर्ता) श्रुतश्रवसः (हरेः पितृष्वसुः) सुतः (पुत्रः) सः (शिशुपालः) क्रियया (प्राकथितपरस्परापक्रियया) अरिः (शत्रुः) निर्वर्त्यते (निष्पाद्यते, क्रियत इत्यर्थः) ॥ ४१ ॥

(व्याकरणम्) विराद्धः=वि+राध+क्त । बहुधा=बहु+धाच् । निर्वर्त्यते=निर् + वृत् + णिच् + लट् + ते ॥ ४१ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्)………विराद्धं……विराद्धारं………सुतं क्रिया अरिं निर्वर्तयति ॥ ४१ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(सरलार्थः) एवं भवता विराद्धः अस्माकञ्च बहुधा विराद्धा सः शिशुपालः एकान्तत एव नः शत्रुः ॥ ४१ ॥

(भाषार्थ) इस प्रकार आपके द्वारा अपकार किया गया और अनेक बार आपका अपकार करने वाला वह शिशुपाल हम लोगों का कृत्रिम शत्रु हो गया है ॥ ४१ ॥

विधाय वैरं सामर्षे नरोऽरौ य उदासते ।
प्रक्षिप्योदर्चिषं कक्षे शेरते तेऽभिमारुतम् ॥ ४२ ॥

(अन्वयः) ये नरः सामर्षे अरौ वैरं विधाय उदासते ते कक्षे उदर्चिषं प्रक्षिप्य अभिमारुतं शेरते ॥ ४२ ॥

(सुबोधिनी) ये नरः (पुमांसः) सामर्षे (सरोषे) अरौ (रिपौ) वैरं (द्वेषं) विधाय (कृत्वा) उदासते (उपेक्षन्ते) "स्वयमपकारं कृत्वा उदासीनवत्तिष्ठन्तीत्यर्थः" ते (तथाभूताः नराः) कक्षे (दोर्मूले) "कक्षस्तु गुल्मे दोर्मूले" वैजयन्ती, उदर्चिषं (अनलं) प्रक्षिप्य (संस्थाप्य) अभिमारुतं (वायुमुखे) शेरते (स्वपन्ति) ॥ ४२ ॥

(समासः) उदर्चिषं=उद्गतानि अर्चींषि अस्य असौ उदर्चिट् तं । अभिमारुतं=मारुतमभिलक्ष्य इति अभिमारुतम् ॥ ४१ ॥

(कोषः) स्युः पुमांसः पञ्च जनाः पुरुषाः पूरुषा नरः, इत्यमरः ॥

(व्याकरणम्) विधाय=वि+धा+ल्यप् । उदासते=उद्+आस्+लट्+अन्ते । प्रक्षिप्य=प्र+क्षिप्+ल्यप् । शेरते=शी+लट्+झ+अते=रते ॥ ४२ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) यैः नृभिः.... ......उदास्यते तैः........ शय्यते ॥ ४२ ॥

(सरलार्थः) यः जनः क्रुद्धेन शत्रुणा सह वैरं विधाय औदासीन्यमवलम्बते स बाहुमूले अग्निं गृहीत्वा वायुसम्मुखे शेते । अतस्तस्य मृत्युरवश्यं भविता ॥ ४१ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(भाषार्थ) जो अति क्रोधी शत्रुसे वैर ठान शान्त होकर बैठते हैं, वे आग लगा कर हवा की रुख पर सोते हैं, अर्थात् अपने शीघ्र नाश का द्वार खोले रहते हैं ॥ ४२ ॥

मनागनभ्यावृत्त्या वा कामं क्षाम्यतु यः क्षमी ।
क्रियासमभिहारेण विराध्यन्तं क्षमेत कः ॥ ४३ ॥

(अन्वयः) यः क्षमी सः मनाक् अनभ्यावृत्त्या वा (विराध्यन्तं) कामं क्षाम्यतु । क्रियासमभिहारेण विराध्यन्तं कः क्षमेत ॥ ४३ ॥

(सुबोधिनी) यः-क्षमी (सहनः वर्तते) सः (सोढा) मनाक् (अल्पं) अनभ्यावृत्त्या (सकृत्, एकवारमित्यर्थः) वा, (विराध्यन्तं=अपकुर्वाणं) कामं (भृशं) क्षाम्यतु (क्षमतां) क्रियासमभिहारेण (पौनःपुन्येन) विराध्यन्तं (अपकुर्वाणं) कः (जनः) क्षमेत (सहेत, सोढुं शक्नुयात्, न कोऽपीत्यर्थः) ॥ ४३ ॥

(समासः) अनभ्यावृत्त्या=न अभ्यावृत्तिः, तया । क्रियासमभिहारेण =क्रियाणां समभिहारः क्रियासमभिहारः तेन ॥ ४३ ॥

(कोषः) किञ्चिदीषन्मनागल्पे, सहिष्णुः सहनः क्षन्ता तितिक्षुः क्षमिता क्षमीत्यमरौ ॥ ४३ ॥

(व्याकरणम्) क्षाम्यतु=क्षम् + लोट्+तिप् । विराध्यन्तं= वि+राध्+शतृ (दिवादि) क्षमेत=क्षम+लिङ्+ईत ॥ ४३ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) येन क्षमिणा (भूयते) तेन.................. (विराध्यन्)........क्षम्यतां ।........विराध्यन् केन क्षम्येत ॥ ४३ ॥

(सरलार्थः) शान्तः सहनशीलः स्वल्पं एकवार वा कृतमपकारं क्षाम्यतु । परं, वारं वारं दृढञ्च कृतमपकारं कथं क्षम्यतां नाम ॥ ४३ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(भावार्थ) जो क्षमाशील है, वह थोड़े अथवा एक बार किये गये बड़े भी अपराध को भले ही सहन कर सकता है। बार २ किये गये अपराध को कोई नहीं सहन कर सकता ॥

अन्यदा भूषणं पुंसः क्षमा लज्जेव योषितः ।
पराक्रमः परिभवे वैयात्यं सुरतेष्विव ॥ ४४ ॥

(अन्वयः) अन्यदा, योषितः लज्जा इव, पुंसः क्षमा भूषणं। परिभवे "तु" सुरतेषु "योषितः" वैयात्यं इव पराक्रमः भूषणम् ॥ ४४ ॥

(सुबोधिनी) अन्यदा (अन्यस्मिन् काले, सुरतव्यतिरिक्ते इत्यर्थः) योषितः (स्त्रियः) लज्जा-इव (त्रपेव) पुंसः (पुरुषस्य) अन्यदा (अपरिभवसमये) क्षमा (शान्तिः) भूषणं (अलङ्करणम्) परिभवे (पराभवे) तु, सुरतेषु (रतिषु) योषितः, वैयात्यं (धार्ष्ट्यं) इव, पराक्रमः (पौरुषं) एव, भूषणम् ॥ ४४ ॥

(समासः) भूषणं=भूष्यते अनेन इति भूषणम् । पराक्रमः= पराक्रम्यते अनेन इति पराक्रमः । सुरतेषु=शोभनं रतं सुरतं तेषु ॥ ४४ ॥

(कोषः) धृष्टे धृष्णुर्वियातश्च, मन्दाक्षं ह्रीस्त्रपा व्रीडा लज्जा सापत्रपान्यतः । इत्यमरौ ॥ ४४ ॥

(सरलार्थः) सुरतव्यतिरिक्ते काले स्त्रीणां लज्जा, अथ च पराभवभिन्ने समये क्षमा भूषणं भवति परं सैव लज्जा तथा क्षमा स्त्रीणां सुरतौ तथा पुरुषाणां परिभवसमये च दूषणमेव ॥ ४४ ॥

(भावार्थ) लज्जा स्त्रियों के लिये सुरत काल में जैसे दूषण है और सुरतातिरिक्त काल में भूषण है उसी तरह पुरुषों के लिये क्षमा परिभव (अपमान) के समय दूषण है और तदतिरिक्त समय में भूषण है ॥ ४४ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मा जीवन्यः परावज्ञादुःखदग्धोऽपि जीवति।
तस्याजननिरेवास्तु जननी क्लेशकारिणः॥ ४५॥

(अन्वयः) यः परावज्ञादुःखदग्धः मा जीवन् "सन्" अपि जीवति, जननीक्लेशकारिणः तस्य अजननिः एव अस्तु॥

(सुबोधिनी) यः (जनः) परावज्ञादुःखदग्धः (अरिकृतापमानदुःखसन्तप्तः) "अत एव" मा जीवन् निन्दितजीवीसन्) अपि, जीवति (प्राणान् धारयति) जननीक्लेशकारिणः (केवलं मातुः गर्भधारणप्रसवादिवेदनाविधायिनः) तस्य (गर्हितजीविनः पुरुषस्य) अजननिः (अनुत्पत्तिः) एव, अस्तु (भवतु) ॥ ४५ ॥

(समासः) परावज्ञादुःखदग्धः=अवज्ञायते इति अवज्ञा, परस्य अवज्ञा परावज्ञा, तया दुःखं, परावज्ञादुःखं, तेन दग्धः परावज्ञादुःखदग्धः। जननीक्लेशकारिणः=क्लेशं करोतीति क्लेशकारी, जनयतीति जननी, जनन्याः क्लेशकारी जननीक्लेशकारी तस्य ॥ ४५ ॥

(व्याकरणम्) मा जीवन्=मा + जीव + लट् + शतृ। अस्तु=अस् + लोट् + तु ॥ ४५ ॥

(वाच्यान्तरम्) येन.......दग्धेन.......जीवता जीव्यते....... अजनन्या भूयताम् ॥ ४५ ॥

(सरलार्थः) यः किल शत्रुणा भृशमवज्ञातोऽपि जीवति, जनन्याः केवलं गर्भधारणप्रसवादिवेदनाकारिणस्तस्यानुत्पत्तिरेव वरम् ॥ ४५ ॥

(भाषार्थ) जो मनुष्य अपमानके दुःखसे जलता हुआ अत एव निन्दित जीवी होकर भी जीता रहता है, माताको वृथा प्रसवकी पीडा देनेवाले ऐसे मनुष्यका उत्पन्न न होना श्रेष्ठ है।

पादाहतं यदुत्थाय मूर्धानमधिरोहति।
स्वस्थादेवापमानेऽपि देहिनस्तद्वरं रजः॥ ४६॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(अन्वयः) यत् रजः पादाहतं सत् उत्थाय मूर्धानं अधिरोहति तद् अपमाने अपि स्वस्थात् देहिनः वरम् एव ॥

(सुबोधिनी) यत् रजः (धूलिः) पादाहतं (पादाभ्यां ताडितं सत्) उत्थाय (उड्डीय) मूर्धानं (आहन्तुरेव मस्तकं) अधिरोहति (आक्रामति) तत् (रजः) अपमाने (अवमाने) सत्यपि, स्वस्थात् (तटस्थात्) उदासीनादित्यर्थः, देहिनः (चेतनात्) वरं (श्रेष्ठम्) ॥ ४६ ॥

(समासः) पादाहतं=पादाभ्यां आहतं पादाहतं । स्वस्थात्=स्वस्मिन् तिष्ठतीति स्वस्थः, तस्मात् । देहिनः=देहः अस्ति अस्य इति देही तस्मात् ।। ४६ ।।

(कोषः) रेणुर्द्वयोः स्त्रियां धूलिः पांसुर्ना न द्वयोरजः । देवाद्वते वरः श्रेष्ठे त्रिषु क्लीबे मनाक्प्रिय इत्यमरौ ।। ४६ ।।

(व्याकरणम्) उत्थाय=उद् + स्था + ल्यप् । अधिरोहति=अधि + वह + लट् + ति ।। ४६ ।।

(वाच्यान्तरम्) येन रजसा·····हतेन (सता) मूर्द्धा अधिरुह्यते तेन·······वरेण (भूयते) ।। ४६ ।।

(सरलार्थः) अचेतना धूलिरपि पादेन ताडिता स्वावमाननमसह-माना सती हन्तुः मस्तकमाक्रम्य तिष्ठति, यः पुनः सचेतनो भूत्वा अपमाने जातेऽपि तूष्णीमेवास्ते सतु ततोऽपि लघुरिति मन्ये ।। ४६ ।।

(भावार्थ) अपमान होनेपर भी स्वस्थ बैठनेवाले चेतन देहीसे अचेतन धूलि ही बहुत अच्छी है जो पैरोंसे ताडित होकर अपने अपमानको सहन न कर क्रोधके मारे अपमान करने वालेके सिरपर चढ़ बैठती है ॥ ४६ ॥

असम्पादयतः कश्चिदर्थं जातिक्रियागुणैः ।
यदृच्छाशब्दवत् पुंसः संज्ञायै जन्म केवलम् ॥४७॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(अन्वयः) जातिक्रियागुणैः कञ्चिदर्थं असम्पादयतः पुंसः जन्म यदृच्छाशब्दवत् संज्ञायै केवलम् ॥ ४७ ॥

(सुबोधिनी) जातिक्रियागुणैः (ब्राह्मणत्वादियागादिशौर्यादिसाधनैः) कञ्चित् (कमपि) अर्थं (सुकृत-कीर्ति-पौरुषादिरूपं) असम्पादयतः (न साधयतः) पुंसः (पुरुषस्य) जन्म (शरीरग्रहणं) यदृच्छाशब्दवत् (स्वेच्छाप्रकल्पितानन्वर्थशब्दवत्) संज्ञायै केवलं (संज्ञामात्रमेव) ॥ ४७ ॥

(समासः) जातिक्रियागुणैः=जातिश्च क्रिया च गुणश्च जातिक्रियागुणाः तैः । असम्पादयतः=न सम्पादयतः असम्पादयतः । यदृच्छाशब्दवत्=यदृच्छा कृतः शब्दः यदृच्छाशब्दः, यदृच्छाशब्दस्य इव इति यदृच्छाशब्दवत् । संज्ञायै=सम्यक् जानाति अनया इति संज्ञा तस्यै ॥४७॥

(व्याकरणम्) असम्पादयतः=सम्+पद्+णिच्+शतृ ॥ ४७ ॥

(कोषः) स्वेच्छायदृच्छास्वच्छन्दः स्वैरता चेति ते समाः । इत्यमरः ॥ ४७ ॥

(वाच्यान्तरम्) ....जन्मना (भूयते) ॥ ४७ ॥

(सरलार्थः) यः स्वजातिक्रियागुणसदृशं अलौकिकं कमपि अर्थं न सम्पादयति, केवलं जन्मना एव ब्राह्मणः क्षत्रियो वा भवति तस्य जन्म एव निरर्थकम् ॥ ४७ ॥

(भाषार्थ जो मनुष्य अपनी जाति, गुण और क्रिया आदि साधनों से अपना कोई विशेष लाभ नहीं कर लेता है उसका जन्म तात्पर्यहीन यदृच्छाशब्द की तरह संज्ञा के नामके लिये है ॥ ४७ ॥

तुङ्गत्वमितरा नाद्रौ नेदं सिन्धावगाहता ।
अलंघनीयताहेतुरुभयं तन्मनस्विनि ॥ ४८ ॥

(अन्वयः) अद्रौ तुङ्गत्वं, इतरा न, सिन्धौ अगाधता, इदं न, मनस्विनि (तु) अलङ्घनीयता हेतुः तत् उभयम् ॥ ४८ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(सुबोधिनी) अद्रौ (शैले) तुङ्गत्वं (औन्नत्यं) "वर्तते" इतरा (अतलस्पर्शिता) न, सिन्धौ (समुद्रे) अगाधता (अतलस्पर्शिता वर्तते) इदं (तुङ्गत्वं न) नास्ति मनस्विनि (शूरे) "तु" अलङ्घनीयताहेतुः (अलङ्घ्यत्वकारणं) तद् उभयं (तुङ्गत्वं-अगाधताचेति द्वयम्) वर्तत इति शेषः ॥४८॥

(समासः) अगाधता=अविद्यमानः गाधः अस्मिन् अगाधः, तस्य भावः । अलङ्घनीयताहेतुः=लङ्घितुं योग्यः लङ्घनीयः, न लङ्घनीयः, अलङ्घनीयस्तस्य भावः अलङ्नीयता, तस्याः हेतुः अलङ्घनीयताहेतुः । तुङ्गत्वं=तुङ्गस्य भावः तुङ्गत्वम् ॥ ४८ ॥

(कोषः) अद्रिगोत्रगिरिग्रावाचलशैलशिलोच्चयाः । उदन्वानुदधिः सिन्धुः सरस्वान् सागरोऽर्णवः । इत्यमरौ ॥ ४८ ॥

(व्याकरणम्) उभयं=उभौ अवयवौ अस्य इति उभयं=उभ+अयच् । मनस्विनि=प्रशस्तं मनः अस्य इति मनस्वी तस्मिन्=मनस्+विनि (मत्वर्थे) ॥ ४६ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) तुङ्गत्वेन (भूयते) इतरया न (भूयते) अगाधतया (भूयते) अनेन न (भूयते)..........हेतुना तेन उभयेन (भूयते) ॥ ४८ ॥

(सरलार्थः) पर्वते औन्नत्यं, समुद्रे अतलस्पर्शिता, इति पर्वते समुद्रेचैकैकमेव वस्तु अनुल्लङ्घनीयस्य कारणं वर्तते, परं मनस्विनि अलङ्घनीयताहेतुः तदुभयमपि तिष्ठति तस्मात् अद्रिसिन्धुभ्यामधिको मनस्वी, अतः सर्वदा पौरुषमेवाश्रयणीम् ॥ ४८ ॥

(भाषार्थ) पहाड़में उचाई है, अथाहपन नहीं है, समुद्रमें अथाहपन है, पर उचाई नहीं है, इसोलिये ये दोनों ही लांघे जा सकते है परन्तु वीर पुरुषमें गम्भीरता (अथाहपन) है और आत्मगौरवसे वह अत्यन्त उन्नत भी है इस तरह इसमें अलङ्घनीयताके दोनों कारण उपस्थित हैं ॥ ४८ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तुल्येऽपराधे स्वर्भानुर्भानुमन्तं चिरेण यत् ।
हिमांशुमाशु ग्रसते तन्म्रदिम्नः स्फुटं फलम् ॥४९॥

(अन्वयः) स्वर्भानुः अपराधे तुल्ये "अपि" भानुमन्तं चिरेण, हिमांशुं "च" आशु ग्रसते (इति) यत् तत् म्रदिम्नः फलं स्फुटं एव ॥ ४९ ॥

(सुबोधिनी) स्वर्भानुः (राहुः) अपराधे (दोषे, अपकारे वा) तुल्ये (समाने अपि) भानुमन्तं (सूर्यं) चिरेण (बहुकालेन) हिमांशुं (चन्द्रं) च आशु (शीघ्रं) ग्रसते (निगिलति) इति यत् तत् (चन्द्रग्रसनरूपं कार्यं) म्रदिम्नः (मार्दवस्य) फलं (परिणामः) स्फुटं (सुस्पष्टम्) ॥ ४९ ॥

(समासः) स्वर्भानुः=भातीति भानुः, स्वः (आकाशे) भानुः स्वर्भानुः । भानुमन्तं=भानवः अस्य सन्तीति भानुमान् तं । हिमांशुं= हिमाः अंशवः अस्य हिमांशुः तं ॥ ४ ॥

(कोषः) तमस्तुराहुः स्वर्भानुः, इत्यमरः ॥ ४९ ॥

(व्याकरणम्) म्रदिम्नः=मृदोर्भावः म्रदिमा तस्य । म्रद्+ इमनिच् । ग्रसते=ग्रस+लट्+ते । तुल्ये=तोल्यते अनया इति तुला, तुलया सम्मितः तुल्यः = तुला+यत् । अपराधे = अप+राध+घञ् (भावे) ॥ ४९ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) स्वर्भानुना.......भानुमान्.......हिमांशुः ग्रस्यते.......येन (भूयते) ॥ ४९ ॥

(सरलार्थः) कोमलप्रकृतिश्चन्द्रः वारं वारं राहुणा परिभूयते, तेजस्विनः सूर्यस्य पुनः कदाचिदेव ग्रासो भवति, तस्मात् विपक्षे सर्वदा तीव्रेण भवितव्यमन्यथा चन्द्रवत् सर्वदा परिभवो भविता ॥ ४९ ॥

स्वयं प्रशमतेऽल्पेऽपि परवायावुपेयुषि ।
निदर्शनमसाराणां लघुर्बहुतृणं नरः ॥ ५० ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(अन्वयः) असाराणां निदर्शनं बहुतृणं लघुः नरः, अल्पे अपि परवायौ उपेयुषि स्वयं प्रणमते ॥ ५० ॥

(सुबोधिनी) असाराणां (साररहितानां, दुर्बलानामित्यर्थः) निदर्शनं (दृष्टान्तः) बहुतृणं (तृणसदृशः) लघुः (पौरुषहीनः) नरः (मनुष्यः) अल्पे अपि (ईषदपि) परवायौ (शत्रुवायौ) उपेयुषि (प्राप्ते सति) स्वयं (स्वतः एव) प्रणमते (प्रह्वीभवति) ॥ ५० ॥

(समासः) असाराणां=अविद्यमानः सारः एषां ते असारास्तेषां । परवायौ=परः वायुः इव इति परवायुः तस्मिन् ॥ ५० ॥

(व्याकरणम्) प्रणमते=प्र+णम्+लट्+ते । निदर्शनं = नितरां दर्श्यते अनेन इति निदर्शनं=नि+दृश्+णिच्+ल्युट् ॥ ५० ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्)........निदर्शनेन बहुतृणेन लघुना नरेण.... ....प्रणम्यते ॥ ५० ॥

(सरलार्थः) यथा असाराणि तृणानि अल्पीयसाऽपि वायुना उड्डीयन्ते तथैव लघुः नरः अल्पीयसापि शत्रुणा आक्रान्तः सन् स्वयं प्रणमति ॥ ५० ॥

(भावार्थ) नाममात्र भी शत्रुरूपी हवा बहने पर—दुर्बलों का सबसे बड़ा नमूना तृणके समान तुच्छ मनुष्य है जो तुरत नम जाता है ॥ ५० ॥

तेजस्विमध्ये तेजस्वी दवीयानपि गण्यते ।
पञ्चमः पञ्चतपसस्तपनो जातवेदसाम् ॥ ५१ ॥

(अन्वयः) दवीयान् अपि तेजस्वी तेजस्विमध्ये गण्यते पञ्चतपसः तपनः जातवेदसां पञ्चमः ॥ ५१ ॥

(सुबोधिनी) दवीयान् अपि (दूरस्थोऽपि) तेजस्वी (प्रतापशीलः) तेजस्विमध्ये (पराक्रमशीलानां मध्ये)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

गरायते (सङ्ख्यायते) तथाहि—पञ्चतपसः (पञ्चाग्निसाध्यस्य तपसः) तपनः (सूर्यः) जातवेदसां (अग्नीनां) पञ्चमः (पञ्चमसंख्यापूरकः) भवति, इतिशेषः ॥ ५१ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) दवीयांसं अपि तेजस्विनं·······गरायति (लोकः) ·········तपनेन·······पञ्चमेन (भूयते) ॥ ५१ ॥

(सरलार्थः) प्रभावशाली पुरुषस्तु दूरस्थोऽपि शत्रुणा नमस्क्रियते ॥ ५१ ॥

(भाषार्थ) तेजस्वी कितना भी दूर रहे फिर भी वह तेजस्वियोंकी गणनामें आही जाता है। पञ्चाग्नि साधन करने वालोंके लिए सूर्य भी पांच अग्नियोंमें गिना जाता है ॥ ५१ ॥

अकृत्वा हेलया पादमुच्चैर्मूर्द्धसु विद्विषाम् ।
कथङ्कारमनालम्ब्य कीर्तिर्द्यामधिरोहति ॥ ५२ ॥

(अन्वयः) उच्चैः विद्विषां मूर्धसु हेलया पादं अकृत्वा अनालम्ब्य कीर्तिः कथङ्कारं द्यां अधिरोहति ॥ ५२ ॥

(सुबोधिनी) उच्चैः (उन्नतेषु) विद्विषां (शत्रूणां) मूर्द्धसु (मस्तकेषु) हेलया (अनादरेण) पादं (चरणं) अकृत्वा (अनिधाय) अनालम्ब्य (निराधारा) कीर्तिः (यशः) कथङ्कारं (केन प्रकारेण) द्यां (स्वर्गं) अधिरोहति (अधिगच्छति) ॥ ५२ ॥

(समासः) तेजस्विमध्ये=तेजः अस्त्यस्यासाविति तेजस्वी, तेषां मध्यं तेजस्विमध्यं तस्मिन् । पञ्चतपसः=पञ्चाग्निसाध्यं तपो यस्य पञ्चतपाः तस्य ॥ ५२ ॥

(व्याकरणम्) दवीयान्=अतिशयेन दूरः इति दवीयान्=दूर+ईयसुन् । गणयते=गण्+णिच्+लट्+ते । पञ्चमः=पञ्चानां पूरणः पञ्चमः=पञ्चन्+डट् । तपनः=तपति इति, तपन=तप्+ल्युट् ॥५२॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(समासः) विद्विषां=विशेषेण द्विषन्ति इति विद्विषः तेषां। अनालम्बा=अविद्यमानः आलम्बः अस्याः सा ॥ ५२ ॥

(कोषः) हेला स्त्रियामवज्ञायां विलासे वारयोषितामिति मेदिनी॥५२॥

(व्याकरणम्) अकृत्वा=नञ्+कृ+क्त्वा। अधिरोहति+अधि+रुह+लट्+ति ॥ ५२ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्)......अनालम्बया कीर्त्या द्यौः अधिरुह्यते।

(सरलार्थः) यः शत्रून् पराजयते तस्य कीर्तिकथां स्वर्गस्था अपि गायन्ति तस्मात् कीर्तिमभिलषता जनेन पौरुषमेवाश्रयणीयम् ॥५२॥

(भाषार्थ) शत्रुओंके मस्तकपर अवज्ञापूर्वक पैर रक्खे विना निराधार कीर्ति स्वर्गमें कैसे चढ़ सकता है ? ॥ ५२ ॥

अङ्काधिरोपितमृगश्चन्द्रमा मृगलाञ्छनः।
केसरी निष्ठुरक्षिप्तमृगयूथो मृगाधिपः ॥ ५३ ॥

(अन्वयः) अङ्काधिरोपितमृगः चन्द्रमाः मृगलाञ्छनः, निष्ठुरक्षिप्तमृगयूथः केसरी मृगाधिपः ॥ ५३ ॥

(सुबोधिनी) अङ्काधिरोपितमृगः (उत्सङ्गस्थापितमृगः) चन्द्रमाः (इन्दुः) मृगलाञ्छनः (मृगाङ्कः) निष्ठुरक्षिप्तमृगयूथः (निष्ठुरं यथा तथा ध्वस्तमृगसमूहः) केशरी (सिंहः) मृगाधिपः (मृगेन्द्रः) ॥ ५३ ॥

(समासः) अङ्काधिरोपितमृगः=अङ्के अधिरोपितः अङ्काधिरोपितः, अङ्काधिरोपितः मृगः अनेन इत्यङ्काधिरोपितमृगः। मृगलाञ्छनः =लाञ्छ्यते अङ्क्यते अनेन इति लाञ्छनं, मृगः लाञ्छनं यस्य सः। निष्ठुरक्षिप्तमृगयूथः=निष्ठुरं क्षिप्तं निष्ठुरक्षिप्तं निष्ठुरक्षिप्तं मृगयूथं येन सः। अधिपातीत्यधिपः, मृगाणां अधिपः मृगाधिपः ॥५३॥

(कोषः) उत्सङ्गचिन्हयोरङ्कः, कलङ्काङ्कौ लाञ्छनञ्चेत्यमरौ॥५३॥

(व्याकरणम्) केसरी=केशरा अस्य सन्तीति केसरी=केसर+इनि ॥ ५३ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(वाच्यपरिवर्तनम्)⋯मृगेण चन्द्रमसा लाञ्छनेन (भूयते) ⋯यूथेन केसरिणा मृगाधिपेन (भूयते) ॥ ५३ ॥

(सरलार्थः) दयया मृगमङ्के संस्थाप्य चन्द्रः तेन लाञ्छितोऽभूत् । सिंहः पुनर्निर्दयो भूत्वा तानेव व्यापाद्यमृगेन्द्रः बभूव । अतः शत्रौ मार्दवं सर्वथा दुष्कीर्तय एव, पौरुषं तु कीर्तये भवति ॥ ५३ ॥

(भाषार्थ) गोदमें मृगको दयापूर्वक आश्रय देनेवाला चन्द्रमा मृगलाञ्छन (मृगकलङ्की) कहा जाता है, और निर्दयता पूर्वक मृगोंको मारने वाला सिंह मृगाधिप (मृगोंका राजा) कहा जाता है। इसलिये शत्रुओंके साथ निर्दयताका व्यवहार ही उचित है ॥ ५३ ॥

चतुर्थोपायसाध्ये तु रिपौ सान्त्वमपक्रिया ।
स्वेद्यमामज्वरं प्राज्ञः कोऽम्भसा परिषिञ्चति ॥५४॥

(अन्वयः) चतुर्थोपायसाध्ये रिपौ तु सान्त्वं अपक्रिया। स्वेद्यं आमज्वरं कः प्राज्ञः अम्भसा परिषिञ्चति ॥ ५४ ॥

(सुबोधिनी) चतुर्थोपायसाध्ये (दण्डप्रतिविधेये) रिपौ (शत्रौ) सान्त्वं (सामवचनप्रयोगः) अपक्रिया (अपकारः) तथाहि स्वेद्यं (स्वेदनकार्यार्हं) आमज्वरं (अपक्वज्वरं) कः—प्राज्ञः (बुद्धिमान्) अम्भसा (जलेन) परिषिञ्चति (आसिञ्चति) ॥ ५४ ॥

(समासः) चतुर्थोपायसाध्ये=चतुर्णां पूरणः चतुर्थः, उपैति उपायते वा अर्थं अनेनेत्युपायः, चतुर्थः उपायः चतुर्थोपायः, तेन साध्यः चतुर्थोपायसाध्यः, तस्मिन् । आमज्वरं=आमः ज्वरः आमज्वरः तं ॥५४॥

(कोधः) साम सान्त्वमुभे समे, आमो रोगे रोगभेदे आमोऽपक्वे तु वाच्यवदित्यमरविश्वौ ॥ ५४ ॥

(व्याकरणम्) अपक्रिया=अप+कृ+श । स्वेद्यं=स्विद्+ण्यत् । परिषिञ्चति=परि+सिच्+लट्+तिप् ॥ ५४ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(वाच्यपरिवर्तनम्)······सान्त्वेन अपक्रियया (भूयते)······ स्वेद्यः आमज्वरः केन प्राज्ञेन···परिषिच्यते ॥ ५४ ॥

(सरलार्थः) ज्वरितस्य जलसेकवत् दण्डयोग्ये रिपौ सामोपायः सर्वथा अनर्थकर एव ॥ ५४ ॥

(भाषार्थ) साम-दान-भेद-दण्ड आदि चार उपायोंमें से चौथे उपायसे मानने वाले शत्रुपर सामका प्रयोग करना हानिकर होता है जैसे आम (कच्चा) ज्वरीको जहाँ कि स्वेदन क्रिया होनी चाहिये; कौन विद्वान् जलसे नहलाता है ?

सामवादाः सकोपस्य तस्य प्रत्युत दीपकाः ।
प्रतप्तस्येव सहसा सर्पिषस्तोयबिन्दवः ॥ ५५ ॥

(अन्वयः) सकोपस्य तस्य सामवादाः सहसा प्रतप्तस्य सर्पिषः तोयबिन्दवः इव प्रत्युत दीपकाः ॥ ५५ ॥

(सुबोधिनी) सकोपस्य (क्रुद्धस्य) तस्य (शिशुपालस्य) सामवादाः (प्रियवचांसि) सहसा (झटिति) प्रतप्तस्य (अग्निसंयोगेन अत्यन्तं द्रवीभूतस्य) सर्पिषः (घृतस्य) तोयबिन्दवः (जलविप्रुषः) इव, प्रत्युत (वैपरीत्यने) दीपकाः (उद्दीपनकराः) ॥ ५५ ॥

(समासः) सकोपस्य=कोपेन सह वर्तमानः सकोपः तस्य । साम्नः वादाः सामवादाः । तोयबिन्दवः=तोयस्य बिन्दवः तोयबिन्दवः ॥

(कोषः) कोपक्रोधामर्षरोषप्रतिघारुट् क्रुधौ स्त्रियावित्यमरः ॥५५॥

(व्याकरणम्) दीपकाः=दीपयन्ति इति दीपकाः=दीप+णिच् +ण्वुल् । प्रतप्तस्य=प्र+तप+क्त ॥ ५५ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्)······सामवादैः······बिन्दुभिः दीपकैः (भूयते) ॥ ५५ ॥

(सरलार्थः) तप्ते घृते जलबिन्दव इव क्रुद्धे शत्रौ साम दीपक-मेव ॥ ५५ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(भावार्थ) अति क्रोधी शिशुपालके साथ मीठी २ बातें उलटे उसके क्रोधको बढ़ाने वालीही होंगी, जैसे खौलते हुए घीमें ठण्ढे जलके छींटे ॥ ५५ ॥

गुणानामायथातथ्यादर्थं विप्लावयन्ति ये ।

अमात्यव्यञ्जना राज्ञां दूष्यास्ते शत्रुसंज्ञिताः ॥ ५६ ॥

(अन्वयः) गुणानां आयथातथ्यात् अर्थं ये विप्लावयन्ति अमात्यव्यञ्जनाः शत्रुसंज्ञिताः ते राज्ञां दूष्याः ॥ ५६ ॥

(सुबोधिनी) गुणानां (सन्ध्यादिषड्गुणानां) आयथातथ्यात् (अयथायोग्यात्) ये (जनाः) अर्थं (प्रयोजनं) विप्लावयन्ति (नाशयन्ति) अमात्यव्यञ्जनाः (सचिवलिङ्गिनः, तद्वेषधारिण इत्यर्थः) शत्रुसंज्ञिताः (छन्नशत्रवः) ते (कूटमन्त्रिणः) राज्ञां (भूभृतां) दूष्याः (गर्ह्याः) ॥ ५६ ॥

(समासः) आयथातथ्यात्=तथा अनतिक्रम्यः इति यथातथं, न यथातथं अयथातथं, अयथातथस्य भावः आयथातथ्यं, तस्मात् । अमात्यव्यञ्जनाः । व्यज्यते अनेन इति व्यञ्जनं, अमात्यानां व्यञ्जनं एषां ते अमात्यव्यञ्जनाः । शत्रुसंज्ञिताः=शत्रुरिति संज्ञा सञ्जाता एषां ते शत्रुसंज्ञिताः ॥ ५६ ॥

(कोषः) मन्त्री धीसचिवोऽमात्यः, इत्यमरः ॥ ५६ ॥

(व्याकरणम्)……अर्थः यैः विप्लाव्यते……व्यञ्जनान्…… संज्ञितान् तान् राजानः दूषयेयुः ॥ ५६ ॥

(सरलार्थः) अन्यस्मिन् प्रयोक्तव्ये अन्यदेव प्रयुज्य ये प्रभोः कार्यं विनाशयन्ति, ते प्रच्छन्नशत्रव एव मन्त्रिरूपेण चरन्ति ॥ ५६ ॥

(भावार्थ) जो अमात्य सन्धिविग्रहादि गुणोंका अनुचित प्रयोग कर राजाके कार्यको बिगाड़ देते हैं वे मन्त्रीका चोंगा पहने शत्रुही हैं, राजाको ऐसे मन्त्रीको निकाल देना चाहिये ॥ ५६ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

स्वशक्त्युपचये केचित् परस्य व्यसनेऽपरे ।
यानमाहुस्तदासीनं त्वामुत्थापयति द्वयम् ॥ ५७ ॥

(अन्वयः) केचित् स्वशक्त्युपचये यानं आहुः, अपरे परस्य व्यसने (यानं आहुः) तत् द्वयं "अपि" आसीनं त्वां उत्थापयति ।' ५७ ॥

(सुबोधिनी) केचित् (केचन वृद्धाः) स्वशक्त्युपचये (निजशक्त्यतिरेके) यानं (यात्रां) आहुः (कथयन्ति) अपरे (अन्ये च) परस्य (शत्रोः) व्यसने (विपत्तौ) यानं-आहुः, तत्-द्वयं '(प्रतिपादितं पक्षद्वयमपि) आसीनं (उपविष्टं, अनुद्युञ्जानमित्यर्थः) त्वां (भवन्तं) उत्थापयति (प्रेरयति) ॥ ५७ ॥

(समासः) स्वशक्त्युपचये=शक्यते अनया इति शक्तिः, स्वस्य शक्तिः स्वशक्तिः तस्याः उपचयः स्वशक्त्युपचयस्तस्मिन् ॥ ५७ ॥

(व्याकरणम्) आहुः=ब्रु+उस् (लट्+अन्ति) उत्थापयति= उद्+स्था+णिच्+लट्+ति ॥ ५७ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) कैश्चित् स्वशक्त्युपचये अपरैश्च परस्य व्यसने यानं ऊचे तेन द्वयेन आसीनः त्वं उत्थाप्यसे ॥ ५७ ॥

(सरलार्थः) केचन स्वशक्तिसमृद्धौ, केचिच्च रिपौ आपन्मग्ने शत्रुयात्रा कार्येति वदन्ति, तदद्य वयं समर्थाः शिशुपालश्चासमर्थ इत्युभयलाभादवश्यमेव चैद्यो यातव्यः ॥ ५७ ॥

(भाषार्थ) जब अपनी शक्ति बढ़ी रहे तब शत्रुपर चढ़ाई करना ऐसा कुछ नीतिकारोंका मत है और कुछ नीतिकारोंका मत ऐसा भी है कि जब शत्रु विपत्तिमें रहे तब चढ़ाई करना। इस समय शत्रुकी विपत्ति और अपनी शक्तिकी वृद्धि आदि दोनों ही बातें तुम्हें चढ़ाई करनेके लिये उठा रही है ॥ ५७ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

लिलङ्घयिषतो लोकानलङ्घ्यानलघीयसः ।
यादवाम्भोनिधीन् रुन्धे वेलेव भवतः क्षमा ॥ ५८ ॥

(अन्वयः) लोकान् लिलङ्घयिषतः अलङ्घ्यान् अलघीयसः यादवाम्भोनिधीन् भवतः क्षमा वेला इव रुन्धे ॥ ५८ ॥

(सुबोधिनी) लोकान् (जनान्) लिलङ्घयिषतः (लङ्घयितुमभिलषतः) अलङ्घ्यान् (लङ्घयितुमशक्यान्) अलघीयसः (अतिमहतः) यादवाम्भोनिधीन् (यादवपयोनिधीन्) भवतः (तव) क्षमा (शान्तिः) वेला (कूलं-इव) रुन्धे (प्रतिवध्नाति) ॥ ५८ ॥

(समासः) अलङ्घ्यान्=लङ्घयितुं शक्याः लङ्घ्याः न लङ्घ्याः अलङ्घ्याः, तान् । यादवाम्भोनिधीन्=निधीयन्ते एषु निधयः, अम्भसां निधयः अम्भोनिधयः, यादवाः अम्भोनिधयः इव इति यादवाम्भोनिधयस्तान् ॥ ५८ ॥

(कोषः) वेला कूलेऽपि वारिधेः, इत्यमरः ॥ ५८ ॥

(व्याकरणम्) लिलङ्घयिषतः=लङ्घयितुमिच्छतः लिलङ्घयिषतः = लङ्घ + णिच् + सन् + शतृ । अलघीयसः = अतिशयेन लघवः इति लघीयांसः (लघु + ईयसुन्) न लघीयांसः अलघीयांसः तान् । रुन्धे = रुध् + लट् + ते ॥ ५८ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) लिलङ्घयिषन्तः अलङ्घ्याः अलघीयांसः ········निधयः क्षमया वेलया······रुध्यन्ते ॥ ५८ ॥

(सरलार्थः) अतितेजस्विनो यादवाः केवलं भवतः क्षमां दृष्ट्वा उदासते ॥ ५८ ॥

(भाषार्थ) जगत्को भी लांघनेकी इच्छा रखनेवाले, पर स्वयं दुर्लङ्घ्य, बहुत बड़े यादवरूपी समुद्रोंको केवल आपकी क्षमाही तटकी तरह रोक रही है ॥ ५८ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विजयस्त्वयि सेनायाः साक्षिमात्रेऽपदिश्यताम् ।
फलभाजि समीक्ष्योक्ते बुद्धेर्भोग इवात्मनि ॥ ५६ ॥

(अन्वयः) सेनायाः विजयः फलभाजि साक्षिमात्रे "एव" त्वयि समीक्ष्योक्ते आत्मनि बुद्धेः भोगः इव अपदिश्यताम् ॥ ५६ ॥

(सुबोधिनी) सेनायाः (अनीकिन्याः) विजयः (जयः) साक्षिमात्रे (उदासीने एव) फलभाजि (फलभोक्तरि) त्वयि (भवति) समीक्ष्योक्ते (साङ्ख्योक्ते) आत्मनि (पुरुषे) बुद्धेः (महत्तत्त्वस्य मूलप्रकृतेः प्रथमविकारस्य कर्त्र्याः) भोगः (सुखदुःखानुभवः) इव, अपदिश्यतां (व्यवहृयताम्) ॥ ५६ ॥

(समासः) समीक्ष्योक्ते = समीक्ष्येण उक्तः समीक्ष्योक्तः तस्मिन् ॥ ५१ ॥

(कोषः) पृतनाऽनीकिनी सेना । साङ्ख्यं समीक्ष्यमित्यमर-त्रिकाण्डशेषौ ॥ ५६ ॥

(व्याकरणम्) अपदिश्यतां = अप + दिश् + लोट् + ताम् । फलभाजि = फलं भजत इति फलभाजि = फल = भज + ण्वि ॥ ५९ ॥

(सरलार्थः) यथा पुष्करपलाशवन्निर्लेपेऽपि पुरुषे साक्षिमात्रे सत्येव तत्र महत्तत्वस्य मूलप्रकृतेः सुखदुःखानुभवः व्यवहृयते, परन्तु सः न यथार्थतोऽनुभविता भवति. तथैव केवलं त्वयि साक्षिमात्रे यादवा एव तं जेष्यन्ति तदादिश्यतां विजययात्रा ॥ ५९ ॥

(भावार्थ) सांङ्ख्य दर्शनके मतमें बुद्धि (महत्तत्व) का सारा प्रपञ्च जैसे पुरुषमें समझा जाता है, यद्यपि वह कुछ करता नहीं, उदासीनही रहता है; उसी तरह आप भी केवल उदासीनही रहें, पर साक्षीभूत रहें, विजयतो आपकी सेना ही कर लेगी ॥ ५६ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हते हिडिम्बरिपुणा राज्ञि द्वैमातुरे युधि ।
चिरस्य मित्रव्यसनी सुदमो दमघोषजः ॥ ६० ॥

(अन्वयः) हिडिम्बरिपुणा द्वैमातुरे राज्ञि युधि हते चिरस्य मित्रव्यसनी दमघोषजः सुदमः ॥ ६० ॥

(सुबोधिनी) हिडिम्बरिपुणा (भीमेन) द्वैमातुरे—राज्ञि (जरासन्धे) युधि (रणे) हते (मारिते) "सति" चिरस्य (चिरकालात्) मित्रव्यसनी (सुहृद्भ्रंशवान्) दमघोषजः (शिशुपालः) सुदमः (एकाकित्वात्सुसाध्यः) ॥ ६० ॥

(समासः) हिडिम्बस्य रिपुः हिडिम्बरिपुः तेन । द्वैमातुरे = द्वयोर्मात्रोरपत्यं पुमान् द्वैमातुरः तस्मिन् । मित्रव्यसनी = मित्रस्य व्यसनं मित्रव्यसनं, तत् अस्ति अस्य इति मित्रव्यसनी । सुखेन दम्यते इति सुदमः । दमघोषजः = दमघोषात् जातः इति दमघोषजः ॥ ६० ॥

(वाच्यपरिवर्त्तनम्) व्यसनिना……घोषजेन सुदमेन (भूयते) ॥

(सरलार्थः) अस्य शत्रोः परमं मित्रं मगधेश्वरः आसीत् । सच भीमेन हतः, तदधुना मित्ररहितः अत एव भृशं शोकसन्तप्तोऽयं सुखेन वध्यः वर्तते ॥ ६० ॥

(कोषः) चिराय चिररात्राय चिरस्याद्याश्चिरार्थकाः, व्यसनं विपदि भ्रंशे, इत्यमरौ ॥ ६० ॥

(भाषार्थ) भीमसेनने इसके मित्र जरासन्धको युद्धमें मार डाला है, अब मित्रबलहीन इसका मारना कठिन नहीं है ॥

नीतिरापदि यद्गम्यः परस्तन्मानिनो ह्रिये ।
विधुर्विधुन्तुदस्येव पूर्णस्तस्योत्सवाय सः ॥ ६१ ॥

(अन्वयः) परः आपदि गम्यः नीतिः (इति) यत् तत् मानिनः ह्रिये । पूर्णः सः तस्य, विधुः विधुन्तुदस्य इव उत्सवाय (भवतीति शेषः) ॥ ६१ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(सुबोधिनी) परः (शत्रुः) आपदि (आपत्समये) गम्यः (गमनार्हः) नीतिः (नयः) इति, यत्, तत् (आपदि गमनं) मानिनः (शौर्याभिमानिनः, ह्रये (लज्जाकरम्) "किन्तु" पूर्णः (उपचितगात्रः) सः (शत्रुः) तस्य (मानिनः) विधुः (चन्द्रः) विधुन्तुदस्य (राहोः) इव, उत्सवाय (आनन्दाय) भवतीति शेषः ॥ ६१ ॥

(समासः) मानिनः=मानः अस्ति अस्य इति मानी तस्य। विधुन्तुदः=विधुं तुदतीति विन्धुतुद् तस्य ॥ ६१ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) परेण······गम्येन (भूयते) नीत्या (भूयते)······येन (भूयते) तेन······ह्रये (भूयते) पूर्णेन तेन विधुना (भूयते) ॥ ६१ ॥

(कोषः) तमस्तु राहुः स्वर्भानुः सैंहिकेयोऽसुरद्रुहाम्, इत्यमरः ॥

(सरलार्थः) वस्तुतस्तु–पर आपदि प्रहर्तव्य इत्येषा दुर्बलानां नीतिः वयंतु "बलवानेव यातव्यः" इति मन्यामहे ॥ ६१ ॥

(भाषार्थ) "परन्तु सच यदि पूछा जाय तो" विपत्तिमें पड़े हुए शत्रुपर चढ़ाई करना शौर्याभिमानी वीर पुरुषके लिये लज्जाकी बात है। राहु भी पूर्ण चन्द्रमाको ही ग्रसता है ॥

अन्यदुच्छृङ्खलं सत्वमन्यच्छास्त्रनियन्त्रितम् ।
सामानाधिकरण्यं हि तेजस्तिमिरयोः कुतः ॥ ६२ ॥

(अन्वयः) उच्छृङ्खलं सत्वं अन्यत् शास्त्रनियन्त्रितं (सत्वं) अन्यत्। तेजस्तिमिरयोः सामानाधिकरण्यं कुतः हि ॥ ६२ ॥

(सुबोधिनी) उच्छृङ्खलं (अनर्गलं, प्रसह्यपीडनक्षममिति भावः) सत्वं (बलं) अन्यत् (भिन्नं) यथाह—कामन्दकः— "प्रायेण सन्तो व्यसने रिपूणां यातव्यमित्येव समादिशन्ति।" शास्त्रनियन्त्रितं (मन्वादिशास्त्रप्रतिपादितं, सत्वं, अन्यत्।)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यथाह मनुः—"तदा यायाद्विगृह्यैव व्यसने चोत्थिते रिपोः ," अत्र दृष्टान्तमाह—तेजस्तिमिरयोः (आलोकान्धकारयोः) सामानाधिकरण्यं (एकाश्रयत्वं) कुतः (कथं सम्भवति) ॥६२॥

(मासः) उच्छृङ्खलं = उद्गता शृङ्खला यस्य तद् उच्छृङ्खलं। शास्त्रनियन्त्रितं = शास्ति अनेन इति शास्त्रं, तेन नियन्त्रितं। तेजस्तिमिरयोः=तेजश्च तिमिरञ्च तेजस्तिमिरे, तयोः। सामानाधिकरण्यं = अधिक्रियते अस्मिन्निति अधिकरणं, समानं अधिकरणं ययोः इति समानाधिकणे तयोः भावः सामानाधिकरण्यम् ॥ ६२ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) उच्छृङ्खलेन सत्वेन अन्येन (भूयते··· ······यन्त्रितेन सत्वेन अन्येन (भूयते)······करण्येन (भूयते) ॥६२॥

(कोषः) अन्धकारोऽस्त्रियां ध्वान्तं तमिस्रं तिमिरं तमः, इत्यमरः ॥

(सरलार्थः) राजनयविद्भिः प्रतिपादितं बलं अन्यदेव, शृङ्खलारहितं अनियन्त्रितञ्च बलं अन्यदेव ॥ ६२ ॥

(भाषार्थ) नीतिके विरुद्ध जबर्दस्ती शत्रुपर चढ़ाई कर उसे सताना आदि उच्छृङ्खल बल और चीज है और नीतिकी मर्यादाके अनुसार—शत्रु जब विपत्तिमें रहे उस समय उसपर चढ़ाई करना आदि बल और चीज है—प्रकाश और अन्धकारकी तरह इन दोनोंका एकत्र रहना असम्भव है ॥ ६२ ॥

इन्द्रप्रस्थगमस्तावत् कारि मा सन्तु चेदयः।
आस्माकदन्तिसान्निध्याद्वामनीभूतभूरुहः ॥ ६३ ॥

(अन्वयः) इन्द्रप्रस्थगमः मा कारि तावत्। चेदयः आस्माकदन्तिसान्निध्यात् वामनीभूतभूरुहः सन्तु ॥ ६३ ॥

(सुबोधिनी) इन्द्रप्रस्थगमः (पार्थराजधान्याः प्रस्थानं) मा कारि तावत्, (न क्रियताम्) चेदयः (चेदिदेशाः) आस्माकदन्तिसान्निध्यात् (स्वीयगजसामीप्यात्) वामनीभूतभूरुहः (खर्वीभूतवृक्षाः) सन्तु (भवन्तु) ॥ ६३ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(समासः) अस्माकमिमे आस्माकाः, प्रशस्तो दन्तो एषां ते दन्तिनः, आस्माकाः दन्तिनः आस्माकदन्तिनः, सन्निधिरेव सान्निध्यं आस्माकदन्तिनां सान्निध्यं आस्माकदन्तिसान्निध्यं, तस्मात्। वामनीभूतभूरुहः=भुवि रोहन्ति इति भूरुहः, अवामनाः वामनाः सम्पद्यमानाः भूता इति वामनीभूताः, वामनीभूता भूरुहः येषान्ते वामनीभूतभूरुहः ॥

(व्याकरणम्) सन्तु=अस् + लोट् + अन्तु ॥ ६३ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्)······गमम्······कार्यीः। चेदिभिः,······ ·········भुरुड्भिः भूयताम् ॥ ६३ ॥

(सरलार्थः) भवतु नाम युधिष्ठिरस्य यागः। वयं चेदिदेशानेव यास्यामः। अस्माकं दन्तिनः तत्र यथेच्छं विहृत्य तत्रत्यान् वृक्षान् छिन्नान् भिन्नाँश्च कुर्वन्तु ॥ ६३ ॥

(कोषः) वृक्षो महीरुहः शाखी विटपी पादपस्तरुः, खर्वो ह्रस्वश्च वामन इत्यमरः ॥ ६३ ॥

(भाषार्थ) इसलिये हस्तिनापुरकी यात्रा रोक दीजिये और चेदि देशके वृक्ष हम लोगोंके हाथियोंसे छोटी २ डारवाले हो जायँ। पेड़ोंके डारोंकी टेहुनी खाकर उन्हें नष्ट कर डालें ॥

निरुद्धवीवधासारप्रसारा गा इव व्रजम्।
उपरुन्धन्तु दाशार्हाः पुरीं माहिष्मतीं द्विषः ॥ ६४ ॥

(अन्वयः) दाशार्हाः निरुद्धवीवधासारप्रसाराः (सन्तः) व्रजं गाः इव माहिष्मतीं पुरीं द्विषः उपरुन्धन्तु ॥ ६४ ॥

(सुबोधिनी) दाशार्हाः (दशार्हदेशवासिनो यादवाः) निरुद्धवीवधासारप्रसाराः (निरुद्धः=प्रतिरुद्धः, वीवधः=धान्यादिप्राप्तिः, आसारः=सुहृद्बलं, प्रसारः=तृणकाष्ठादीनां प्रवेशः यैरेवंभूताः सन्तः) व्रजं (गोष्ठं) गाः (धेनून्) इव, माहिष्मतीं, पुरीं (नगरीं) द्विषः शत्रून्) उपरुन्धन्तु (आवृण्वन्तु) ॥ ६४ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(समासः) दाशार्हाः=दशार्हानां इमे दाशार्हाः। माहिष्मतीं= महिषाणां निवास इति महिष्मान् (देशः) तत्र भवा पुरी माहिष्मती। महिष्मत्+अण् स्त्रियां ॥ ६४ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) दाशार्हैः......प्रसारैः (सद्भिः) व्रजः... ......माहिष्मती पुरी......उपरुध्यताम् ॥ ६४ ॥

(व्याकरणम्) उपरुन्धन्तु=उप+रुध+लोट्+अन्तु। दाशार्हाः=दशार्ह+अण् ॥ ६४ ॥

(कोषः) धान्यादेर्वीवधः प्रासिरासारस्तु सुहृद्बलम्। प्रसारस्तृणकाष्ठादेः प्रवेशः, इति वैजयन्ती, ॥ ६४ ॥

(सरलार्थः) गोष्ठे यथा गाव उपरुन्ध्यन्ते तथैव यादवा अपि माहिष्मत्यां रिपून् उपरुन्धन्तु ॥ ६४ ॥

(भाषार्थ) यादव लोग—गल्ला, मित्रोंकी सेना और लकड़ी आदिका आना रोककर माहिष्मतीमें शत्रुओं को घेर लें। जैसे—दूध दही ढोनेवाले वहंगी वालोंका आना जाना रोककर गोकुलमें गायें घेरली जाती हैं ॥ ६४ ॥

यजतां पाण्डवः स्वर्गमवत्विन्द्रस्तपत्विनः।
वयं हनाम द्विषतः सर्वः स्वार्थं समीहते ॥ ६५ ॥

(अन्वयः) पाण्डवः यजतां, इन्द्रः स्वर्गं अवतु, इनः तपतु, वयं द्विषतः हनाम "तथाहि" सर्वः स्वार्थं समीहते ॥ ६५ ॥

(सुबोधिनी) पाण्डवः (युधिष्ठिरः) यजतां (यागं करोतु) इन्द्रः (पुरन्दरः) स्वर्गं (स्वः) अवतु (रक्षतु) इनः (सूर्यः) तपतु (प्रकाशतां) वयमपि, द्विषतः (शत्रून्) हनाम (मारयाम) तथाहि—सर्वः (सकलो जनः) स्वार्थं (स्वप्रयोजनं) समीहते (अनुसन्धत्ते) ॥ ६५ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(वाच्यपरिवर्तनम्) पाण्डवेन इज्यताम्, इन्द्रेण स्वर्गः अव्यताम्, इनेन तप्यताम् अस्माभिः द्विषन्तः हन्यन्ते, सर्वेण स्वार्थः समीह्यते ॥ ६५ ॥

(व्याकरणम्) यजताम्=यज् + लोट् + ताम् । पाण्डवः= पाण्डोरपत्यं पुमान् [पाण्डवः=पाण्डु + अण् । अवतु=अव + लोट् + तु तपतु=तप् + लोट् + तु । हनाम = हन्=लोट् + आम ॥ ६५ ॥

(सरलार्थः) एकतः भगवान् दिननाथस्तपति, तदितरतः स्वर्गमिन्द्रो रक्षति, धर्मराजो युधिष्ठिरः अपि यजतीत्यतोऽनुमीयते यदेतेषां दिननाथादीनां स्वार्थेषु एव प्रवृत्तिरतोऽस्माभिरपि स्वार्थसाधन एव प्रवर्तितव्यम् । एहि चेदीनेन याम ॥ ६५ ॥

(भाषार्थ) लिखे अनुसार कार्यकी दिशा निश्चित होनेपर किसीके स्वार्थमें बाधा न पहुँचेगी—पाण्डव यज्ञ करें, इन्द्र स्वर्गकी रक्षा करें, सूर्य तपते रहें और हम लोग भी अपने शत्रुको मारें क्योंकि सभी अपना २ स्वार्थ चाहते हैं ॥ ६५ ॥

प्राप्यतां विद्युतां सम्पत् सम्पर्कादर्करोचिषाम् ।
शस्त्रैर्द्विषच्छिरश्छेदप्रोच्छलच्छोणितोक्षितैः ॥ ६६ ॥

(अन्वयः) द्विषच्छिरश्छेदप्रोच्छलच्छोणितोक्षितैः शस्त्रैः अर्करोचिषां सम्पर्कात् विद्युतां सम्पत् प्राप्यताम् ॥ ६६ ॥

(सुबोधिनी) द्विषच्छिरश्छेदप्रोच्छलच्छोणितोक्षितैः (शत्रुमस्तकच्छेदादुद्गच्छच्छोणितसिक्तैः) शस्त्रैः (आयुधैः) अर्करोचिषां (सूर्यकान्तीनां) सम्पर्कात् (सम्बन्धात्) विद्युतां (तडितां) सम्पत् (लक्ष्मीः) प्राप्यताम् (लभताम्) ॥ ६६ ॥

(समासः) द्विषच्छिरश्छेदप्रोच्छलच्छोणितोक्षितैः=द्विषतां शिरांसि द्विषच्छिरांसि, तेषां छेदः तेन प्रोच्छलत् द्विषच्छिरश्छेदप्रोच्छलत्, तच्च तच्छोणितं द्विषच्छिरश्छेदप्रोच्छलच्छोणितं तेन उक्षितानि तैः । अर्करोचिषां=अर्कस्य रोचींषि अर्करोचींषि तेषाम् ॥ ६६ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(व्याकरणम्) प्राप्यताम्=प्र + आप + लोट + ताम् ॥ ६६ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) उचितानि शस्त्राणि······सम्पदं प्राप्नुवन्तु ॥

(सरलार्थः) अस्माकं खड्गाः अरीणां शिरांसि हठात् छिन्दन्तु, तेषां रुधिरैः सिक्तास्ते दिनकरकिरणसम्पर्कात् विद्युदुन्मेषशोभामाप्नुवन्तु ॥६६॥

(भाषार्थ) "युद्धमें" शत्रुओंके सिर कटनेपर उड़ते हुए खूनके छरोंसे भींगे शस्त्रोंको सूर्यके किरणोंके सम्बन्धसे विजलीकी तरह शोभा प्राप्त हो ॥ ६६ ॥

इति संरम्भिणो वाणीर्वलस्यालेख्यदेवताः ।
सभाभित्तिप्रतिध्वानैर्भयादन्ववदन्निव ॥ ६७ ॥

(अन्वयः) इति संरम्भिणः वलस्य वाणीः आलेख्यदेवताः सभाभित्तिप्रतिध्वानैः भयात् अन्ववदन् इव ॥ ६७ ॥

(सुबोधिनी) इति (इत्थं) संरम्भिणः (क्षुभितस्य) वलस्य (वलभद्रस्य) वाणीः (वाचः) आलेख्यदेवताः (चित्रलिखितदेवताः) सभाभित्तिप्रतिध्वानैः (सदोगृहभित्तीनां प्रतिध्वनिभिः) भयात् (भीतेः) अन्ववदन् (अन्वमोदयन् इव) ॥

(समासः) सभाभित्तिप्रतिध्वानैः=सद्भिः भातीति सभा, सभायाः भित्तयः सभाभित्तयः, तासां प्रतिध्वानाः तैः । आलेख्यदेवताः=आलेख्यानां देवताः आलेख्यदेवताः ॥ ६७ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्)·········वाण्यः·········देवताभिः·············अन्वौद्यन्त ॥ ६७ ॥

(व्याकरणम्) अन्ववदन्=अनु + वद + लङ् + अन् ॥ ६७ ॥

(सरलार्थ) बलदेवः तूष्णीम्बभूव । मन्त्रणागृहभित्तितश्च प्रतिध्वनयः प्रादुर्भूताः ॥ ६७ ॥

(भाषार्थ) इस प्रकार बलरामकी वाणी समाप्त होनेपर सभाभित्तिमें लिखित देवताओंने भी सभाभवनकी प्रतिध्वनिके वहाने भयसे मानों इन्हींकी बातोंका समर्थन किया ॥ ६७ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

निशम्य ताः शेषगवीरभिधातुमधोक्षजः ।
शिष्याय बृहतां पत्युः प्रस्तावमदिशद्दृशा ॥६८॥

(अन्वयः) अधोक्षजः ताः शेषगवीः निशम्य बृहतां पत्युः शिष्याय अभिधातुं दृशा प्रस्तावं अदिशत् ॥ ६८ ॥

(सुबोधिनी) अधोक्षजः (हरिः) ताः (पूर्वोक्ताः) शेषगवीः (शेषावतारभूतबलभद्रवाचः) निशम्य (श्रुत्वा) बृहतां (वाचां) पत्युः (स्वामिनः) बृहस्पतेरित्यर्थः, शिष्याय (उद्धवाय) अभिधातुं (कथयितुं) दृशा (अपाङ्गसंज्ञया) प्रस्तावं (अवसरं) अदिशत् (अतिसृष्टवान्) ॥ ६८ ॥

(समासः) अधोक्षजः=अक्षेभ्यः जातमित्यक्षजं, अधः (अधःकृतं) अक्षजं (इन्द्रियजन्यं ज्ञानं) येन सः अधोक्षजः । शेषगवीः = शेषस्य गावः शेषगव्यः ताः ॥ ६८ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) अधोक्षजेन प्रस्तावः अदिश्यत ॥ ६८ ॥

(व्याकरणम्) निशम्य=नि + शम् + ल्यप् । अभिधातुं = अभि + धा + तुमुन् । अदिशत्=दिश + लङ् + तिप् ॥ ६८ ॥

(कोषः) प्रस्तावः स्यादवसर इत्यमरः ॥ ६८ ॥

(सरलार्थः) अनन्तरं हरिः बलभद्रवचांसि निशम्य उद्धवाय वचनावसरं ददौ ॥ ६८ ॥

(भाषार्थ) श्रीकृष्णने इस तरह बलरामकी वाणी सुनकर बृहस्पतिके शिष्य उद्धवको कहनेके लिये आखोंसे इशारा किया ॥

भारतीमाहितभरामथानुद्धतमुद्धवः ।
तथ्यामुतथ्यानुजवज्जगादाग्रे गदाग्रजम् ॥६९॥

(अन्वयः) अथ उद्धवः आहितभरां तथ्यां भारतीं अनुद्धतं गदाग्रजं अग्रे उतथ्यानुजवत् जगाद ॥ ६९ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(सुबोधिनी) अथ (कृष्णस्य अनुज्ञानन्तरं) उद्धवः, आहितभरां (प्राप्तार्थगौरवां) तथ्यां (सत्यां) भारतीं (वाचं) अनुद्धतं (गर्वरहितं, यथा तथा) गदाग्रजं (कृष्णं) अग्रे (पुरतः) उतथ्यानुजवत् (उतथ्यनाम्नः महर्षेरनुज इव) जगाद (अवोचत्)॥ ६९॥

(समासः) आहितभरां=आहितः भरः (अर्थगौरवं) यस्यां सा तां। अनुद्धतं=न उद्धतं अनुद्धतं। उतथ्यानुजवत्=अनु=पश्चाज्जात इति अनुजः ÷ उतथ्यस्य अनुजः उतथ्यानुजः, तेन तुल्यं इति उतथ्यानुजवत्। गदाग्रजं=अग्रे जात इत्यग्रजः, गदस्य अग्रजः गदाग्रजः॥ ६९॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) अथ उद्धवेन आहितभरा तथा भारती…… ………जगदे॥ ६९॥

(सरलार्थः) उद्धवोऽपि भाग्येन वचनावसरं लब्ध्वा हरेः सम्मुखी-भूय सारगर्भामिमां वाचमुवाच॥ ६९॥

(कोषः) सत्यं तथ्यमृतं सम्यगमूनि त्रिषु तद्वति, इत्यमरः॥ ६९॥

(भाषार्थ) उसके बाद उद्धव अर्थगौरववाली यथार्थ अपनी वाणीको बड़े नम्र भावसे श्रीकृष्ण के सामने बृहस्पति के समान गम्भीर भावसे बोले॥ ६९॥

सम्प्रत्यसाम्प्रतं वक्तुमुक्ते मुसलपाणिना।
निर्धारितेऽर्थे लेखेन खलूक्त्वा खलु वाचिकम्॥७०॥

(अन्वयः) सम्प्रति मुसलपाणिना उक्ते (सति) वक्तुं असाम्प्रतम्। लेखेन अर्थे निर्धारिते सति वाचिकं खलु उक्त्वा खलु॥ ७०॥

(सुबोधिनी) सम्प्रति (इदानीं) मुसलपाणिना (बलभद्रेण) उक्ते (कथिते) सति, वक्तुं (निगदितुं) असाम्प्रतं (अनुचितं) लेखेन (पत्रेण) अर्थे (वाच्ये) निर्धारिते

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(निर्णीते सति) वाचिकं (सन्देशवचनं) खलु, उक्त्वा खलु (न वाच्यं खलु इत्यर्थः) ॥ ७० ॥

(समासः) मुसलपाणिना=मुसलं पाणौ यस्य स मुसलपाणिः तेन । लेखेन=लिख्यत इति लेखः तेन । असाम्प्रतं=न साम्प्रतं असाम्प्रतम् ।

(कोषः) निषेधवाक्यालङ्कारे जिज्ञासानुनये खलु, साम्प्रतन्तूचितेऽधुना इत्यमरौ ॥ ७० ॥

(व्याकरणम्) वक्तुम्=वच् + तुमुन् । निर्धारिते=निर् + धृ + णिच् + क्त । वाचिकं=वाच् + स्वार्थे ठक् ॥ ७० ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्)······असाम्प्रतं भूयते तदा ॥ ७० ॥

(सरलार्थः) बलभद्रेण यदा यानमङ्गीकृतं तदा मदुक्तेन किम्भविष्यति । यानप्रस्तावोऽपि सर्वैः स्वीकृतः । लिपिबद्धश्च सञ्जातः ॥ ७० ॥

(भाषार्थ) लिखापढ़ीके द्वारा एक बात पक्की ठहर जानेपर केवल सूखा २ जबानी जमा खर्च—जैसे व्यर्थ होता है, इसी तरह बलभद्रके कहनेके बाद जब एक बात तैं हो चुकी, तो अब पुनः उस विषयमें मेरा कुछ कहना व्यर्थ ही है ॥ ७० ॥

तथापि यन्मय्यपि ते गुरुरित्यस्ति गौरवम् ।
तत्प्रयोजककर्तृत्वमुपैति मम जल्पतः ॥ ७१ ॥

(अन्वयः) तथापि ते मयि अपि गुरुः इति यत् गौरवं अस्ति तत् जल्पतः मम प्रयोजककर्तृत्वं उपैति ॥ ७१ ॥

(सुबोधिनी) तथापि (बलेन निर्णीतेऽपि) ते (तव) मयि (मद्विषयेऽपि) गुरुः (आचार्यः) इति (इत्थं) यत् (गौरवं) अस्ति (वर्तते) तत् (गौरवं) जल्पतः (कथयतः) मम (मे) प्रयोजककर्तृत्वं (प्रेरकत्वं) उपैति (प्राप्नोति) ॥

(समासः) गौरवं=गुरोर्भावः गौरवं । प्रयोजककर्तृत्वं=प्रयोजयति इति प्रयोजकः, स चासौ कर्ता प्रयोजककर्ता तस्य भावः प्रयोजककर्तृत्वम् । जल्पतीति जल्पन् तस्य ॥ ७१ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(वाच्यपरिवर्तनम्) येन गौरवेण भूयते तेन उपेयते ।। ७१ ।।

(व्याकरणम्) उपैति = उप + इ + लट् + ति । जल्पतः = जल्प + शतृ ।। ७१ ।।

(सरलार्थः) तथापि मयि "अयं मे गुरुः" इति तवादारातिशयमवलोक्य किञ्चिद्वक्तुं समुत्सुकोऽस्मि ।। ७१ ।।

(भाषार्थ) फिर भी तुम्हारी हमारे में गुरु जैसी जो श्रद्धा है उसीसे प्रेरित होकर मैं कुछ कहता हूं ।। ७१ ।।

वर्णैः कतिपयैरेव ग्रथितस्य स्वरैरिव ।
अनन्ता वाङ्मयस्याहो गेयस्येव विचित्रता ।। ७२ ।।

(अन्वयः) कतिपयैः एव वर्णैः स्वरैः इव ग्रथितस्य वाङ्मयस्य गेयस्य इव विचित्रता अनन्ता अहो ।। ७२ ।।

(सुबोधिनी) कतिपयैः (परिमितैः) एव, वर्णैः (पञ्चाशन्मातृकाक्षरैः) परिमितैः, सप्तभिः एव, स्वरैः, निपादादिभिः) इव, ग्रथितस्य (गुम्फितस्य) वाङ्मयस्य (शब्दजालस्य) गेयस्य (गानस्य) इव, विचित्रता (वैचित्र्यं) अनन्ता (अपरिमिता) अहो (आश्चर्यं) ।। ७२)

(समासः) वाङ्मयस्य = वागेव इति वाङ्मयं तस्य । गेयस्य = गीयत इति गेयं तस्य । विचित्रता = विशेषेण चित्रं विचित्रं, तस्य भावः विचित्रता । अनन्ता = अविद्यमानः अन्तः अस्याः सा ।। ७२ ।।

(वाच्यपरिवर्तनम्)······विचित्रया अनन्तया भूयते ।। ७२ ।।

(कोषः) निषादर्षभगान्धारषड्जमध्यमधैवताः । पञ्चमश्चेत्यमी सप्त तन्त्रीकण्ठोत्थिताः स्वराः । इत्यमरः ।। ७२ ।।

(सरलार्थः) बलदेवेन उक्तेऽपि मदुक्तौ पुनरुक्तिप्रसङ्गो न भविष्यति, यतः एकमेव वस्तु पञ्चाशन्मातृकाक्षराणां निषादादिसप्तस्वराणाञ्च रचनावैचित्र्यात् बहुधा वर्णयितुं शक्यते ।। ७२ ।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(भाषार्थ) बलरामके द्वारा इस विषय पर काफी टीका-टिप्पणी होनेपर यद्यपि अब इस विषयमें कुछ भी कहना बाकी नहीं रहा है फिर भी केवल निषादादि सात स्वरोंसे सङ्गीत शास्त्रके कथनके प्रकार जैसे असंख्य हैं उसी तरह केवल पचास अकारादिवर्ण मातृकाओंसे रचित शब्द प्रयोगके प्रकार भी अनन्त हैं—इसलिये बलरामकी उक्तिमें और विशेषता लानेके लिये मेरा कुछ कहना नितरां असंगत नहीं है।

बह्वपि स्वेच्छया कामं प्रकीर्णमभिधीयते।
अनुज्झितार्थसम्बन्धः प्रबन्धो दुरुदाहरः॥ ७३॥

(अन्वयः) स्वेच्छया प्रकीर्णं बहु अपि कामम् अभिधीयते। अनुज्झितार्थसम्बन्धः प्रबन्धः दुरुदाहरः॥ ७३॥

(सुबोधिनी) स्वेच्छया (यदृच्छया, स्वप्रतिभानुसारेण वा) प्रकीर्णं (असङ्गतं) बहु अपि (अधिकमपि) कामं (यथेष्टं) अभिधीयते (कथ्यते) अनुज्झितार्थसम्बन्धः (अपरित्यक्तपदार्थसम्बन्धः) प्रबन्धः (सन्दर्भः) दुरुदाहरः (दुर्वचः)॥

(समासः) स्वेच्छया = स्वस्य इच्छा स्वेच्छा तया। अनुज्झितार्थसम्बन्धः = न उज्झितः, अनुज्झितः, अर्थेन सम्बन्धः अर्थसम्बन्धः, अनुज्झितः अर्थसम्बन्धः यस्मिन् सः। प्रबन्धः = प्रबध्यते (ग्रथ्यते) इति प्रबन्धः, दुरुदाहरः = दुःखेन उदाह्रियत इति दुरुदाहरः॥ ७३॥

(व्याकरणम्) अभिधीयते=अभि + धा + लट् + ते॥ ७३॥

(वाच्यपरिवर्तनम्)·········अभिदधति···(जनाः)···सम्बन्धेन प्रबन्धेन दुरुदाहरेण भूयते॥ ७३॥

(कोषः) स्वेच्छा यदृच्छा स्वच्छन्दः स्वैरताचेति ते समाः। इत्यमरः॥

(सरलार्थः) असम्बद्धस्य प्रबन्धस्य वक्तारः सुलभाः खलु पूर्वोत्तरसम्बन्धयुतः प्रबन्धस्तु कदाचिदेव केनचिदुच्यते॥ ७३॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(भाषार्थ) मन गढंत इधर उधरकी उटपटांग बातें कोई भी जितनी चाहे उतनी कह सकता है परन्तु पूर्वापर सम्बन्धसे युक्त विषयका प्रतिपादन करना बहुत ही कठिन है ॥ ७३ ॥

म्रदीयसीमपि घनामनल्पगुणकल्पिताम्।
प्रसारयन्ति कुशलाश्चित्रां वाचं पटीमिव ॥ ७४ ॥

(अन्वयः) कुशलाः म्रदीयसीं अपि घनां अनल्पगुणकल्पितां चित्रां वाचं पटीं इव प्रसारयन्ति ॥ ७४ ॥

(सुबोधिनी) कुशलाः (चतुराः वक्तारः) म्रदीयसीं (अतिसुकुमाराक्षरां श्लक्ष्णतराञ्च) घनां (अर्थकठिनां अन्यत्र कदलीदलसन्निभां) अनल्पगुणकल्पितां (समधिकतया श्लेषादिना रचितां अन्यत्र बहुतन्तुनिर्मितां) चित्रां (शब्दादिविचित्रां अन्यत्र चित्रविचित्ररूपां च) वाचं (वाणीं) पटीं (शाटीं) इव, प्रसारयन्ति विस्तारयन्ति ॥ ७४ ॥

(समासः) म्रदीयसीं=अतिशयेन मृद्वी म्रदीयसी तां। अनल्पगुणकल्पितां=न अल्पाः अनल्पाः, अनल्पाः गुणाः अनल्पगुणाः, तैः कल्पिता ताम् ॥ ७४ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) कुशलैः म्रदीयसी घना कल्पिता चित्रा वाक् पटी...प्रसार्यते ॥ ७४ ॥

(व्याकरणम्) म्रदीयसी=मृदु+ईयसुन्। प्रसारयन्ति=प्र+सृ+णिच्+लट्+अन्ति ॥ ७४ ॥

(सरलार्थः) सुचतुरा एव कोमलां बहुगुणगरीयसीं सारगर्भां गिरं विस्तारयितुं समर्थाः ॥ ७४ ॥

(भाषार्थ) अत्यन्त मुलायम फिर भी केलेके गाभकी तरह घनी अनेक प्रकार के सूतसे बनी रङ्गविरङ्गी साड़ीको जैसे मजे हुए हाथवाला ही जुलाहा (कपड़ा बुनने वाला) बना सकता है उसी तरह अत्यन्त सुकुमार अक्षर वाली

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पर अर्थ कठिन और माधुर्य गुणोंसे युक्त लोक विलक्षण वाणीको कुशलवक्ता ही कह सकता है ॥ ७४ ॥

विशेषविदुषः शास्त्रं यत्तवोद्ग्राह्यते पुरः ।
हेतुः परिचयस्थैर्ये वक्तुर्गुणनिकैव सा ॥ ७५ ॥

(अन्वयः) विशेषविदुषः तव पुरः शास्त्रं उद्ग्राह्यते (इति) यत् सा वक्तुः परिचयस्थैर्ये हेतुः गुणनिका एव ॥ ७५ ॥

(सुबोधिनी) विशेषविदुषः (विशेषज्ञस्य) तव (भवतः) पुरः (अग्रे) शास्त्रं (नीतिशास्त्रं) उद्ग्राह्यते (उपन्यस्यते) यत्, सा (तदुद्ग्राहणम्) "विधेयप्राधान्यात् स्त्रीलिङ्गत्वम्" वक्तुः (उद्ग्राहयितुः) परिचयस्थैर्ये (अभ्यासदार्ढ्ये) हेतुः (कारणम्) गुणनिका (अभ्यास एव) ॥ ७५ ॥

(समासः) विशेषविदुषः=विशेषं वेत्ति इति विशेषवित् तस्य । परिचयस्थैर्ये=स्थिरस्य भावः स्थैर्यं, परिचयस्य स्थैर्यं परिचयस्थैर्यं तस्मिन् ॥

(कोषः) उद्ग्राहितमुपन्यस्तम् इति वैजयन्ती, अभ्यासे गुणनी योग्येति त्रिकाण्डशेषः ॥ ७५ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्)……उद्ग्राहयामि (इति) येन (भूयते) तेन…हेतुना गुणनिकया (भूयते) ॥ ७५ ॥

(व्याकरणम्) उद्ग्राह्यते = उद् + ग्रह + चिण् + ते ॥ ७५ ॥

(सरलार्थः) शास्त्रतत्त्ववेत्ता भवान्, अतस्त्वत्समक्षं शास्त्रचर्चा नहि तत्वावबोधाय, किन्तु ममैव अभ्यासवर्धनाय ॥ ७५ ॥

(भाषार्थ) हे कृष्ण ! नीतिशास्त्रके विशेषज्ञ आपके आगे नीतिविषयपर कुछ कहना मेरे ही दृढ़ अभ्यासके लिये है ॥ ७५ ॥

प्रज्ञोत्साहावतः स्वामी यतेताधातुमात्मनि ।
तौ हि मूलमुदेष्यन्त्या जिगीषोरात्मसम्पदः ॥७६॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(अन्वयः) अतः स्वामी प्रज्ञोत्साहौ आत्मनि आधातुं यतेत । हि तौ उदेष्यन्त्याः जिगीषोः आत्मसम्पदः मूलम् ॥७६॥

(सुबोधिनी) अतः (अस्मात् कारणात्) स्वामी (प्रभुः) प्रज्ञोत्साहौ (मन्त्रोत्साहशक्ती) आत्मनि (स्वस्मिन्) आधातुं (सम्पादयितुं) यतेत (उद्युञ्जीत, स्वयमुभयशक्तिमान् भवेदित्यर्थः) हि (यस्मात् कारणात्) तौ (प्रज्ञोत्साहौ) उदेष्यन्त्याः (वर्त्स्यन्त्याः) जिगीषोः (विजेतुमिच्छोः) आत्मसम्पदः (प्रभुशक्तेः) मूलम् (निदानम्) ॥ ७६ ॥

(समासः) प्रज्ञोत्साहौ = प्रजानाति अनया इति प्रज्ञा, प्रज्ञा च उत्साहश्च प्रज्ञोत्साहौ । जिगीषोः = जेतुमिच्छुः जिगीषुस्तस्य । आत्मसम्पदः = आत्मनः सम्पत् आत्मसम्पत् तस्याः ॥ ७६ ॥

(व्याकरणम्) यतेत = यत + लिङ् + ईत ॥ ७६ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) ....स्वामिना..........यत्येत । ताभ्यां......मूलेन भूयते ॥ ७६ ॥

(सरलार्थः) राज्ञा सर्वदा बुद्धिमता उत्साहवता च भाव्यम्, तत एव सम्पदमाप्तुं शक्नोति ॥ ७६ ॥

(कोषः) स्वामी प्रभुविशाखयोरितिविश्वः ॥ ७६ ॥

(भाषार्थ) इसलिये राजाने अपनेमें मन्त्रशक्ति और उत्साह शक्तिको उत्पन्न करना चाहिये, क्योंकि येही दोनों शक्तियाँ जिगीषु राजाकी उत्पन्न होनेवाली प्रभु शक्तिका मूल कारण हैं ॥ ७६ ॥

सोपधानां धियं धीराः स्थेयसीं खट्वयन्ति ये ।
तत्रानिशं निषण्णास्ते जानते जातु न श्रमम् ॥७७॥

(अन्वयः) ये धीराः सोपधानां स्थेयसीं धियं खट्वयन्ति ते तत्र अनिशं निषण्णाः (सन्तः) जातु श्रमं न जानते ॥ ७७ ॥

(सुबोधिनी) येः धीराः (गम्भीराः बुद्धिमन्त इत्यर्थः)

११

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सोपधानां (सविशेषां, युक्तियुक्तामित्यर्थः, अन्यत्र गेन्दुकसहितां) स्थेयसीं (सुस्थिरां चाञ्चल्यरहितामित्यर्थः, द्रढीयसीञ्च) धियं (प्रज्ञां) खट्वयन्ति (पर्यङ्कयन्ति, खट्वां पर्यङ्कं कुर्वन्ति आश्रयन्तीत्यर्थः) ते (धीराः) तत्र (धीखट्वायां) अनिशं (निरन्तरं, अश्रान्तमित्यर्थः) निषण्णाः (विश्रान्ताः सन्तः) जातु (कदाचित्) श्रमं (खेदं) न जानते (न विदन्ति)॥ ७७॥

(समासः) सोपधानां = उपधीयते अनेन इति उपधानं, खट्वापक्षे = उपधीयते शिरोऽस्मिन् इत्युपधानं, तेन सह वर्तमाना सोपधाना तां। अनिशं = अविद्यमाना निशा यस्मिन् तत् यथा तथा अनिशम्॥ ७७॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) यैः धीरैः सोपधाना स्थेयसी धीः खट्व्यते तैः········निषण्णैः (सद्भिः) श्रमः न ज्ञायते॥ ७७॥

(कोषः) उपधानं विशेषे स्याद्गेन्दुके प्रणयेऽपि च। शयनं मञ्चपर्यङ्कपल्यङ्काः खट्वया समाः। इति विश्वामरौ॥ ७७॥

(व्याकरणम्) खट्वयन्ति = खट्वा + णिच् + लट् + अन्ति। जानते + ज्ञा + लट् + अते॥ ७७॥

(सरलार्थः) ये जनाः सर्वदा प्रज्ञास्वरूपां शय्यां आश्रित्य उत्साहपूर्वकं कर्म कुर्वन्ति ते बहुकाले समतीतेऽपि ततः खिन्ना न भवन्ति अतः बुद्धिपूर्वकं एव उत्साहः सेव्यः केवलं उत्साहो न सेव्यः॥ ७७॥

(भाषार्थ) जो विद्वान् युक्तियुक्त और स्थिर बुद्धिको ही पलंग बनाकर उसका आश्रय लेते हैं वे उसपर सर्वदा निश्चिन्त होकर आराम करते हैं और कभी भी उन्हें खेद नहीं होता। तात्पर्य यह कि बुद्धिपूर्वक किया हुआ उत्साह ही श्रेयस्कर है, इसलिये सर्वथा बुद्धिका ही आश्रय करना चाहिये॥ ७७॥

स्पृशन्ति शरवत्तीक्ष्णा स्तोकमन्तर्विशन्ति च।
बहुस्पृशापि स्थूलेन स्थीयते बहिरश्मवत्॥७८॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(अन्वयः) तीक्ष्णाः शरवत् स्तोकं स्पृशन्ति अन्तः च विशन्ति। बहुस्पृशा अपि स्थूलेन अश्मवत् बहिः स्थीयते ॥ ७८ ॥

(सुबोधिनी) तीक्ष्णाः (निशितप्रज्ञाः) शरवत् (शरेण तुल्यं) स्तोकं (अल्पं) एव, स्पृशन्ति, (लक्ष्यबहिर्भूतदेशस्य स्पर्शं कुर्वन्ति) अन्तः (कार्यस्य अन्तः) च, विशन्ति (प्रविशन्ति च) बहुस्पृशा (लक्ष्यबहिर्भूतदेशाधिकभागस्य स्पर्शं कुर्वता) अपि, स्थूलेन (मन्देन, बृहता च) अश्मवत् (पाषाणेन तुल्यं) बहिः (कार्यस्य बहिर्देशे एव) स्थीयते (निवासः क्रियते) ॥ ७८ ॥

(समासः) बहुस्पृशा = बहुस्पृशतीति बहुस्पृक् तेन। अश्मवत् = अश्मना तुल्यं अश्मवत् ॥ ७८ ॥

(कोषः) शरस्तु तेजने बाणे दध्यग्रे ना शरं जले। इति विश्वः ॥७८॥

(व्याकरणम्) स्पृशन्ति = स्पृश + लट् + अन्ति। विशन्ति = विश + लट् + अन्ति। स्थीयते = स्था + लट् + ते ॥ ७८ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) तीक्ष्णैः……स्तोकं स्पृश्यते……अन्तर्विश्यते च। बहुस्पृक्…स्थूलः………तिष्ठति ॥ ७८ ॥

(सरलार्थः) बुद्धिमन्तः स्वल्पप्रयासेनैव बहु कर्म साधयन्ति, मूर्खा बहु प्रयतन्ते परं किञ्चिदपि साधयितुं शक्ता न भवन्ति ॥ ७८ ॥

(भाषार्थ) तेज बुद्धिवाले आदमी थोड़ा मौका पाकर बाणकी तरह भीतर घुस जाते हैं, और मन्द बुद्धिवाले आदमी पत्थरकी तरह बाहर अधिक जगह घेरकर भी भीतर घुसने नहीं पाते ॥ ७८ ॥

आरभन्तेऽल्पमेवाज्ञाः कामं व्यग्रा भवन्ति च।
महारम्भाः कृतधियस्तिष्ठन्ति च निराकुलाः ॥७९॥

(अन्वयः) अज्ञाः अल्पं एव आरभन्ते, कामं व्यग्राः च भवन्ति। कृतधियः, महारम्भाः निराकुलाः च तिष्ठन्ति ॥ ७९ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(सुबोधिनी) अज्ञाः (मूढाः) अल्पं (स्तोकं-तुच्छं) एव कार्य्यं, आरभन्ते (प्रक्रमन्ते) कामं (अत्यन्तं) व्यग्राः (व्याकुलाः) च, भवन्ति (जायन्ते) नच कार्य्यस्य पारं गच्छन्तीत्यर्थः, कृतधियः (शिक्षितबुद्धयः) तु महारम्भाः (महोद्योगाः) निराकुलाः (अव्याकुलाः स्वस्था इत्यर्थः) तिष्ठन्ति (कार्यस्य पारं गच्छन्तीत्यर्थः) ।। ७६ ।।

(समासः) अज्ञाः = जानन्ति इति ज्ञाः, न ज्ञाः अज्ञाः । व्यग्राः = विगतं अग्रं एषां ते व्यग्राः । महारम्भाः = आरभ्यन्त इति आरम्भाः, महान्तः आरम्भाः एषां ते महारम्भाः । कृतधियः = कृता (कृतनिश्चयाः शिक्षिता वा) धीः एषां ते कृतधियः । निराकुलाः = निर्गताः आकुलेभ्यो निराकुलाः ।। ७६ ।।

(कोषः) अज्ञे मूढयथाजातमूर्खवैधेयबालिशाः । व्यग्रो व्यासक्त आकुलः । इत्यमरौ ।। ७९ ।।

(वाच्यपरिवर्तनम्) अज्ञैः‥‥‥आरभ्यते‥‥‥व्यग्रैः भूयते । कृतधीभिः महारम्भैः (भूयते) निराकुलैः स्थीयते ।। ७९ ।

(व्याकरणम्) आरभन्ते = आ + रभ् + लट् + अन्ते ।। ७९ ।।

(सरलार्थः) महान्तः महारम्भे अपि निराकुला भवन्ति । जड़ाः स्वल्पेऽपि आरम्भे व्याकुला जायन्ते ।। ७९ ।।

(भाषार्थ) मूर्खलोग साधारण कामके करनेमें ही बहुत घबड़ा जाते हैं और विद्वान् बड़े से बड़े कामको करते हुए भी निराकुल रहते हैं ।। ७६ ।।

उपायमास्थितस्यापि नश्यन्त्यर्थाः प्रमाद्यतः ।
हन्ति नोपशयस्थोऽपि शयालुर्मृगयुर्मृगान् ।।८०।।

(अन्वयः) उपायं आस्थितस्य अपि प्रमाद्यतः अर्थाः नश्यन्ति । शयालुः मृगयुः उपशयस्थः अपि मृगान् न हन्ति ।। ८० ।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(सुबोधिनी) उपायं (कार्यसाधनपद्धतिं) आस्थितस्य (प्राप्तस्य) अपि (उपायेनैव कार्यं साधयतोऽपि) प्रमाद्यतः (अनवहितस्य) अर्थाः (कार्याणि) नश्यन्ति (नाशमायान्ति) तथाहि—शयालुः (निद्रालुः) मृगयुः (व्याधः) *उपशयस्थः (मृगमार्गे प्रच्छन्नस्थाने वर्तमानः) अपि, मृगान् (हरिणान्) न हन्ति (न मारयति) ॥ ८० ॥

(समासः) मृगयुः = मृगान् याति (धावति) इति मृगयुः । उपशयस्थः = उपशेरते अस्मिन् इति उपशयः, उपशये तिष्ठतीति उपशयस्थः ॥ ८० ॥

(कोषः) प्रमादोऽनवधानता । व्याधो मृगवधाजीवो मृगयुर्लुब्धकश्च सः । इत्यमरः ॥ ८० ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) ....अर्थाः नश्यते । शयालुना मृगयुना मृगाः न हन्यन्ते ॥ ८० ॥

(व्याकरणम्) नश्यन्ति = नश + लट् + अन्ति । हन्ति = हन् + लट् + ति ॥ ८० ॥

(सरलार्थः) चतुरः अपि उत्साहं परित्यज्य यदि प्रमाद्यति तदा तस्यापि कार्यं न सिध्यति ॥ ८० ॥

(भाषार्थ) युक्ति द्वारा काम करनेवाला भी चतुर पुरुष यदि प्रमाद करे तो उसका कार्य नष्ट हो जाता है । सोनेवाला बहेलिया उपशय (मृगोंके मार्गमें छिपकर बैठनेका स्थान) में रहकर भी मृगोंको नहीं मार सकता ॥ ८० ॥

उदेतुमत्यजन्नीहां राजसु द्वादशस्वपि ।
जिगीषुरेको दिनकृदादित्येष्विव कल्पते ॥८१॥

(अन्वयः) जिगीषुः एकः द्वादशसु अपि राजसु आदित्येषु दिनकृत् इव ईहां अत्यजन् उदेतुं कल्पते ॥ ८१ ॥

(सुबोधिनी) जिगीषुः (जयमभिलषमाणः) एकः-एव

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

द्वादशसु, अपि, राजसु (नृपेषु मध्ये) "द्वादशसु" *आदित्येषु (सूर्येषु) दिनकृत् (दिवसकरणे व्याप्रियमाणः भास्करः) इव, ईहां (उत्साहं) अत्यजन् (अनुपेक्षमाणः) उदेतुं कल्पते (उदयाय प्रभवति) ॥ ८१ ॥

(समासः) अत्यजन्=न त्यजतीति अत्यजन् । द्वादशसु = द्वौ च दश च द्वादश, तेषु । जेतुमिच्छुः = जिगीषुः । दिनं करोतीति दिनकृत् । आदित्येषु = अदितेः अपत्यानि पुमांसः आदित्याः तेषु ॥ ८१ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) जिगीषुणा एकेन.........दिनकृता........ अत्यजता...कल्पते ॥ ८१ ॥

(व्याकरणम्) उदेतुं = उद् + इ + तुमुन् । कल्पते = क्लृप् + लट् + ते ॥ ८१ ॥

(सरलार्थः) उत्साहशील एव राजा सकलं राजमण्डलं आक्रमितुं समर्थः । सोत्साहस्यैव राज्ञः अभ्युदयो भवति ॥ ८१ ॥

(भाषार्थ) जैसे वारह प्रकारके सूर्योंमें दिन बनानेवाला ही सूर्य उदयको प्राप्त होता है उसी प्रकार जो राजा प्रभुशक्तिके मूल कारण उत्साह शक्तिको नहीं छोड़ता और निरन्तर उद्योग करता रहता है वही अभ्युदयको प्राप्त होता है ॥ ८१ ॥

बुद्धिशस्त्रः प्रकृत्यङ्गो घनसंवृतिकञ्चुकः ।
चारेक्षणो दूतमुखः पुरुषः कोऽपि पार्थिवः ॥८२॥

(अन्वयः) बुद्धिशस्त्रः प्रकृत्यङ्गः घनसंवृतिकञ्चुकः चारेक्षणः दूतमुखः पार्थिवः कः अपि पुरुषः ॥ ८२ ॥

(सुबोधिनी) बुद्धिशस्त्रः (प्रज्ञायुधः) प्रकृत्यङ्गः (स्वाम्या-

---

* धाता मित्रोऽर्यमा रुद्रो वरुणः सूर्य एव च ।
मृगो विवस्वान् पूषा च सविता दशमः स्मृतः
एकादशस्तथा त्वष्टा विष्णुर्द्वादश उच्यते ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दिप्रकृत्यङ्गः) घनसंवृतिकञ्चुकः (दुर्भेदमन्त्रगोपनकवचः) चारेक्षणः (गूढपुरुषनयनः) दूतमुखः (दूतवदनः) "एवम्भूतः" पार्थिवः (नृपः) कः–अपि–पुरुषः (अलौकिक एवायं, लोके विलक्षणः कश्चन पुमान् इत्यर्थः) ॥ ८२ ॥

(समासः) बुद्धिशस्त्रः=शस्यते (क्षिप्यते) इति शस्त्रं, बुद्धिः शस्त्रमस्य सः बुद्धिशस्त्रः । प्रकृत्यङ्गः=प्रकृतयः अङ्गानि यस्य सः प्रकृत्यङ्गः। घनसंवृतिकञ्चुकः=घना संवृतिः घनसंवृतिः, सैव कञ्चुकं अस्य सः घनसंवृतिकञ्चुकः । चारेक्षणः=चरतीति चरः, चर एव चारः, ईक्ष्यते अनेन ईक्षणं, चारः एव ईक्षणं यस्य सः । दूतमुखः=दूतः मुखं यस्यासौ दूतमुखः । पार्थिवः=पृथिव्या ईश्वरः पार्थिवः ॥ ८२ ॥

(कोषः) स्वाम्यमात्यसुहृत्कोषराष्ट्रदुर्गबलानिच । राज्याङ्गानि प्रकृतयः। चारश्च गूढपुरुषः । स्यात्सन्देशहरो दूतः । इत्यमरः ॥ ८२ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) बुद्धिशस्त्रेण प्रकृत्यङ्गेन······कञ्चुकेन चारेक्षणेन दूतमुखेन पार्थिवेन केन······पुरुषेण (भूयते) ॥ ८२ ॥

(सरलार्थः) राजा किल "स्वाम्यमात्यसुहृत्कोषराष्ट्रदुर्गबलानि च" इति सप्तभिः प्रकृतिभिः शरीरवान् भवति, पुनः स एव स्वमन्त्रगुप्तिरूपकवचेन निजं शरीरं रक्षति । उत्साहशीलः पुनः गुप्तचरैः शत्रोः बलाबलं सम्यक् ज्ञात्वा बुद्धिपूर्वकं प्रहरति ॥ ८२ ॥

(भाषार्थ) राजा एक अलौकिक पुरुष है :—जिसका शस्त्र तो बुद्धि है, प्रकृति (स्वामी-अमात्य-सुहृत्-कोष-राष्ट्र-दुर्ग और बल आदि सात राज्यके अङ्ग) ही शरीर है, मन्त्रको गुप्त रखना ही कवच है, गुप्तचरही नेत्र है और सन्देशहर ही मुख है ॥ ८२ ॥

तेजः क्षमा वा नैकान्तं कालज्ञस्य महीपतेः ।
नैकमोजः प्रसादो वा रसभावविदः कवेः ॥ ८३ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(अन्वयः) कालज्ञस्य महीपतेः तेजः क्षमा वा एकान्तं न, रसभावविदः कवेः एकं ओजः प्रसादो वा न ॥ ८३ ॥

(सुबोधिनी) कालज्ञस्य (कालविशेषविदुषः) महीपतेः (भूपतेः) तेजः (प्रतापः) क्षमा (क्षान्तिः) एकान्तं (अत्यन्तं) न (नास्ति) "किन्तु स यथावसरं उभयमपि आश्रयतीत्यर्थः" तथाहि—रसभावविदः, (रसान् = शृङ्गारादीन्, भावान् = निर्वेदादींश्च जानतः) कवेः (कवयितुः) एकं (केवलं) *ओजः (प्रौढप्रबन्धत्वं) † प्रसादः (सुकुमाररचना वा) न भवति, किन्तु सोऽपि रसानुगुण्येन यथास्थानं उभयमप्यायोजयति) ॥

(समासः) कालज्ञस्य = कालं जानातीति कालज्ञः तस्य । महीपतेः = मह्याः पतिः महीपतिः तस्य । रसभावविदः = रस्यते (आस्वाद्यते) इति रसः "शृङ्गारवीरकरुणाद्भुतहास्यभयानकाः । बीभत्सरौद्रे शान्तिश्च रसा नव प्रकीर्तिताः" रसाश्च भावाश्च रसभावाः तान् वेत्तीति रसभाववित् तस्य । एकान्तं = एकः अन्तः यस्मिन् कर्मणि तत् यथा तथा एकान्तम् ॥ ८३ ॥

(कोषः) एके मुख्यान्यकेवलाः । इत्यमरः । तेजो दीप्तौ प्रभावे च स्यात्पराक्रमरेतसोः । इति मेदिनी ॥ ८३ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्)······तेजसा क्षमया······भूयते ।······एकेन ओजसा प्रसादेन······(भूयते) ॥ ८३ ॥

(सरलार्थः) उपायप्रयोगाभिज्ञो राजा समयं परिज्ञायैव तेजः क्षमा वा प्रयुङ्क्ते ॥ ८३ ॥

(भाषार्थ) शृङ्गारादि रस और भावोंको जाननेवाला कवि अपने प्रबन्धरसके अनुकूल जैसे कभी प्रौढ़ प्रबन्ध और कभी सुकुमार प्रबन्धकी रचना करता है उसी तरह मौका

* "ओजः समासभूयस्त्वं मांसलं पदडम्बरम् ।" बन्धदार्ढ्यमित्यर्थः ।
† प्रसादो बन्धशैथिल्यं रचना सरला तथा" ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

समझनेवाला राजा भी कभी शान्ति और कभी उग्रताका रूप धारण करता है ॥ ८३ ॥

कृतापचारोऽपि परैरनाविष्कृतविक्रियः ।
असाध्यः कुरुते कोपं प्राप्ते काले गदो यथा ॥ ८४ ॥

(अन्वयः) परैः कृतापचारः अपि अनाविष्कृतविक्रियः असाध्यः गदः यथा काले प्राप्ते कोपं कुरुते ॥ ८४ ॥

(सुबोधिनी) परैः (शत्रुभिः) कृतोपचारः (विहितापकारः कृतापथ्यश्च) अनाविष्कृतविक्रियः (अन्तर्गूढविकारः) असाध्यः (अप्रतिसमाधेयः) गदः (रोगः) यथा (इव) काले (बलक्षयावसरे) प्राप्ते "सति" कोपं कुरुते (प्रकुप्यति) ॥ ८४ ॥

(समासः) अनाविष्कृतविक्रियः = न आविष्कृता अनाविष्कृता अनाविष्कृता विक्रिया येन सः । कृतापचारः=कृतः अपचारः यस्य सः । असाध्यः = न साध्यः असाध्यः ॥ ८४ ॥

(कोषः) रोगव्याधिगदामयाः । इत्यमरः ॥ ८४ ॥

(व्याकरणम्) कुरुते = कृञ् + लट् + ते ॥ ८४ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्)……चरेण—विक्रियेण असाध्येन गदेन ……कोपः क्रियते ॥ ८४ ॥

(सरलार्थः) यथा रोगः पथ्यापथ्यविवेकरहितं पुरुषं बले क्षीणे सति अधिकतरं पीडयति तथैव असार्वापि असमये परिभूतः सन् निजं मनोविकारं निगूहति, पुनः समये प्राप्ते अप्रतिकारं यथा तथा प्रहरति, उक्तञ्च केनचित् नीतितत्त्वविदा—"वहेदमित्रं स्कन्धेन यावत्कालविपर्ययः ।—तमेव चागते काले भिन्द्याद्घटमिवाश्मना" ॥ ८४ ॥

(भाषार्थ) जैसे—बाहर प्रगट न होकर भीतरही भीतर भींगता हुआ रोग सारे शरीरमें व्याप्त हो प्रकुपित होजाता है उसी तरह शत्रुके द्वारा अपकार किये जानेपर भी उससे बिगडे हुए अपने मनके भावको प्रगट न कर मौकेकी प्रतीक्षा

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

करता चुपचाप बैठा हुआ बुद्धिमान् पुरुष भी मौका पाकर प्रकुपित होता है ॥ ८४ ॥

मृदु व्यवहितं तेजो भोक्तुमर्थान्प्रकल्पते ।
प्रदीपः स्नेहमादत्ते दशयाभ्यन्तरस्थया ॥ ८५ ॥

(अन्वयः) मृदु व्यवहितं तेजः अर्थान् भोक्तुम् प्रकल्पते, प्रदीपः अभ्यन्तरस्थया दशया स्नेहं आदत्ते ॥ ८५ ॥

(सुबोधिनी) मृदुव्यवहितं (कोमलवस्तुना अन्तर्हितं) तेजः (प्रतापः) *अर्थान् (विषयान्) भोक्तुं (उपभोक्तुं) प्रकल्पते (शक्नोति) तथाहि-प्रदीपः, अभ्यन्तरस्थया (मध्यस्थितया) दशया (वर्त्या) स्नेहं (तैलादिकं अर्थं) आदत्ते (गृह्णाति) ॥ ८५ ॥

(समासः) अभ्यन्तरस्थया=अभिगतं अन्तरं अभ्यन्तरं, अभ्यन्तरे तिष्ठतीति अभ्यन्तरस्था तया ॥ ८५ ॥

(कोषः) दशावर्ताववस्थायां स्नेहस्तैलादिके रसे । इति विश्वः ॥८५॥

(वाच्यपरिवर्तनम्)······व्यवहितेन तेजसा······प्रकल्प्यते । प्रदीपेन···स्नेहः आदीयते ॥ ८५ ॥

(सरलार्थः) क्षमया क्षात्रं फलति, अतः सर्वथा विजिगीषुणा प्रथमं क्षन्तव्यम् । तया च तेजः शोभते विजयञ्चावहति ॥ ८५ ॥

(भाषार्थ) जैसे प्रदीप भी मुलायम वत्ती बीचमें रखकर ही उसके द्वारा तेलको भोगता है, उसी तरह राजा भी मृदुस्वभावसे राज्य आदि सम्पत्तिको भोग सकता है ॥ ८५ ॥

नालम्बते दैष्टिकतां न निषीदति पौरुषे ।
शब्दार्थौ सत्कविरिव द्वयं विद्वानपेक्षते ॥ ८६ ॥

*"अर्थः प्रकारे विषये वित्तकारणवस्तुषु ।
अभिधेये च शब्दानां वृतावपि प्रयोजने" ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(अन्वयः) विद्वान् दैष्टिकतां नालम्बते पौरुषे च न निषीदति । सत्कविः शब्दार्थौ इव द्वयम् अपेक्षते ॥ ८६ ॥

(सुबोधिनी) विद्वान् (पण्डितः) दैष्टिकतां (दैवप्रमाणकतां) न आलम्बते (नाश्रयति) पौरुषे (केवलं पुरुषकारेऽपि) न निषीदति (न तिष्ठति) "किन्तु" सत्कविः (सत्कवयिता) शब्दार्थौ इव (काव्यशरीरभूताविव) द्वयं (दैवं पौरुषञ्च) अपेक्षते (आश्रयते) ॥ ८६ ॥

(समासः) दैष्टिकतां = दिष्टे गतिर्यस्यासौ दैष्टिकः, तस्य भावः दैष्टिकता तां । शब्दार्थौ = शब्दश्च अर्थश्च शब्दार्थौ ॥ ८६ ॥

(कोषः) दैवं दिष्टं भागधेयं भाग्यं स्त्री नियतिर्विधिः । इत्यमरः ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) विदुषा दैष्टिकता न आलम्ब्यते ।......... निषद्यते सत्कविना.........अपेक्ष्यते ॥ ८६ ॥

(सरलार्थः) विद्वांसः केवलं दैवं अथवा पौरुषं एव नाश्रयन्ति किन्तु सत्कविः यथा काव्यनिर्माणविधौ शब्दं अर्थञ्च अपेक्षते तथैव नीतितत्ववित् राजा अपि दैवं पौरुषञ्च आश्रयति अतः समये पौरुषमप्यावश्यकं परन्तु तदेव असमये प्रयुक्तं सत् हानिकरं भविष्यति ॥ ८६ ॥

(भाषार्थ) जैसे महाकवि शब्द और अर्थ दोनोंका आश्रय करता है, उसी तरह विद्वान् पुरुष भी दैव और पुरुषार्थ दोनोंका आश्रय करता है—केवल दैवके भरोसे भी नहीं रहता और न केवल पुरुषार्थके ही भरोसे रहता है ॥ ८६ ॥

स्थायिनोऽर्थे प्रवर्तन्ते भावाः सञ्चारिणो यथा ।
रसस्यैकस्य भूयांसस्तथा नेतुर्महीभृतः ॥ ८७ ॥

(अन्वयः) रसस्य (स्थायिनः) एकस्य अर्थे भूयांसः संचारिणः भावाः यथा प्रवर्तन्ते तथा स्थायिनः नेतुः अर्थे महीभृतः ॥ ८७ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(सुबोधिनी) रसस्य (रसीभवतः स्थायिभावस्य रत्यादेः) एकस्य एव अर्थे (स्वादूभावरूपे प्रयोजने) भूयांसः (बहवः) सञ्चारिणः (व्यभिचारिणः) भावाः (निर्वेदादयः) यथा प्रवर्तन्ते (प्रवृत्ता भवन्ति) तथा (तेनैव प्रकारेण) स्थायिनः (स्थिरस्य, समयं अपेक्षमाणस्येत्यर्थः) "एकस्य एव" नेतुः (विजगीषोः नायकस्य) अर्थे (प्रयोजने) भूयांसः, महीभृतः (राजानः प्रवर्तन्ते) स्वयमेवास्य कार्यं साधयन्ति ॥ ८७ ॥

(समासः) रसस्य=रस्यते (आस्वाद्यते) इति रसः । महीभृतः= महीं बिभ्रतीति महीभृतः ॥ ८७ ॥

(कोषः) अर्थोऽभिधेयरैवस्तु प्रयोजननिवृत्तिषु । इत्यमरः ॥ ८७ ॥

(व्याकरणम्) प्रवर्तन्ते=प्र + वृत + लट् अन्ते ॥ ८७ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) भूयोभिः सञ्चारिभिः भावैः......प्रवृत्यते... महीभृद्भिः (प्रवृत्यते) ॥ ८७ ॥

(सरलार्थः) यथा एकस्य कस्यचिद्रसस्य प्रयोजने अपरे सञ्चारिणः भावाः तस्य कार्यं साधयन्ति तथैव क्षमाशीलस्य कस्यचिन्नेतुः कार्ये समुपस्थिता अपरे राजानः स्वयमेव तस्य तत् कार्यं साधयन्ति ॥ ८७ ॥

(भाषार्थ) जैसे सञ्चारीभाव रसपदवीको प्राप्त होनेवाले किसी स्थायिभावके सहायक होजाते हैं उसी तरह स्थायी (शान्तिसे मौकेकी प्रतीक्षा करनेवाला) विजिगीषु नेता-राजाके भी अन्य बहुतसे राजे सहायक होजाते हैं ॥ ८७ ॥

तन्त्रावापविदा योगैर्मण्डलान्यधितिष्ठता ।
सुनिग्रहा नरेन्द्रेण फणीन्द्रा इव शत्रवः ॥ ८८ ॥

(अन्वयः) तन्त्रावापविदा योगैः मण्डलानि अधितिष्ठता नरेन्द्रेण शत्रवः फणीन्द्रा इव सुनिग्रहाः ॥ ८८ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(सुबोधिनी) तन्त्रावापविदा (स्वपरराष्ट्रचिन्तनविदुषा, शास्त्रौषधप्रयोगविदा च) योगैः (सामाद्युपायैः देवताध्यानैश्च) मण्डलानि (स्वपरराष्ट्राणि) अधितिष्ठता (आक्रमता) नरेन्द्रेण (नृपेण, विषवैद्येन च) शत्रवः (अरयः) फणीन्द्रा इव (भोगीन्द्रा इव) सुनिग्रहाः (सुखेन निग्राह्याः)॥ ८८॥

(समासः) तन्त्रावापविदा=तन्त्रश्च आवापश्च तन्त्रावापौ तौ वेत्तीति तन्त्रावापवित् तेन। नरेन्द्रेण=नराणां इन्द्रः नरेन्द्रः तेन। फणीन्द्राः=फणाः सन्ति एषां इति फणिनः तेषामिन्द्राः फणीन्द्राः॥ ८८॥

(कोषः) तन्त्रः स्वराष्ट्रचिन्तायामावापः परचिन्तने। शास्त्रौषधान्तमुख्येषु इति वैजयन्ती, नरेन्द्रो वार्तिके राज्ञि विषवैद्ये च कथ्यते। इति विश्वः। योगः संनहनोपायध्यानसंगतियुक्तिषु। इत्यमरः॥ ८८॥

(व्याकरणम्) अधितिष्ठता=अधि + स्था + शतृ॥ ८८॥

(वाच्यपरिवर्तनम्)……शत्रुभिः फणीन्द्रैः सुनिग्रहैः भूयते॥

(सरलार्थः) यथा विषवैद्यः मन्त्रौषधादिद्वारा महान्तं दुर्भरमपि सर्पं वशमानयति तथैव विचक्षणः भूपः शत्रोः आत्मनश्च बलाबलं सम्यग् विचार्य सामाद्युपायैः प्रजां स्वायत्तीकरोति॥ ८८॥

(भावार्थ) मणि, मन्त्र, जड़ी और बूटियोंको जाननेवाला, देवताओंके ध्यान आदिसे अपनी रक्षाके लिये बनाये हुए मण्डलोंपर विश्राम करनेवाला मदारी जैसे बड़े २ सापोंको विना प्रयासही पकड़ लेता है उसी तरह अपने और शत्रुके राष्ट्रके रहस्योंको जाननेवाला नीतितत्त्ववित् राजा सामाद्युपायोंसे अपनी रक्षाकर शत्रुओंको बिना प्रयत्नके ही अपने वशमें कर लेता है॥ ८८॥

करप्रचेयामुत्तुङ्गः प्रभुशक्तिं प्रथीयसीम्।
प्रज्ञाबलबृहन्मूलः फलत्युत्साहपादपः॥ ८९॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(अन्वयः) उत्तुङ्गः प्रज्ञाबलबृहन्मूलः उत्साहपादपः करप्रचेयां प्रथीयसीं प्रभुशक्तिं फलति ॥ ८७ ॥

(सुबोधिनी) उत्तुङ्गः (महोन्नतः) प्रज्ञाबलबृहन्मूलः (मन्त्रशक्तिप्रधानबीजः , उत्साहपादपः (करप्रचेयां) बलिना वर्धनीयां हस्तग्राह्याञ्च) प्रथीयसीं (पृथुतरां) प्रभुशक्तिं (प्रभोः प्रभावविशेषं) फलति (प्रसूत इतिभावः) ॥ ८७ ॥

(समासः) प्रभुशक्तिं प्रभोः शक्तिः प्रभुशक्तिस्तां । प्रथीयसीं= अतिशयेन पृथ्वी इति प्रथीयसी तां । प्रज्ञाबलबृहन्मूलः=प्रकर्षेण जानातीति प्रज्ञा तस्याः बलं प्रज्ञाबलं, बृहत् मूलं बृहन्मूलं, प्रज्ञाबलं बृहन्मूलं अस्य सः प्रज्ञाबलबृहन्मूलः । करप्रचेयां=प्रचेतुं योग्या प्रचेया, करेण प्रचेया करप्रचेया तां ॥ ८६ ॥

(कोषः) बलिहस्तांशवः कराः । इत्यमरः ॥ ८६ ॥

(व्याकरणम्) फलति = फल + लट् + ति ॥ ८६ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) उत्तुङ्गेन······मूलेन···पादपेन करप्रचेया प्रथीयसी प्रभुशक्तिः फल्यते ॥ ८६ ॥

(सरलार्थः) उत्साहरूपस्य वृक्षस्य मन्त्रशक्तिः प्रधानमूलं, प्रभुशक्तिश्च तस्य फलम् । मन्त्रपूर्वक एव उत्साहः फलति तद्विपरीतस्तु छिन्नमूलो वृक्ष इव शुष्यति ॥ ८६ ॥

(भाषार्थ) मन्त्र शक्ति ही है प्रधान जड़ जिसकी ऐसा उत्साह रूपी वृक्ष करों (टैक्स) से बढ़ी हुई राजाकी प्रभु सम्पत्तिको उत्पन्न करता है ॥ ८६ ॥

अनल्पत्वात् प्रधानत्वाद्वंशस्येवेतरे स्वराः ।
विजिगीषोनृपतयः प्रयान्ति परिवारताम् ॥ ९० ॥

(अन्वयः) अनल्पत्वात् प्रधानत्वात् वंशस्य इतरे स्वराः इव विजिगीषोः नृपतयः परिवारताम् प्रयान्ति ॥ ९० ॥

(सुबोधिनी) अनल्पत्वात् (प्रज्ञोत्साहयोः अधिकत्वात्

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अन्यत्र उच्चैस्तरत्वात्) "अत एव" प्रधानत्वात् (मण्डलाभिज्ञत्वात्, नायकस्वरत्वाच्च) वंशस्य (वंशवाद्यस्वरस्य) इतरे स्वराः (वीणागानादिशब्दाः) इव (यथा) विजिगीषोः (विजेतुमिच्छोः) नृपतयः (राजानः) परिवारतां (पोष्यतां) प्रयान्ति (उपयान्ति, तत्कार्यमेव साधयन्तीत्यर्थः) ॥ ६० ॥

(समासः) अनल्पत्वात्=न अल्पः अनल्पः, तस्य भावः अनल्पत्वं तस्मात्। प्रधानत्वात्=प्रधानस्य भावः प्रधानत्वं तस्मात्। विजिगीषोः=विजेतुमिच्छुः विजिगीषुः तस्य। नृपतयः=नृणां पतय नृपतयः। परिवारतां=परितः एभिः इति परिवाराः, तेषां भावः परिवारता तां ॥ ६० ॥

(व्याकरणम्) प्रयान्ति=प्र+प्र+लट्+अन्ति ॥ ६० ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्)······इतरैः स्वरैः···परिवारता प्रयायते ॥

(सरलार्थः) यथा वाद्यविशेषस्य स्वराः, वेणुस्वरानुसरणं सम्यगाचरन्तः गानं साङ्गं विदधति तथैव अन्ये नृपतयः विमृश्यकारिणः विजिगीषोः आनुकूल्यं सम्पादयन्तोऽस्यैव कार्यं साधयिष्यन्ति ॥ ६० ॥

(भावार्थ) जैसे बांसुरीके और २ स्वर गतके प्रधान स्वरके सहायक स्वर हुआ करते हैं उसी तरह बुद्धि और उत्साहकी अधिकतासे प्रधान पदवीको प्राप्त विजिगीषु राजा के निकटवर्ती और २ राजाभी उसके सहायक हुआ करते हैं ॥६०॥

अप्यनारभमाणस्य विभोरुत्पादिताः परैः।
व्रजन्ति गुणतामर्थाः शब्दा इव विहायसः ॥ ६१ ॥

(अन्वयः) अनारभमाणस्य अपि विभोः परैः उत्पादिताः अर्थाः विहायसः शब्दाः इव गुणतां व्रजन्ति ॥ ६१ ॥

(सुबोधिनी) अनारभमाणस्य (किञ्चिदपि न कुर्वाणस्य) विभोः (प्रभोः, व्यापकस्य च) परैः (अन्यैः नृपतिभिः,

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शङ्खभेर्यादिभिश्च) उत्पादिताः (सम्पादिताः जनिताश्च) अर्थाः (प्रयोजनानि) विहायसः (आकाशस्य) शब्दाः इव, गुणतां (विशेषणतां) व्रजन्ति (प्राप्नुवन्ति) ॥ ९१ ॥

(समासः) अनारभमाणस्य=आरभत इति आरभमाणः न आरभमाणः अनारभमाणः तस्य। गुणतां=गुणस्य भावः गुणता ताम् ॥९१॥

(कोषः) वियद्विष्णुपदं वा तु पुंस्याकाशविहायसीत्यमरः ॥ ९१ ॥

(व्याकरणम्) विभोः=विभवति इति विभुः तस्य विभोः=वि + भु + डु (कर्तारं)। उत्पादिताः=उत् + पद + णिच् + क्त । व्रजन्ति =व्रज + लट् अन्ति ॥ ९१ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्)……उत्पादितैः अर्थैः………शब्दैः इव गुणता व्रज्यते ॥ ९१ ॥

(सरलार्थः) यथा "शब्दः" सर्वदेशव्यापिनः आकाशस्य गुण इति व्यवह्रियते परमाकाशः तदर्थं किमपि न विदधाति तथैव शक्तः राजा अपि स्वमहिम्नैव चरैः कार्यं सम्पादयन् सर्वार्थानपि स्वकीयतां नयति स्वयञ्च उदासीन एव तिष्ठति, न किमपि करोति ॥ ९१ ॥

(भाषार्थ) पराक्रमी राजाकी प्रभुताके कारण लोग उसके दूतोंके द्वारा भी किये गये कार्योंको राजाका ही किया कार्य समझते हैं, यद्यपि राजा कुछ भी करता नहीं। जैसे आकाश कुछ भी करता नहीं वह केवल विभु (व्यापक) है इसलिये भेरी आदि के शब्द आकाशके ही गुण कहे जाते हैं ॥ ९१ ॥

यातव्यपार्ष्णिग्राहादिमालायामधिकद्युतिः ।
एकार्थतन्तुप्रोतायां नायको नायकायते ॥ ९२ ॥

(अन्वयः) एकार्थतन्तुप्रोतायाम् यातव्यपार्ष्णिग्राहादिमालायां अधिकद्युतिः नायकः नायकायते ॥ ९२ ॥

(सुबोधिनी) एकार्थतन्तुप्रोतायां (एकप्रयोजनरूपसूत्रे नद्धायां) यातव्यपार्ष्णिग्राहादिमालायां (शत्रुपृष्ठानुधाव्यादि-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

द्वादशराजमण्डलरूपमालायां) अधिकद्युतिः (महातेजाः) नायकः (शक्तिसम्पन्नः जिगीषुः) नायकायते (मध्यमणिरिव आचरतीत्यर्थः) ॥ ६२ ॥

(समासः) एकार्थतन्तुप्रोतायां = एकः अर्थः एकार्थः, स एव तन्तुः एकार्थतन्तुः, तस्मिन् प्रोता एकार्थतन्तुप्रोता, तस्यां। यातव्यपार्ष्णिग्राहादिमालायां = पार्ष्णिं गृह्णातीति पार्ष्णिग्राही, यातव्यश्च पार्ष्णिग्राहश्च यातव्यपार्ष्णिग्राहौ, तौ आदी येषां ते यातव्यपार्ष्णिग्राहादयः, त एव माला यातव्यपार्ष्णिग्राहादिमाला तस्यां। अधिकद्युतिः = अधिका द्युतिः यस्य असौ अधिकद्युतिः ॥ ९२ ॥

(कोषः) नायको नेतरि श्रेष्ठे हारमध्यमणावपीति विश्वः ॥ ९२ ॥

(व्याकरणम्) नायकायते = नायक इव आचरतीति नायकायते = नायक + क्यङ् + लट् + ते ॥ ९२ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) अधिकद्युतिना नायकेन नायकायते ॥९२॥

(सरलार्थः) यथा मुक्ताहारमध्यस्थितो मणिरितरमणिभ्यः श्रेष्ठोऽधिकप्रकाशश्च सन् विशेषेण शोभते तथैव एकाभीष्टाभिलाषके यातव्यादिनृपसमूहे सर्वेभ्योऽधिकतेजा जिगीषू राजा एव नायकः सन् शोभते ॥९२॥

(भाषार्थ) यातव्य (चढ़ाई किये जाने योग्य-शत्रु) और पार्ष्णिग्राह (पीछे रक्षा करने वाला) आदि राजाओंकी माला (पंक्ति) में अधिक तेजस्वी राजा ही प्रधान समझा जाकर शोभित होता है। जैसे हार के बीचका मणि और २ मणियोंकी अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ होनेके कारण नायकमणि कहा जाता है ॥ ९२ ॥

षाड्गुण्यमुपयुञ्जीत शक्त्यपेक्षो रसायनम्।
भवन्त्यस्यैवमङ्गानि स्थास्नूनि बलवन्ति च ॥९३॥

(अन्वयः) शक्त्यपेक्षः (सन्) षाड्गुण्यं रसायनं उपयुञ्जीत, एवं अस्य अङ्गानि स्थास्नूनि बलवन्ति च भवन्ति ॥९३॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(सुबोधिनी) शक्त्यपेक्षः (प्रभावोत्साहमन्त्ररूपां शक्तिं अपेक्षमाणः) "सन्" षाड्गुण्यं (सन्धिविग्रहादिगुणषट्कं) उपयुञ्जीत (प्रयुञ्जीत, सेवेतेत्यर्थः) एवं सति (एवं क्रियमाणे) अस्य (प्रयोक्तुः नृपस्य) अङ्गानि (स्वाम्यादीनि) स्थास्नूनि (स्थिराणि, कालान्तरसहानीत्यर्थः) बलवन्ति (सामर्थ्यवन्ति, परपीडाक्षमाणीत्यर्थः) च, भवन्ति (जायन्ते) ॥९३॥

(समासः) शक्त्यपेक्षः=शक्तिं अपेक्षते इति शक्त्यपेक्षः। षाड्गुण्यं=षट् गुणाः षड्गुणाः षड्गुणा एव षाड्गुण्यं। रसायनं=अयते एति वा अनेनेत्ययनं, रसानां अयनं रसायनम्। बलवन्ति=बलं अस्ति प्रशस्तं एषां तानि बलवन्ति ॥ ९३ ॥

(कोषः) "शक्तिर्बले प्रभावादौ।" रसायनं विहङ्गेऽपि जराव्याधि-भिदौषधे ॥ ९३ ॥

(व्याकरणम्) उप+युज+लिङ्+ईत। भवन्ति=भू+लट्+अन्ति ॥ ९३ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) शक्त्यपेक्षेण सता······उपयुज्यते···अङ्गैः स्थास्नुभिः बलवद्भिः च भूयते ॥ ९३ ॥

(सरलार्थः) स्वस्य शत्रोश्च बलाबलं परिज्ञाय सन्ध्यादीन् गुणान् प्रयुञ्जीत एवं कृते सति राज्ञः स्वाम्यादिराज्याङ्गानि स्थिराणि सामर्थ्यवन्ति च भवन्ति। अयं बलभद्रः शत्रोः बलाबलं किमपि न जानाति अत एव विग्रहमाद्रियते ॥ ९३ ॥

(भाषार्थ) प्रभाव, उत्साह और मन्त्ररूप शक्तिको चाहने वाले राजाने सन्धि विग्रहादि षट्गुण रूपी रसायनका सेवन करना चाहिये। इस प्रकार रसायनके सेवनसे मनुष्यका अङ्ग दृढ़ और बलवान होता है। राजा भी सन्धिविग्रहादि षड्गुणोंके सेवनसे अपने स्वाम्यमात्यादि राज्यके अङ्गोंको दृढ़ और बलवान बना सकता है ॥ ९३ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

स्थाने शमवतां शक्त्या व्यायामे वृद्धिरङ्गिनाम् ।
अयथाबलमारम्भो निदानं क्षयसम्पदः ॥ ९४ ॥

(अन्वयः) स्थाने शमवतां अङ्गिनाम् शक्त्या व्यायामे वृद्धिः, अयथाबलम् आरम्भः क्षयसम्पदः निदानम् ॥ ९४ ॥

(सुबोधिनी) स्थाने (शक्यविषये) शमवतां (क्षमाशीलानां) अङ्गिनां (स्वाम्यमात्यादिसप्ताङ्गानां राज्ञां, शरीरिणाञ्च) शक्त्या (प्रभावोत्साहमन्त्ररूपशक्त्यनुसारेण, बलेन च) व्यायामे (व्यापारे, षाड्गुण्यप्रयोगे, गमनादौ च) "सति" वृद्धिः (उपचयः, राज्यस्य शरीरस्य चेत्यर्थः) अयथाबलं (स्वबलातिक्रमेण) आरम्भः (षाड्गुण्यप्रयोगः, गमनादिश्च) क्षयसम्पदः (विनाशरूपसम्पत्तेः) निदानं (आदिकारणम्) ॥९४॥

(समासः) शमवतां = शमः अस्ति एषां ते शमवन्तः तेषां । अङ्गिनां = अङ्गानि सन्ति एषान्ते अङ्गिनः तेषां । अयथाबलं = बलं अनतिक्रम्य इति यथाबलं, न यथाबलं अयथाबलं । क्षयसम्पदः = क्षयस्य सम्पत् तस्याः ॥ ९४ ॥

(कोषः) निदानन्त्वादिकारणमित्यमरः ॥ ९४ ॥

(व्याकरणम्) आरम्भः = आ + रभ + घञ् । निदानं = नितरां दीयते अनेन इति निदानं = नि + दा + ल्युट् ॥ ९४ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्)·········वृद्ध्या (भूयते)······आरम्भेण ······निदानेन (भूयते) ॥ ९४ ॥

(सरलार्थः) सामर्थ्यरहिते राज्ञि क्षमा, ससामर्थ्ये तेजः इति हि अभ्युदयस्य मूलम् । एतदन्यथा नियतं विनाशः ॥ ९४ ॥

(भाषार्थ) क्षमा-शील राजा मौका देखकर अपने प्रभाव, उत्साह और मन्त्ररूप शक्तिके अनुसार सन्ध्यादि षड्गुणोंका यदि प्रयोग करे तो उसके राज्यकी वृद्धि होती है और यदि अपने बलको न समझता हुआ षड्गुणोंका प्रयोग करे

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

त: उसके राज्यका क्षय होता है। जैसे व्यायाम (कसरत) शील व्यक्ति अपनी ताकतके अनुसार कसरत करता है तो उसकी ताकत बढ़ती है और उसका शरीर सुदृढ़ होता है, इसके विपरीत दशामें उसका बल क्षय होता है ॥ ९४ ॥

तदीशितारं चेदीनां भवांस्तमवमंस्त मा ।
निहन्त्यरीनेकपदे य उदात्तः स्वरानिव ॥ ९५ ॥

(अन्वयः) तत् तं चेदीनां ईशितारम् भवान् मा अवमँस्त यः उदात्तः स्वरान् इव अरीन् एकपदे निहन्ति ॥ ९५ ॥

(सुबोधिनी) तत् (तस्मात् कारणात्) तं (पूर्वोक्तं) चेदीनां) चेदिदेशानां (ईशितारं प्रभुं शिशुपालं) भवान् (त्वं) मावमँस्त (नावमन्यस्व) यः (चैद्यः) उदात्तः (उदात्तसंज्ञकः स्वरः) स्वरान् (अनुदात्तान्) इव (यथा) अरीन् (शत्रून् एक पदे (एकस्मिन् एव पदविन्यासे सुप्तिङन्तलक्षणे च) निहन्ति (मारयति, नीचैः करोति च) ॥ ९५ ॥

(समासः) एकपदे = एकं पदं एकपदं तस्मिन् ॥ ९५ ॥

(व्याकरणम्) अवमँस्त = अव + मन + लङ् + त। निहन्ति = नि + हन् + लट् + ति। स्वरान् = स्वयं राजन्त इति स्वराः, तान् = स्वयं + राज + क्विप् ॥ ९५ ॥

(भाषार्थ) इसलिये चेदि देश के शासन करनेवाले शिशुपालको आप साधारण समझकर उसकी अवहेलना न करें, वह बड़ा बली है, वह एक ही आक्रमणमें अनेक शत्रुओंको नष्ट कर सकता है, जैसे—उदात्त स्वर एक पदमें अनुदात्त स्वरको नष्ट कर देता है ॥ ९५ ॥

मा वेदि यदसावेको जेतव्यश्चेदिराडिति ।
राजयक्ष्मेव रोगाणां समूहः स महीभृताम् ॥९६॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(अन्वयः) असौ चेदिराट् एकः "अतः" जेतव्य इति मा वेदि। यत् सः रोगाणाम् "मध्ये" राजयक्ष्मा इव महीभृतां समूहः ॥ ९६ ॥

(सुबोधिनी) असौ (एषः) चेदिराट् (चेदीश्वरः) एकः (एकाकी) "अतः" जेतव्यः (सुजयः) इति (इत्थं) मा वेदि (मा ज्ञायि) यत् (यस्मात् कारणात्) सः, रोगाणां (आमयानां) "मध्ये" राजयक्ष्मा (क्षयरोगः) इव (यथा) महीभृतां (राज्ञां) समूहः (समष्टिरूपः) वर्तते ॥ ९६ ॥

(समासः) चेदिराट् चेदिषु राजते इति चेदिराट्। राजयक्ष्मा = राजा च असौ यक्ष्मा च राजयक्ष्मा ॥ ९६ ॥

(कोषः) रोगव्याधिगदामयाः, इत्यमरः ॥ ९६ ॥

(व्याकरणम्) मावेदि = मा + विद + लुङि + क्त। जेतव्याः = जेतुं योग्यो जेतव्यः ॥ ९६ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) अमुना एकेन जेतव्येन भूयते (...वेदीत् भवान्)......तेन राजयक्ष्मणा समूहेन (भूयते) ॥ ९६ ॥

(सरलार्थः) शिशुपालः इदानीं एकाकी, अत एव अनायासेन वध्य इति न जानीहि। यथा राजयक्ष्मा सर्वेषां रोगाणां आधारभूतः तथैव अयमपि मित्रनाशेऽपि न एकाकी। बहवो हि राजानस्तस्य सपक्षाः ॥

(भाषार्थ) यह भी न समझ लेना कि शिशुपाल अकेला है इसलिये सहजहीमें जीत लिया जायगा। शिशुपाल राजाओंका समूह है, जैसे—रोगोंका समूह राजयक्ष्मा ॥ ९६ ॥

सम्पादितफलस्तेन सपक्षः परभेदनः।
कार्मुकेणेव गुणिना बाणः संधानमेष्यति ॥९७॥

(अन्वयः) सम्पादितफलः सपक्षः परभेदनः बाणः गुणिना तेन कार्मुकेण इव सन्धानम् एष्यति ॥ ९७ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(सुबोधिनी) सम्पादितफलः (आसादितलाभः, प्राप्तबाणाग्रश्च) सपक्षः (ससुहृत् , कङ्कादिपत्रयुतश्च) परभेदनः (परेषां भेदकः) बाणः (बाणासुरः, शरश्च) गुणिना (शौर्यादिगुणवता, अधिज्येन च) तेन (शिशुपालेन) कार्मुकेण (धनुषा) इव, सन्धानं (सन्धिं) एष्यति (प्राप्स्यति) ॥ ९७ ॥

(समासः) सम्पादितफलः=सम्पादितं फलं यस्य सः सम्पादितफलः । सपक्षः = पक्षैः सह वर्तमानः सपक्षः । परभेदनः = भिनत्ति इति भेदनः, परस्य भेदनः परभेदनः । गुणिना = गुणः अस्य अस्ति इति गुणी तेन । कार्मुकेण = कर्मणे प्रभवति इति कार्मुकं तेन ॥ ९७ ॥

(कोषः) फलं लाभशराग्रयोः, मौर्वी ज्या शिञ्जिनी गुणः । इत्यमरौ ॥

(व्याकरणम्) सन्धानं = सम् - धा — ल्युट् । एष्यति = इ — लृट्—स्य—ति ॥ ९७ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) फलेन सपक्षेण......भेदनेन.........बाणेन......एष्यते ॥ ९७ ॥

(सरलार्थः) प्रथमं तावदस्माकं शत्रुः बाणासुरः स इदानीं अवश्यं तेन सह सङ्गंस्यते ॥ ९७ ॥

(भाषार्थ) शिशुपालके द्वारा काफी लाभ किया हुआ, पक्ष (सहायकों) सहित और शत्रुओंको मारनेमें समर्थ बाणासुर गुणी शिशुपालके साथ सहयोग करलेगा । जैसे—फल (बाणका अग्रभाग) को प्राप्त किया हुआ, सपक्ष (कंकपत्र रूप पङ्खोंसे युक्त) और शत्रुओंको मारनेमें समर्थ बाण (बाणासुर और धनुष पक्ष में तीर) गुणी (गुणवान् और धनुष पक्ष में प्रत्यञ्चा सहित) धनुषके साथ सन्धानको प्राप्त होता है ॥ ९७ ॥

ये चान्ये कालयवनशाल्वरुक्मिद्रुमादयः ।
तमःस्वभावास्तेऽप्येनं प्रदोषमनुयायिनः ॥ ९८ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(अन्वयः) ये च अन्ये कालयवनशाल्वरुक्मिद्रुमादयः तमः-स्वभावाः ते अपि प्रदोषं एनम् अनुयायिनः ॥ ९८ ॥

(सुबोधिनी) ये च अन्ये (इतरे) कालयवनशाल्वरुक्मिद्रुमादयः (कालयवनादिनामभिः प्रसिद्धाः राजानः) तमःस्वभावाः (तमोगुणात्मकाः) "वर्तन्ते" ते-अपि, प्रदोषं (प्रकृष्टदोषं) "तामसमेवेत्यर्थः" एनं (शिशुपालं) अनुयायिनः (अनुगामिनः भविष्यन्ति) ॥ ९८ ॥

(समासः) कालयवनश्च शाल्वश्च रुक्मिश्च द्रुमश्च कालयवनशाल्वरुक्मिद्रुमाः, ते आदयः एषान्ते कालयवनशाल्वरुक्मिद्रुमादयः । तमः-स्वभावाः = तमः स्वभावः एषान्ते तमःस्वभावाः । प्रदोषं = प्रकृष्टाः दोषाः अस्य सः तं । अनुयायिनः = अनु यास्यन्ति इति अनुयायिनः ॥ ९८ ॥

(कोषः) प्रदोषौ दुष्टरात्र्यंशाविति वैजयन्ती ॥ ९८ ॥

(व्याकरणम्) अनुयायिनः = अनु—या—णिनि ॥ ९८ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) यैः च अन्यैः.........द्रुमादिभिः.........स्वभावैः (भूयते) तैः.........अनुयायिभिः (भविष्यते) ॥ ९८ ॥

(सरलार्थः) कालयवनादयो राजानः अपि दुष्टा वर्तन्ते अतस्ते अपि सदोषमेनं समधर्मतया नियतं अनुयास्यन्ति ॥ ९८ ॥

(भाषार्थ) इतनाही नहीं, और भी, काल-यवन-शाल्वरुक्मि-द्रुम आदि जो तमोगुणी राजे हैं वे सभी अतिदुष्ट इस शिशुपालका साथ देगें ॥ ९८ ॥

उपजापः कृतस्तेन तानाकोपवतस्त्वयि ।
आशु दीपयिताल्पोऽपि साग्नीनेधानिवानिलः ॥ ९९ ॥

(अन्वयः) तेन कृतः अल्पः अपि उपजापः त्वयि आकोपवतः तान् अनिलः साग्नीन् एधान् इव, आशु दीपयिता ॥ ९९ ॥

(सुबोधिनी) तेन (शिशुपालेन) कृतः (विहितः) अल्पः (साधारणः) अपि उपजापः (भेदः) त्वयि (भवति)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आकोपवतः (सक्रोधान्) तान् (पूर्वोक्तान् वाणादीन् शत्रुभूतान् भूपतीन्) अनिलः (वायुः) साग्नीन् (अग्निसहितान्) एधान् (इन्धनानि) इव, आशु (शीघ्रं) दीपयिता (सद्यः प्रज्वलयिष्यति) ॥ ९९ ॥

(समासः) आकोपवतः = आकोपः अस्ति एषां ते आकोपवन्तः तान् आकोपवतः । साग्नीन् = अग्निना सह वर्तमानाः साग्नयः तान् । एधान् = इध्यन्ते एभिः इति एधास्तान् ॥ ९९ ॥

(कोपः) समौ भेदोपजापौ, काष्ठं दार्विन्धनं त्वेध इध्ममेधः समित्स्त्रियामित्यमरौ ॥ ९९ ॥

(व्याकरणम्) दीपयिता=दीप—णिच्—लुट—ता ॥ ९९ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्)………कृतेन अल्पेन……………उपजापेन आकोपवन्तः ते, अनिलेन साग्नयः…………दीपयितारः ॥ ९९ ॥

(सरलार्थः) यथा वायुः अग्निसहितानि काष्ठानि झटिति भस्मसात्करोति तथैव त्वयि प्रथमत एव क्रुद्धास्ते बाणादयः स्वल्पेनैव उपजापेन अस्मत्सन्धानं भेत्यन्ति ॥ ९९ ॥

(भावार्थ) आपके साथ शिशुपालकी छेड़खानी आरम्भ हुई कि वह वाणासुर आदि राजाओंको आपके विरुद्ध भड़कावेगा, जैसे हवा अग्नियुक्त लकड़ीको भड़काती है ॥ ९९ ॥

बृहत्सहायः कार्यान्तं क्षोदीयानपि गच्छति ।
संभूयाम्भोधिमभ्येति महानद्या नगापगा ॥ १०० ॥

(अन्वयः) बृहत्सायः क्षोदीयान् अपि कार्यान्तं गच्छति नगापगा महानद्या सम्भूय अम्भोधिं अभ्येति ॥ १०० ॥

(सुबोधिनी) बृहत्सहायः (महासहायवान्) क्षोदीयान् (लघुतरः) अपि; कार्यान्तं (कार्यस्य पारं) गच्छति (प्राप्नोति) नगापगा (गिरिनदी) महानद्या (गङ्गादिकया) सम्भूय (मिलित्वा) अम्भोधिं (सागरं) अभ्येति (प्राप्नोति) ॥ १०० ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(समासः) बृहत्सहायः=सह अयते एति वा सहायः, बृहन् सहायः अस्य सः । कार्यान्तं=कार्यस्य अन्तं कार्यान्तम् । क्षोदीयान्=अतिशयेन क्षुद्रः इति क्षोदीयान् । अम्भोधिं=अम्भांसि धीयन्ते अस्मिन् इति अम्भोधिः तं । महानद्या=महती च असौ नदी महानदी तया । नगापगा=न गच्छति इति नगः, अपां समूहः आपं, आपेन गच्छतीति आपगा, नगस्य आपगा नगापगा ॥ १०० ॥

(व्याकरणम्) सम्भूय=सम्+भू+ल्यप् । अभ्येति=अभि+इ+लट्+ति । गच्छति=गम्+लट्+ति ॥ १०० ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्)………सहायेन क्षोदीयसा……कार्यान्तः गम्यते । नगापगया अम्भोधिः अभीयते ॥ १०० ॥

(सरलार्थः) यदा क्षुद्रः अपि ससहायः सन् निजं कार्यं साधयति तदा महावीरः शिशुपालः बृहत्सहायो भूत्वा सिद्धिं न एष्यतीति कथमुच्यते ॥ १०० ॥

(भाषार्थ) बलवान्‌की सहायतासे क्षुद्र (निर्बल) भी व्यक्ति अपना काम साध लेता है । जैसे पहाड़ी नदी गङ्गा आदि महानदियोंकी सहायतासे समुद्रको प्राप्त करती है ॥ १०० ॥

तस्य मित्राण्यमित्रास्ते येच ये चोभये नृपाः ।
अभियुक्तं त्वयैनं ते गन्तारस्त्वामतः परे ॥१०१॥

(अन्वयः) ये च तस्य मित्राणि ये च (तव) अमित्राः, ते उभये नृपाः त्वया अभियुक्तं एनम् गन्तारः । अतः परे त्वाम् गन्तारः ॥ १०१ ॥

(सुबोधिनी) ये-च, (यावन्तः) तस्य (शिशुपालस्य) मित्राणि (सुहृदः) ये-च तव (भवतः) अमित्राः (शत्रवः) ते-उभयेऽपि नृपाः (चैद्य-सुहृदः, तव च शत्रुभूताः राजानः) त्वया (भवता) अभियुक्तं (अभियातं) एनं (चैद्यं) गन्तारः

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(गमिष्यन्ति) अतःपरे (उक्तप्रकारद्वयराजभ्योऽतिरिक्ताः) "राजानः" त्वां (भवन्तं) गन्तारः (अनुयातारः) ।। १०१ ।।

(समासः) अमित्राः=न मित्राणि इति अमित्राः । नृपाः=नन् पान्तीति नृपाः ।। १०१ ।।

(कोषः) अथ मित्रं सखा सुहृदित्यमरः ।। १०१ ।।

(व्याकरणम्) अभियुक्तं=अभि+युज्+क्त । गन्तारः=गम्+लुट्+तार्+अस् ।। १०१ ।।

(वाच्यपरिवर्तनम्) यैः......मित्रैः.......(भूयते) यैः....... अमित्रैः (भूयते) तैः उभयैः, अभियुक्तः अयं गन्ता......परैः त्वं (गन्तासे) ।। १०१ ।।

(सरलार्थः) संग्रामे प्रवर्तमाने सति ये खलु चैद्यस्य सुहृदः एवं तव शत्रवः ते उभयेऽपि शिशुपालमेव अनुगमिष्यन्ति अवशिष्टास्तु पुनः परिमिता एव त्वामनुगन्तारः ।। १०१ ।।

(भाषार्थ) और जो राजे शिशुपालके मित्र हैं वे तो उसका साथ देंगेही परन्तु जो राजे तुम्हारे शत्रू हैं वे भी इस मौकेपर उसीका साथ देंगे, इनको छोड़कर जो तुम्हारे मित्र और उसके शत्रू हैं वे तुम्हारा साथ देंगे ।। १०१ ।।

मखविघ्नाय सकलमित्थमुत्थाप्य राजकम् ।
हन्त जातमजातारेः प्रथमेन त्वयारिणा ।। १०२ ।।

(अन्वयः) इत्थं मखविघ्नाय सकलं राजकम् उत्थाप्य हन्त अजातारेः प्रथमेन त्वया अरिणा जातम् ।। १०२ ।।

(सुबोधिनी) इत्थं (अनेन प्रकारेण) मखविघ्नाय (यज्ञ-विघाताय) सकलं (निखिलं) राजकं (राजसमूहं) उत्थाप्य (क्षोभयित्वा) "हन्त" इति खेदसूचकम्, अजातारेः (अजातशत्रोः युधिष्ठिरस्य) त्वया (भवता) प्रथमेन (प्रथमोपस्थितेन अरिणा (शत्रुणा) जातं (अजनि) ।। १०२ ।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(समासः) मखविघ्नाय=मखस्य विघ्नः मखविघ्नः तस्मै । अजातारेः न जातः अजातः, अजातः अरिः अस्य सः अजातारिः तस्य ॥ १०२ ॥

(कोषः) हन्त हर्षेऽनुकम्पायां वाक्यारम्भविषादयोरित्यमरः ॥१०२॥

(व्याकरणम्) उत्थाप्य = उत् + स्था + णिच् + ल्यप् । राजकं= राज्ञां समूहः इति = राजन् + वुञ् ।। १०२ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्)—त्वं प्रथमः अरिः जातः ॥ १०२ ॥

(सरलार्थः) संग्रामाय समुत्सुकाः राजानः यौधिष्ठिरे यागे कथमपि न गमिष्यन्ति । इत्थं यागविघ्नं समुत्पाद्य त्वमेव अजातशत्रोः प्रथमः शत्रुः जातः ॥ १०२ ॥

(भाषार्थ) इस प्रकार यज्ञके समय विघ्न उपस्थित करने के लिये राजाओंमें परस्पर लड़ाई लगाकर अजातशत्रु युधिष्ठिरके आपही पहले शत्रु बनेंगे ॥ १०२ ॥

संभाव्य त्वामतिभरक्षमस्कन्धं स बान्धवः ।
सहायमध्वरधुरां धर्मराजो विवक्षते ॥ १०३ ॥

(अन्वयः) बान्धवः सः धर्मराजः अतिभरक्षमस्कन्धं त्वाम् सहायम् सम्भाव्य अध्वरधुरां विवक्षते ॥ १०३ ॥

(सुबोधिनी) बान्धवः (बन्धुः) सः (धर्मराजः) अतिभरक्षमस्कन्धं (अतिभारवहनसमर्थस्कन्धं) त्वां (भवन्तं) सहायं (सहायकं) सम्भाव्य (अभिसन्धाय) अध्वरधुराम् (यागभारं) विवक्षते (वोढुमिच्छति) ॥ १०३ ॥

(समासः) अतिशयितो भरः अतिभरः, तस्य क्षमः अतिभरक्षमः, अतिभरक्षमः स्कन्धः अस्य सः तम् । अध्वरधुरां = अध्वानं (स्वर्गमार्गं) राति (ददाति) इति अध्वरः, तस्य धूः अध्वरधुरा तां ॥ १०३ ॥

(कोषः) यज्ञः सवोऽध्वरो यागः सप्ततन्तुर्मखः क्रतुरित्यमरः ॥१०३॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(व्याकरणम्) बान्धवः=बन्धुरेव बान्धवः=बन्धु+अण्। विवक्षते=वह+सन्+लट्+ते विवक्ष (सनाद्यन्तधातु)+लट्+ते। अध्वरधुराम्=ऋक्पूरब्धू—इत्यादिना समासान्तोऽच्, समासान्तानां प्रकृतिलिङ्गत्वात्तत्पुरुषे परवल्लिङ्गत्वे टाप्॥ १०३॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) बान्धवेन तेन धर्मराजेन—धुरा विवक्ष्यते॥ १०३॥

(सरलार्थः) धर्मराजो युधिष्ठिरः त्वामेव सहायमुपकल्प्य अतिभारवतीं यागधुरां उद्वोढुमिच्छति, अन्यथा विरोधे सति विश्वासघातः बन्धुद्रोहश्च भविष्यति॥ १०३॥

(भाषार्थ) वह युधिष्ठिर तो आपको सब तरहसे समर्थ समझकर यह चाहता है कि आप उसके पक्षके भारको धारण करें॥ १०३॥

महात्मानोऽनुगृह्णन्ति भजमानान् रिपूनपि।
सपत्नीः प्रापयन्त्यब्धिं सिन्धवो नगनिम्नगाः॥१०४॥

(अन्वयः) महात्मानः भजमानान् रिपून् अपि अनुगृह्णन्ति सिन्धवः सपत्नीः नगनिम्नगाः अब्धिं प्रापयन्ति॥ १०४॥

(सुबोधिनी) महात्मानः (निग्रहानुग्रहसमर्थाः) भजमानान् (शरणमधिगतान्) रिपून् (शत्रूनपि) अनुगृह्णन्ति (दयन्ते) किमुत बन्धूनिति भावः। अत्र अर्थान्तरं न्यस्यति—सिन्धवः (महानद्यः) सपत्नीः (समानपतिवतीः) नगनिम्नगाः (गिरिनिर्झरिणीः) अब्धिं (समुद्रं) प्रापयन्ति (उपस्थापयन्ति) स्वसौभाग्यं ताभ्यः प्रयच्छन्तीत्यर्थः॥ १०४॥

(समासः) महात्मानः=महान्त आत्मानः एषां ते महात्मानः। सपत्नीः=समानः पतिः आसां ताः सपत्न्यः ताः। नगनिम्नगाः=निम्नं गच्छन्ति इति निम्नगाः, नगस्य निम्नगाः इति नगनिम्नगाः॥ १०४॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(व्याकरणम्) अब्धि = आपः धीयन्ते अस्मिन् इति अप् + धा + कि (अधिकरणे) प्रापयन्ति प्र + आप + णिच् + लट् + अन्ति। अनुगृह्णन्ति = अनु + ग्रह + लट् + अन्ति ॥ १०४ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) महात्मभिः भजमानाः रिपवः अपि अनुगृह्यन्ते। सिन्धुभिः सपत्न्यः······प्राप्यन्ते ॥ १०४ ॥

(सरलार्थः) शत्रुरपि यदि याचते तदा महाजनः तमनुगृह्णात्येव। महानद्यः सपत्नीरपि गिरिनिर्झरिणीः समुद्रं प्रापयन्त्येव। अतो यौधिष्ठिरं यागमेव जुषस्व ॥ १०४ ॥

(भाषार्थ) निग्रहानुग्रहसमर्थ—बड़े लोग शरणमें आये शत्रुओं-पर भी अनुग्रह किया करते हैं जैसे महानदी अपनी सौतों (छोटी छोटी पहाड़ी नदियों) के शरणमें आजानेपर उन्हें भी अपने पति समुद्रके पास पहुँचाही देती हैं ॥ १०४ ॥

चिरादपि बलात्कारो बलिनः सिद्धयेऽरिषु।
छन्दानुवृत्तिदुःसाध्याः सुहृदो विमनीकृताः ॥ १०५ ॥

(अन्वयः) बलिनः अरिषु बलात्कारः चिरादपि सिद्धये (भवति) विमनीकृताः सुहृदः छन्दानुवृत्तिदुःसाध्याः ॥ १०५ ॥

(सुबोधिनी) बलिनः (बलवतः अपि) अरिषु (शत्रुषु विषये) बलात्कारः (दण्डः) चिरात् (चिरकालेन) अपि, सिद्धये (स्वकार्यसाफल्याय) भवति, विमनीकृताः (वैमनस्यं प्रापिताः) सुहृदः (मित्राणि) छन्दानुवृत्तिदुसाध्याः (छन्दानुरोधे अपि न सुसाध्याः) ॥ १०५ ॥

(समासः) बलात्कारः = बलात् करणं इति बलात्कारः। छन्दानुवृत्तिदुःसाध्याः = दुःखेन साध्याः दुःसाध्याः, छन्दस्य अनुवृत्तिः छन्दानुवृत्तिः छन्दानुवृत्त्या दुःसाध्याः छन्दानुवृत्तिदुःसाध्याः। विमनीकृताः = विषण्णं मनः एषां ते विमनसः, अविमनसः विमनसः सम्पद्यमानाः कृता इति विमनीकृताः। सुहृदः = शोभनं हृदयं येषां ते सुहृदः ॥ १०५ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(कोषः) अभिप्रायश्छन्द आशय इत्यमरः ॥ १०५ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्)……बलात्कारेण………(भूयते)……कृतैः सुहृद्भिः……दुःसाध्यैः (भूयते) ॥ १०५ ॥

(सरलार्थः) यः खलु यथार्थतो बलवान्, स यदि चिरेण अपि शत्रुमाक्रम्यते तदा अपि तस्य सिद्धिः करस्थैव। परं भग्ना सुहृत्प्रीतिः सर्वथा दुःसन्धाना ॥ १०५ ॥

(भाषार्थ) बलवान् व्यक्ति शत्रुपर चढ़ाई कुछ ठहरकर भी करे तौभी हानि नहीं है क्योंकि वह स्वयं बलवान् है, जब चाहेगा उसे दण्ड दे सकेगा, परन्तु मित्रोंके कामपर उनका साथ न देनेसे उनके मनमें जो आँट पड़ जायगी फिर उनके मनवाली हजारों बातें करनेपर भी वह दूर न हो सकेगी ॥ १०५ ॥

मन्यसेऽरिवधः श्रेयान्प्रीतये नाकिनामिति।
पुरोडाशभुजामिष्टमिष्टं कर्तुमलन्तराम् ॥ १०६ ॥

(अन्वयः) नाकिनां प्रीतये अरिवधः श्रेयान् इति मन्यसे चेत् पुरोडाशभुजां इष्टं कर्तुं इष्टम् अलन्तराम् ॥ १०६ ॥

(सुबोधिनी) नाकिनां (देवानां) प्रीतये (प्रसादाय) अरिवधः (शत्रुवधः) श्रेयान् (प्रशस्ततरः) इति (इत्थं) मन्यसे (स्वीकरोषि) चेत् (यदि) "तर्हि" पुरोडाशभुजां (हविर्भोजिनां) इष्टं (मनोभिलषितं) कर्तुं (विधातुं) इष्टं (इष्टिः) अलन्तराम् (पर्याप्तम्) ॥ १०६ ॥

(समासः) अरिवधः=अरेः वधः अरिवधः। नाकिनां=न कम् अकम्, अविद्यमानं अकं अस्मिन् इति नाकः, सः अस्ति वासत्वेन एषां इति नाकिनः तेषाम्। पुरोडाशभुजां=पुरोडाशं=भुञ्जत इति पुरोडाशभुजः, तेषां ॥ १०६ ॥

(कोषः) 'पुरोडाशो हविर्भेदे चमस्यां पिष्टकस्य च।' अलम्भूषण-पर्याप्तिशक्तिवारणवाचकम्, इष्टं यागादि कर्म यत्, इति विश्वामरौ ॥१०६॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(व्याकरणम्) इष्टम्=यज+क्त (भावे) इष्टम्=इष+क्त (कर्मणि) ॥ १०६ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्)……अखिवेन श्रेयसा भूयते……मन्यते (त्वया)……इष्टेन……भूयते ॥ १०६ ॥

(सरलार्थः) शत्रुभूतस्य शिशुपालस्य आशु वधः देवानां प्रीतिमाधास्यति, इति सत्यं, परं सुसम्पन्नः यागस्तेषां ततोऽप्यधिकां प्रीतिं उत्पादयिष्यति ॥ १०६ ॥

(भाषार्थ) देवताओंकी प्रसन्नताके लिये यदि शत्रुवध है तो उन्हें इससे भी अधिक प्रसन्नता यज्ञसे होती है, इसलिये उनके अभीष्ट यज्ञमें ही सहयोग करना श्रेष्ठ है, शत्रुवध तो यज्ञके अनन्तर भी हो सकेगा ॥ १०६ ॥

अमृतं नाम यत्सन्तो मन्त्रजिह्वेषु जुह्वति।
शोभैव मन्दरक्षुब्धक्षुभिताम्भोधिवर्णना ॥ १०७ ॥

(अन्वयः) सन्तः मन्त्रजिह्वेषु यत् जुह्वति तत् अमृतं नाम। मन्दरक्षुब्धक्षुभिताम्भोधिवर्णना शोभा एव ॥ १०७ ॥

(सुबोधिनी) सन्तः (विद्वांसः) मन्त्रजिह्वेषु (अग्निषु) यत् (पुरोड़ाशादिकं) जुह्वति (हवनादिना तं तर्पयन्ति) तदेव (पुरोड़ाशादिकं) अमृतं नाम (सुधेति कथ्यते) मन्दरक्षुब्धक्षुभिताम्भोधिवर्णना (मन्दराचलरूपमन्थनदण्डमथितसागरस्य वर्णना) शोभा-एव (अलङ्कार एव) ॥ १०७ ॥

(समासः) मन्त्रजिह्वेषु=मन्त्रा एव जिह्वाः, एषां ते मन्त्रजिह्वाः, तेषु। तथाचः—"मन्त्रजिह्वः सप्तजिह्वः सुजिह्वो हव्यवाहनः"। सप्तजिह्वाः यथाः—काली कराली च मनोजवा च सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा। उग्रा प्रदीप्ता च कृपीटयोनेः सप्तैव कोलाः कथिताश्च जिह्वाः। अम्भांसि धीयन्ते अस्मिन् इति अम्भोधिः, मन्दर एव क्षुब्धः (मन्थनदण्डः) मन्दरक्षुब्धः, तेन क्षुभितः, स चासौ अम्भोधिश्च मन्दरक्षुब्धक्षुभिताम्भोधिः तस्य वर्णना ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(कोषः) पीयूषममृतं सुधेत्यमरः ॥ १०७ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) अमृतेन—(तेन भूयते) सद्भिः·······हूयते वर्णनया शोभया (भूयते) ॥ १०७ ॥

(सरलार्थः) यज्ञियं हविरेव अमृतं, अब्धिमन्थनाद्यदुदपद्यत तत्सुकविरचनाचातुरीमात्रम् ॥ १०७ ॥

(भाषार्थ) विद्वान् लोग विधिपूर्वक जो हवि अग्निमें हवन करते हैं वही तो यथार्थमें अमृत है और पौराणिकोंका यह कहना कि समुद्रके मन्दराचलसे मथे जानेपर अमृत निकला है यह केवल समुद्रका महत्त्व वर्णन है ॥ १०७ ॥

सहिष्ये *शतमागांसि सूनोस्त इति यत्त्वया ।
प्रतीक्ष्यं तत्प्रतीक्ष्यायै पितृष्वस्रे प्रतिश्रुतम् ॥१०८॥

(अन्वयः) प्रतीक्ष्यायै पितृष्वस्रे "ते सूनोः शतं आगांसि सहिष्ये" इति यत् त्वया प्रतिश्रुतम् तदपि प्रतीक्ष्यम् ॥ १०८ ॥

---

*"चेदिराजकुले जातस्त्र्यक्ष एव चतुर्भुजः ।
रासभारावसदृशं रुराव च ननाद च ॥ १ ॥
अन्तर्भूतं ततो भूतं उवाचेदं पुनर्वचः ।
यस्योत्सङ्गे गृहीतस्य भुजावभ्यधिकावुभौ ॥ २ ॥
पतिष्यतः क्षितितले पञ्चशीर्षाविवोरगौ ।
तृतीयमेतद्बालस्य ललाटस्थं तु लोचनम् ॥ ३ ॥
निमज्जिष्यति यं दृष्ट्वा सोऽस्य मृत्युर्भविष्यति ।
······ततश्चेदिपुरीं प्राप्तौ संकर्षणजनार्दनौ ॥ ४ ॥
यादवौ यादवीं द्रष्टुं स्वसारं तौ पितुस्तदा ।
सोऽभ्यर्च्य तौ तदा वीरौ प्रीत्या चाभ्यधिकं ततः ॥ ४ ॥
पुत्रं दामोदरोत्सङ्गे देवी सन्यदधात् स्वयम् ।
न्यस्तमात्रस्य तस्यांके भुजावभ्यधिकावुभौ ॥ ५ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(सुबोधिनी) प्रतीक्ष्यायै (पूज्यायै) पितृष्वस्रे (पितृभगिन्यै) "ते (तव) सूनोः (सुतस्य) शतं आगांसि (शतसङ्ख्यकान् अपराधान्) सहिष्ये (सोढाहे)" (इति इत्थंभूतं) यत्, त्वया (भवता) प्रतिश्रुतं (प्रतिज्ञातं) तदपि (अनन्तरोक्तं प्रतिज्ञातं अपि) प्रतीक्ष्यं (पालनीयम्) ॥ १०८ ॥

(समासः) पितृष्वस्रे = पितुः ष्वसा पितृष्वसा तस्यै ॥ १०८ ॥

(व्याकरणम्) सहिष्ये = सह + लृट् + ए । प्रतीक्ष्यं = प्रति + ईक्ष + ण्यत् ॥ १०८ ॥

(कोषः) आगोऽपराधो मन्तुश्चेत्यमरः ॥ १०८ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्)........सहिष्यन्ते............त्वं प्रतिश्रुतवान् तेन प्रतीक्ष्येण (भूयते) ॥ १०८ ॥

(सरलार्थः) भवता पूर्वं पितृभगिन्या निकटे "अहं तव सुतस्य अपराधशतं सहिष्ये" इति प्रतिज्ञातमासीत् अतस्तद्विपरीताचरणेन ते प्रतिज्ञाभङ्गो भविता तद्विरम महानर्थमूलादस्मात्प्रतिज्ञाभङ्गरूपात्कलङ्क-पङ्कात् ॥ १०८ ॥

(भाषार्थ) इतना सब होते हुए भी आप अभी शिशुपाल को मारनेके लिये उसपर चढ़ाई नहीं कर सकते हैं, क्योंकि आपने अपनी फूआसे यह प्रतीज्ञा की है कि तेरे लड़के शिशुपालके सौ अपराध मैं सहन करूँगा, इसलिये आपको अपने इस वचनका तो कमसे कम अवश्य ही पालन करना चाहिये ॥ १०८ ॥

पेततुस्तच्च नयनं न्यमज्जत ललाटजम् ।
तं दृष्ट्वा व्यथिता त्रस्ता वरं कृष्णमयाचत ॥
........शिशुपालस्यापराधान् क्षमेथास्त्वं महाबल ।
........अपराधशतं क्षाम्यं मया ह्यस्य पितृष्वसुः ॥
पुत्रस्य ते वधार्हस्य मा त्वं शोके मनः कृथाः'
(इति महाभारते सभापर्वणि)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तीक्ष्णा नारुन्तुदा बुद्धिः कर्म शान्तं प्रतापवत् ।
नोपतापि मनः सोष्म वागेका वाग्मिनः सतः ॥१०९॥

(अन्वयः) सतः बुद्धिः तीक्ष्णा, अरुन्तुदा न, सतः कर्म प्रतापवत्, (अपि) शान्तम् (भवति) सतः मनः सोष्म उपतापि न, वाग्मिनः वागपि एका ॥ १०६ ॥

(सुबोधिनी) सतः (सत्पुरुषस्य) बुद्धिः (धीः) तीक्ष्णा (निशिता) परं अरुन्तुदा (मर्मच्छेदिनी) न, (सतः) कर्म (व्यापारः) प्रतापवत् (तेजस्वि) भीत्युत्पादकमित्यर्थः, तथापि, शान्तम् (अक्षोभकरं) (सतः) मनः (मानसं) सोष्म (अभिमानोष्णं "परं" उपतापि (अग्न्यादिवत् परसन्तापि) न, वाग्मिनः (वक्तुः) वाक् (वाणी) एका (एकरूपा) वाग्मी सत्यमेव वदेदित्यर्थः ॥ १०६ ॥

(समासः) अरुन्तुदा = अरुं तुदतीति अरुन्तुदा । प्रतापवत् = प्रतपति अनेन इति प्रतापः, सः अस्ति अस्मिन् इति प्रतापवत् । उपतापि = उपतापयतीति उपतापि । वाक् अस्ति अस्य इति वाग्मी तस्य । सोष्म = उष्मणा सह वर्तमानं सोष्म ॥ १०६ ॥

(कोषः) स्वान्तं हृन्मानसं मनः, वाचो युक्तिपटुर्वाग्मीत्यमरौ ॥१०६॥

(वाच्यपरिवर्तनम्)......बुद्धया तीक्ष्णया (भूयते) अरुन्तुदया न (भूयते), कर्मणा प्रतापवता अपि शान्तेन (भूयते), सोष्मणा (भूयते) । उपतापिना न (भूयते)....वाचा एकया (भूयते) ॥१०६॥

(सरलार्थः) साधूनां व्याहृतं सत्यं, अतः शिशुपालसम्बन्धे यत्त्वया प्रतिज्ञातं तदेव प्रतिपालय, मनस उपतापित्वं बुद्धेररुन्तुदत्वं कर्मणश्च भयंकरत्वं प्रशमय ॥ १०९ ॥

(भाषाथ) सत्पुरुषोंकी बुद्धि तीक्ष्ण होती है, पर मर्मस्थानको पीड़ा नहीं देती, कर्म प्रतापी होता है, पर शान्त रहता है, मन अभिमानसे उष्ण रहता है, पर दूसरेको ताप नहीं

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

देता, वाणी भी एकही रहती है, तात्पर्य यह कि विद्वान् अपनी प्रतिज्ञापर अटल रहा करते हैं, उससे विचलित नहीं होते॥ १०६॥

स्वयंकृतप्रसादस्य तस्यान्हो भानुमानिव।
समयावधिमप्राप्य नान्तायालं भवानपि॥ ११०॥

(अन्वयः) किञ्च अह्नः भानुमान् इव स्वयंकृतप्रसादस्य तस्य अन्ताय समयावधिम् अप्राप्य भवानपि न अलम्॥ ११०॥

(सुबोधिनी) "किञ्च" अह्नः (दिनस्य) भानुमान् (सूर्यः) इव (यथा) स्वयंकृतप्रसादस्य (स्वयं विहितानुग्रहस्य) तस्य (चैद्यस्य) अन्ताय (विनाशाय) समयावधिं (नियतकालावसानं) अप्राप्य (अनधिगम्य) भवान्-अपि (त्वम्-अपि) न अलं (न समर्थः)॥ ११०॥

(समासः) स्वयंकृतप्रसादस्य=स्वयं कृतः प्रसादः अस्य सः तस्य। भानुमान्=भानवः सन्ति अस्य सः भानुमान्। समयावधिं=सम्यक् अयते गच्छति इति समयः, तस्य अवधिः तं॥११०॥

(कोषः) समयाः शपथाचारकालसिद्धान्तसंविदः। इत्यमरः॥११०॥

(वाच्यपरिवर्तनम्)—भानुमता—भवता (भूयते)॥ ११०॥

(सरलार्थः) स्त्रीयां प्रतिज्ञामपेक्ष्य शिशुपालवधे समयप्रतीक्षा समुचिता, तत् युधिष्ठिरस्य आह्वानं स्वीकुरु॥ ११०॥

(भाषार्थ) जैसे दिनका कर्त्ता स्वयं दिनकर (सूर्य) भी जबतक उसकी अवधिका समाप्तकाल (सायंकाल) नहीं आता तबतक उसका अन्त नहीं कर सकता, उसी तरह सौ अपराधों तक क्षमा करनेकी प्रतिज्ञा किये हुए आप भी उस अवधिके पहले उसे मार नहीं सकते॥ ११०॥

रूपकाले

✓ **कृत्वा कृत्यविदस्तीर्थेष्वन्तः प्रणिधयः पदम्।**
विदाङ्कुर्वन्तु महतस्तलं विद्विषदम्भसः॥ १११॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(अन्वयः) कृत्यविदः प्रणिधयः तीर्थेषु अन्तः पदं कृत्वा महतः विद्विषदम्भसः तलं विदाङ्कुर्वन्तु ॥ १११ ॥

(सुबोधिनी) कृत्यविदः (कार्यज्ञाः विधिज्ञाश्च) प्रणिधयः (गूढपुरुषाः) तीर्थेषु (मन्त्राद्यष्टादशस्थानेषु जलावतारेषु च) अन्तः (अभ्यन्तरं) पदं (स्थानं पादप्रक्षेपञ्च) कृत्वा (विधाय) महतः (दुरवगाहस्य पूज्यस्य च) विद्विषदम्भसः (अरिरूपसलिलस्य) तलं (स्वरूपं) विदाङ्कुर्वन्तु (जानन्तु) ॥ १११ ॥

(समासः) कृत्यं विदन्ति इति कृत्यविदः । तीर्थेषु=तरन्ति एभिरिति तीर्थानि तेषु । विद्विषत् एव अम्भः विद्विषदम्भः तस्य ॥ १११ ॥

(कोषः) योनौ जलावतारे च मन्त्राद्यष्टादशस्वपि । पुण्यक्षेत्रे तथा पात्रे तीर्थं स्यात् । "प्रणिधिर्गूढपुरुषः, अधः स्वरूपयोरस्त्री" ति हलायुधामरौ ॥ १११ ॥

(व्याकरणम्) विदाङ्कुर्वन्तु=विद+आम्+कृ=लोट्+अन्तु ॥ १११ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) कृत्यविद्भिः प्रणिधिभिः विदांक्रियताम् ॥ १११ ॥

(सरलार्थः) यथा नाविकाः अतिगभीरस्य अपि जलस्य अन्तः प्रविश्य तलस्पर्शं कर्तुं समर्थाः भवन्ति, तथैव चरा अपि छन्नरूपाः सन्तः शत्रोः अन्तः प्रविश्य तेषां सकलमपि रहस्यं सुखेन अवगन्तुं शक्ताः, अतस्त्वयाऽपि प्रथमं एतदेव अनुष्ठेयम् ॥ १११ ॥

(भाषार्थ) तो क्या अभी इसकी सर्वथा उपेक्षा ही की जाय—नहीं, जबतक कि इसपर चढ़ाई नहीं की जाती तबतक गुप्तचरोंके द्वारा मंन्त्रणादि जो शत्रुके १८ स्थान हैं उनके भीतर घुसकर उसका थाह लगावें। जैसे चतुर विद्वान् सीढ़ियोंके द्वारा जलाशयके भीतर उतरकर उसका थाह लगाते हैं ॥ १११ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अनुत्सूत्रपदन्यासा सद्वृत्तिः सन्निबन्धना । उपमा
शब्दविद्येव नो भाति राजनीतिरपस्पशा ॥११२॥

(अन्वयः) अनुत्सूत्रपदन्यासा सद्वृत्तिः सन्निबन्धना राजनीतिः अपस्पशा शब्दविद्या इव नो भाति ॥ ११२ ॥

(सुबोधिनी) अनुत्सूत्रपदन्यासा (नीतिशास्त्रविरुद्धपदन्यासरहिता, नीतिपूर्वकसर्वव्यवहारेत्यर्थः) सद्वृतिः (भृत्यामात्यादीनां उत्तमा जीविका शास्त्रपक्षे काशिकाख्यसूत्रव्याख्यानरूपग्रन्थविशेषसहिता) सन्निबन्धना (अनुजीविभ्यः प्रदत्तपारितोषिकरूपगोहिरण्यादिसहिता अन्यत्र भाष्यादिग्रन्थरूसन्निबन्धनयुता "एवम्भूताऽपि" राजनीतिः (राजवृत्तिः) अपस्पशा (अपगतचरा अन्यत्र उपोद्घातसन्दर्भरूपग्रन्थरहिता) शब्दविद्या (व्याकरणविद्या) इव (यथा) नो भाति (न शोभते ॥ ११२ ॥

(समासः) उत्क्रान्तः सूत्राणि उत्सूत्रः, पदस्य न्यासः पदन्यासः, उत्सूत्रः पदन्यासः अस्यां सा उत्सूत्रपदन्यासा, पक्षे = उत्क्रान्तानि सूत्रेभ्यः उत्सूत्राणि गाथाभूतानि पदानि अस्मिन् सः उत्सूत्रपदः, न उत्सूत्रपदः अनुत्सूत्रपदः अनुत्सूत्रपदः न्यासो यस्यां सा । सद्वृत्तिः-वर्तते अनया वृत्तिः, सती वृत्तिः यस्यां सा सद्वृत्तिः । सन्निबन्धना = निबध्यते अनेन इति निबन्धनं सत् निबन्धनं अस्यां सा सन्निबन्धना अन्यत्र निबध्यते अस्मिन् इति निबन्धनं सत् निबन्धनं अस्यां सनिबन्धना । राजनीतिः = राज्ञां नीतिः राजनीतिः । अपगताः स्पशाः अस्याः सा अपस्पशा अन्यत्र अविद्यमानाः स्पशाः अस्यां सा अपस्पशा । वेत्ति अनया विद्या, शब्दानां विद्या शब्दविद्या ॥ ११२ ॥

(कोषः) वृत्तिर्ग्रन्थजीवनयोः । यथार्थवर्णो मर्मज्ञः स्पशो हरक उच्यत इति वैजयन्तीहलायुधौ ॥ ११२ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(वाच्यपरिवर्तनम्)............न्यासया सद्वृत्त्या सन्निबन्धनया राजनीत्या अपस्पशया शब्दविद्यया........भायते ॥ ११२ ॥

(सरलार्थः) राजनीतिः चारविरहिता सती न शोभते अतश्चरा अवश्यं स्थापनीयाः, ते च परराष्ट्रे प्रेषणीयाः अन्यथा राजा विकलाङ्गो भूत्वा किमपि कर्तुं न प्रभवति ॥ ११२ ॥

. (भाषार्थ) नियमके विरुद्ध एक पैर भी जिसमें नहीं रक्खा जाता हो, राजकार्य करनेवालोंके लिये कार्यके अन्तमें जहाँ उत्तम पारितोषिक आदिकी व्यवस्था हो ऐसी भी राजनीति पस्पश (गुप्तचरों) के बिना शोभा नहीं देती जैसे—सूत्रोंके अनुसार पदोंके न्यासको प्रतिपादन करनेवाली, सूत्र व्याख्यान रूप काशिकादि ग्रन्थोंवाली और उत्तम महाभाष्यादि निबन्धनवाली शब्दविद्या (व्याकरण शास्त्र) परस्पश (महाभाष्यके प्रथमाध्यायका प्रथम आन्हिक) के बिना नहीं शोभा देती ॥ ११२ ॥

अज्ञातदोषैर्दोषज्ञैरुद्दूष्योभयवेतनैः ।
भेद्याः शत्रोरभिव्यक्तशासनैः सामवायिकाः ॥११३॥

(अन्वयः) अज्ञातदोषैः दोषज्ञैः अभिव्यक्तशासनैः उभयवेतनैः शत्रोः सामवायिकाः उद्दूष्य भेद्याः ॥ ११३ ॥

(सुबोधिनी) अज्ञातदोषैः (परैः अज्ञातनिजकर्मभिः) दोषज्ञैः (स्वयं पररहस्यज्ञैः) अभिव्यक्तशासनैः (अभिव्यक्तैः भेद्यस्य अग्रे प्रकटित-तदमात्याद्यविश्वासकर-कूटलिखितैः (उभयवेतनैः) (शत्रुतः स्व-स्वामितश्च जीविकाग्राहिभिः) शत्रोः (शत्रुसम्बन्धिनः) सामवायिकाः (अमात्यादयः) उद्दूष्य (भृशं दूषयित्वा) भेद्याः (विघट्टनीयाः) ॥ ११३ ॥

(समासः) अज्ञातदोषैः=न ज्ञातः अज्ञातः, अज्ञातः दोषः एषां ते अज्ञातदोषाः, तैः । दोषज्ञैः=दोषान् जानन्ति इति दोषज्ञाः तैः । अभि-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

व्यक्तशासनैः = अभिव्यक्तानि शासनानि यैः तैः। उभयवेतनैः = उभाभ्यां वेतनं एषां ते उभयवेतनाः तैः। सामवायिकाः = समवयन्ति एषु इति समवायाः, समवायान् समवयन्ति इति सामवायिकाः ॥ ११३ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) अज्ञातदोषाः दोषज्ञाः उभयवेतनाः अभिव्यक्तशासनाः शत्रोः सामवायिकान् उद्दूष्य भेदयेयुः ॥ ११३ ॥

(सरलार्थः) न केवलं चारमुखेन शत्रुवृत्तान्तज्ञानं अपितु तेष्वेव परस्परं उपजापः कर्तव्यः अतः प्रच्छन्नवेषैः भवतां गूढपुरुषैः शत्रुराष्ट्रे जीविकां उपजीव्य तेषां सरहस्यानि कार्याणि सम्यगभिज्ञाय मन्त्रिवर्गेषु भेदो विधेयः ॥ ११३ ॥

(भाषार्थ) जिनके दोषोंको दूसरा न जानता हो और स्वयं दूसरेके दोषोंको जानते हों ऐसे दोनों पक्षसे नौकरी पानेवाले गुप्त दूतोंके द्वारा शत्रुपक्षके राजा और अमात्यादिमें इधर उधरकी बातें लगाकर भेद डालना चाहिये ॥ ११३ ॥

उपेयिवांसि कर्तारः पुरीमाजातशात्रवीम्।
राजन्यकान्युपायज्ञैरेकार्थानि चरैस्तव ॥ ११४ ॥

(अन्वयः) उपायज्ञैः तव चरैः एकार्थानि राजन्यकानि आजातशात्रवीं पुरीम् उपेयिवांसि कर्त्तारः ॥ ११४ ॥

(सुबोधिनी) उपायज्ञैः (कार्यसाधनोपायकुशलैः) तव (भवतः) चरैः (गूढ़चारिभिः पुरुषैः) एकार्थानि (त्वया सह एकप्रयोजनानि) राजन्यकानि (राजन्यानां समूहाः) आजातशात्रवीं पुरीं (युधिष्ठिरस्य इमां इन्द्रप्रस्थनगरीं) उपेयिवांसि (प्राप्नुवन्ति) कर्त्तारः (करिष्यन्ते) ॥ ११४ ॥

(समासः) उपायज्ञैः = उपायं जानन्ति इति उपायज्ञाः तैः। चरैः = चरन्ति इति चराः तैः। एकार्थानि = एकः अर्थः (प्रयोजनं) येषां तानि एकार्थानि। आजातशात्रवीं = अजातशत्रोः इयं आजातशात्रवी

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तां। राजन्यकानि = राज्ञः अपत्यानि राजन्याः, राजन्यानां समूहाः राजन्यकानि ॥ ११४ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) उपायज्ञा........चराः........॥ ११४ ॥

(सरलार्थः) तैः एवः चरैः "इन्द्रप्रस्थे अस्माकं महत्कार्यं भविष्यति तद् अध्वरयात्राव्याजेन सन्नद्धैभवद्भिरागन्तव्यम्" इति सर्वे राजानः गूढं सन्देष्टव्याः, ते च तत्र मिलिष्यन्ति ॥ ११४ ॥

(भाषार्थ) उपायोंको जाननेवाले अपने गुप्तचरोंके द्वारा स्व-पक्ष-पाती राजाओंको यज्ञके वहाने इन्द्रप्रस्थमें बुला लेना चाहिये ॥ ११४ ॥

सविशेषं सुते पाण्डोर्भक्तिं भवति तन्वति ।
वैरायितारस्तरलाः स्वयं मत्सरिणः परे ॥११५॥

(अन्वयः) पाण्डोः सुते भवति सविशेषं भक्तिं तन्वति "सति" तरलाः मत्सरिणः परे, स्वयं वैरायितारः ॥ ११५ ॥

(सुबोधिनी) पाण्डोः (पाण्डुराज्ञः) सुते (पुत्रे युधिष्ठिरे) भवति (त्वयि) सविशेषं (भृशं यथा तथा) भक्तिं (अनुरागं, सत्कारलक्षणमित्यर्थः) तन्वति (विस्तारयति) "सति" तरलाः (चञ्चलाः) मत्सरिणः (विद्वेषिणः) परे (शात्रवः) स्वयं, वैरायितारः (वैरं कर्त्तारः) ॥ ११५ ॥

(समासः) सविशेषं = विशेषेण सह वर्तमानं यथा तथा सविशेषम्। मत्सरिणः = मत्सरः अस्ति येषां ते मत्सरिणः ॥ ११५ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) तरलैः मत्सरिभिः........परैः........वैरायिता ।

(सरलार्थः) इन्द्रप्रस्थ एव यदा धर्मराजो युधिष्ठिरः भवन्तं सादरं पूजयिष्यति तदैव सर्वे च ते मत्सरिणः विहितां भवतः पूजां न मर्षयिष्यन्ति प्रत्युत कलहं विधास्यन्ति ॥ ११५ ॥

(कोषः) "चञ्चलं तरलं चैव पारिप्लवपरिप्लवे" इत्यमरः ॥११५॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(भाषार्थ) और इन्द्रप्रस्थमें जब युधिष्ठिर आपकी सर्व प्रथम पूजा करेगा उससमय शिशुपाल और उसके पक्षपाती मत्सरी (दूसरेकी भलाईमें डाह खानेवाले) राजा अवश्य झगड़ा करेंगे ॥ ११५ ॥

य इहात्मविदो विपक्षमध्ये सह संवृद्धियुजोऽपि भूभुजः स्युः।
बलिपुष्टकुलादिवान्यपुष्टैः पृथगस्मादचिरेण भाविता तैः ॥

(अन्वयः) इह विपक्षमध्ये सह संवृद्धियुजः अपि ये भूभुजः आत्मविदः स्युः तैः बलिपुष्टकुलात् अन्यपुष्टैः इव अचिरेण अस्मात् पृथग्भाविता ॥ ११६ ॥

(सुबोधिनी) इह, विपक्षमध्ये (शत्रुमध्ये) सहसंवृद्धियुजः (शिशुपालेन सह ऐश्वर्यं प्राप्ता अपि) ये भूभुजः (राजानः) आत्मविदः (स्वाभिजनवेदिनः) स्युः (भवेयुः) तैः (भूभुग्भिः) बलिपुष्टकुलात् (काककुलात्) अन्यपुष्टैः (परभृतैः) इव, अचिरेण (सद्यः एव) अस्मात् (विपक्षमध्यात्) पृथग्भाविता (पृथक्-भविष्यते) ॥ ११६ ॥

(समासः) विपक्षमध्ये = विरुद्धः पक्षः एषां ते विपक्षाः तेषां मध्यं तस्मिन्। सहसंवृद्धियुजः=सह संवृद्ध्या युज्यन्ते इति सहसंवृद्धियुजः। भूभुजः= भुवं भुञ्जते इति भूभुजः। आत्मविदः=आत्मानं विदन्ति इति आत्मविदः। बलिपुष्टकुलात्=बलिभिः पुष्टाः बलिपुष्टाः, तेषां कुलं, तस्मात्। अन्यैः पुष्टाः अन्यपुष्टाः तैः। अचिरेण=न चिरं अचिरं तेन ॥ ११६ ॥

(कोषः) काकेतु करटारिष्टबलिपुष्टसकृत्प्रजाः, इत्यमरः ॥ ११६ ॥

(व्याकरणम) स्युः = अस् + लिङ् + जुस्। भविता = भू + लुट् + ता (भावे) ॥ ११६ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्)""युग्भिः अपि यैः भूभुग्भिः आत्मविद्भिः भूयेत, ते अन्यपुष्टाः—भवितारः ॥ ११६ ॥

(सरलार्थः) नहि सर्व एव ते राजानः त्वत्तः पृथक् भविष्यन्ति किन्तु अन्यपुष्टाः समये उड्डीय काककुलं परित्यज्य यथा स्वकुलमेवाश्रयन्ति तथैव

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शिशुपालसकाशात् अभ्युदयं आसादिता अपि, आत्माभिमानिनः स्वाभिजनवेदिनश्च, ते अपि भवतः पूजां अनुमोदयित्वा त्वया सङ्गंस्यन्ते ॥ ११६ ॥

(भाषार्थ) शिशुपालके पक्षमें रहकर जिनका अभ्युदय हुआ है ऐसे भी राजे, जो आत्माभिमानी होंगे और अपने सच्चे स्वरूपको जानते होंगे वे समय पड़नेपर इससे अलग हो जायँगे जैसे समय आनेपर कौओंके खोतेसे कोयल अलग हो जाती है ॥ ११६ ॥

सहजचापलदोषसमुद्धतश्चलितदुर्बलपक्षपरिग्रहः ।
तव दुरासदवीर्यविभावसौ शलभतां लभतामसुहृद्गणः ॥ ११७ ॥

(अन्वयः) सहजचापलदोषसमुद्धतः चलितदुर्बलपक्षपरिग्रहः असुहृद्गणः तव दुरासदवीर्यविभावसौ शलभताम् लभताम् ॥ ११७ ॥

(सुबोधिनी) सहजचापलदोषसमुद्धतः (स्वाभाविकदुर्विनीतत्वरूपदोषदृप्तः) चलितदुर्बलपक्षपरिग्रहः (अस्थिरनिर्बलपक्षपरिग्रहः) असुहृद्गणः (अरिवर्गः) तव (भवतः) दुरासदवीर्यविभावसौ (दुःसहतेजोवन्हौ) शलभतां (पतङ्गत्वं) लभताम् (गच्छतु) ॥ ११७ ॥

(समासः) सहजचापलदोषसमुद्धतः = सह जातं सहजं, चपलस्य भावः चापलं, सहजं चापलं सहजचापलं, तद् एव दोषः सहजचापलदोषः, तेन समुद्धतः । चलितदुर्बलपक्षपरिग्रहः = पक्षस्य परिग्रहः पक्षपरिग्रहः, दुर्बलः पक्षपरिग्रहः दुर्बलपक्षपरिग्रहः, चलितः दुर्बलपक्षपरिग्रहः अस्य सः । असुहृद्गणः = न सुहृदः असुहृदः तेषां गणः असुहृद्गणः । दुरासदवीर्यविभावसौ = दुःखेन आसाद्यते इति दुरासदं, दुरासदं वीर्यं दुरासदवीर्यं । तद् एव विभावसुः दुरासदवीर्यविभावसुः तस्मिन् । शलभतां = शलभानां भावः शलभता ताम् ॥ ११७ ॥

(कोषः) चपलः पारदे शीघ्रे दुर्विनीतेऽनवस्थिते । पक्षः पार्श्वगरु-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

त्साध्यसहायबलभित्तिषु । इति वैजयन्ती । वीर्यं शुक्रे प्रभावे च तेजः सामर्थ्ययोरपीतिविश्वः । सूर्यवन्ही विभावसू । समौ पतङ्गशलभावित्याद्यमराः ।

(व्याकरणम्) लभताम्=लभ+लोट+ताम् ॥ ११७ ॥

(वाच्यपरिवर्तनम्)........समुद्धतेन........परिग्रहेण...........गणेन शलभता लभ्यताम् ॥ ११७ ॥

(सरलार्थः) एवं शिशुपालपक्षं विहाय यदा राजानः त्वां आश्रयिष्यन्ति तदा दुर्बलास्ते शत्रवः सुखेनैव त्वया समुच्छिद्येरन् ॥ ११७ ॥

(भाषार्थ) अपनी स्वाभाविक चञ्चलतासे उन्मत्त और दुर्बल सहायकोंवाला शत्रुपक्ष तुम्हारे अति कठिन प्रताप रूप अग्निमें फतिङ्गोंकी तरह भस्म हो जाय ॥ ११७ ॥

इति विशकलितार्थामौद्धवीं वाचमेना—
मनुगतनयमार्गामर्गलां दुर्नयस्य ।
जनितमुदमुदस्थादुच्चकैरुच्छ्रितोरः—
स्थलनियतनिषण्णश्रीश्रुतां शुश्रुवान्सः ॥ ११८ ॥

(अन्वयः) सः इति विशकलितार्थाम् अनुगतनयमार्गां दुर्नयस्य अर्गलां जनितमुदं उच्छ्रितोर स्थलनियतनिषण्णश्रीश्रुताम् एनां औद्धवीम् वाचम् शुश्रुवान् उदस्थात् ॥ ११८ ॥

(सुबोधिनी) सः (हरिः) इति (इत्थं) विशकलितार्थां (विवेचितार्थां) अनुगतनयमार्गां (अनुसृतनीतिपदवीं, नीतिमार्गानुसारिणीमित्यर्थः) दुर्नयस्य (बलभद्राद्युक्तिरूपदुर्नीतेः) अर्गलां (निवारयित्रीं) "अतएव" जनितमुदं (हरेः कृतानन्दां) उच्छ्रितोरःस्थलनियतनिषण्णश्रीश्रुतां (उन्नतवक्षःस्थले अविश्रान्तमाश्रितया लक्ष्म्या श्रुतां) औद्धवीं (उद्धवसम्बन्धिनीं) एनां (पूर्वोक्तां) वाचं (वाणीं) शुश्रुवान् (श्रुतवान्) "सन्" उदस्थात् (स्वासनात् उत्थितवान्) ॥ ११८ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(समासः) विशकलितार्थां = शकलानि कृताः शकलिताः, विशेषेण शकलिताः विशकलिताः, विशकलिताः अर्थाः अस्यां सा विशकलितार्था तां । नीयते अनेन इति नयः, नयस्य मार्गः नयमार्गः, अनुगतः नयमार्गः अनया अनुगतनयमार्गा तां । दुर्नयस्य = दुष्टः नयः दुर्नयः तस्य । जनितमुदं = जनिता मुत् अनया जनितमुत् तां । प्रशस्तं उरः उरस्थलं, नियतं निषण्णा नियतनिषण्णा, उच्छ्रितं उरस्थलं उच्छ्रितोरःस्थलं, तत्र नियतनिषण्णा, सा च असौ श्रीश्च उच्छ्रितोरःस्थलनियतनिषण्णश्रीः, ... श्रुतां ताम् । औद्धवीं उद्धवस्य इयं औद्धवी ताम् ॥ ११८ ॥

(कोषः) लक्ष्मीः पद्मालयापद्मा कमला श्रीर्हरिप्रियेत्यमरः ॥११८॥

(व्याकरणम्) उदस्थात् = उद + स्था + लुङ् + तिप् ॥११८॥

(वाच्यपरिवर्तनम्) तेन····शुश्रुषा····उदस्थायि ॥ ११८ ॥

(सरलार्थः) एवम्भूतां वाचमुक्त्वा उद्धवः विरराम, बलरामस्य चिन्तितं सप्रतिबन्धं बभूव । आनन्देन उत्फुल्लनयनो हरिः एनां औद्धवीं वाचं आकर्ण्य स्वासनादुत्तस्थौ ॥ ११८ ॥

(भाषार्थ) भगवान् श्रीकृष्ण इस प्रकार स्पष्टार्थको प्रतिपादन करनेवाली, नीतिमार्गको सुझानेवाली दुर्नीतिको रोकनेवाली, उद्धवकी वाणी सुनकर प्रसन्न हुए और सिंहासनसे उठ खड़े हुए ॥ ११८ ॥

इति श्री स्मार्तकर्मानुष्ठाननिष्ठ-कश्यपवंशावतंस-स्वधर्म-धुरन्धर
पाठकोपाह्व-जयकृष्णशर्म्म-तनुजनुषा गौरीनाथशर्म्मणा
विरचितया सुबोधिन्याख्यया व्याख्यया सर-
लार्थया हिन्दी भाषया च संवलितो
महाकवि श्रीमाघकृतौ
शिशुपालवधे
द्वितीयः सर्गः

———

SRI JAGADGURU VISHWARADHYA JNANA SIMHASAN JNANAMANDIR LIBRARY
Jangamwadi Math, VARANASI
Acc. No. 4047

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हमारी प्रकाशित पुस्तकें

रामायण महाभारत [काशी की प्रथमा परीक्षा में स्वीकृत अंश] सुबोधिनी सहित	॥≈)
रघुवंश प्रथम सर्ग सुबोधिनी टीका सहित	॥=)
रघुवंश पञ्चम सर्ग ,, ,,	॥)
रघुवंश १–२ सर्ग ,, ,,	१॥)
रघुवंश २–३ सर्ग मल्लिनाथी, हिन्दी बिहार परीक्षोपयोगी	।॥)
वंश २–४ सर्ग ,, ,, काशी प्रथमा परीक्षोपयोगी	१)
घुवंश ६-१० सर्ग सुबोधिनी	२॥)
रघुवंश ६-१० सर्ग केवल मल्लिनाथी टीका	१)
रघुवंश १–३ सर्ग केवल मल्लिनाथी टीका	॥)
श्रुतबोध [प्राचीन संस्करण] सुबोधिनी टीका सहित सोदाहरण	॥)
श्रुतबोध [बालपयोगी संस्करण, काशी की प्रथमा में स्वीकृत]	॥)
किरातार्जुनीय [१–२ सर्ग] सुबोधिनी टीका सहित	१)
किरातार्जुनीय [सम्पूर्ण] मल्लिनाथी सहित	२॥)
शिशुपालवध १–२ सर्ग सुबोधिनी टीका	१)
नैषध महाकाव्य [१–९ सर्ग] मल्लिनाथी टीका	४)
अभिज्ञानशाकुन्तल संस्कृत टीका तथा हिन्दी टीका सहित	३॥)
वेणीसंहार–सरल संस्कृत टीका तथा हिन्दी में सरलार्थ [यन्त्रस्थ]	२॥)
नाट्यशास्त्र प्रथमाध्याय [भरत मुनिकृत] हिन्दी टीका सहित	॥)
अलंकार सर्वस्व [राजानक रुय्यककृत]	२)
मीमांसा परिभाषा संस्कृत हिन्दी टीका सहित	।॥)
नीति संग्रह [संक्षिप्त हितोपदेश]	॥)
छन्दः संग्रह	≡)
पाणिनीय प्रबोध [काशी की प्रथमा में स्वीकृत] पूर्वार्ध	१)
पाणिनीय प्रबोध उत्तरार्ध	१)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

२५ महाकवि भारवि ॥)

२६ महाकवि माघ ॥)

२७ मित्रसम्प्राप्ति [पञ्चतन्त्र हिन्दी टीका सहित] ॥।)

२८ पञ्चतन्त्र प्रथम तन्त्र १)

२९ पञ्चतन्त्र द्वितीयतन्त्र मूलमात्रं ।)

३० पञ्चतन्त्र तृतीयतन्त्र ।=)

३१ पञ्चतन्त्र चतुर्थतंत्र ।)

३२ पञ्चतन्त्र पञ्चमतन्त्र ।)

३३ विदुरनीति १–२ अध्याय हिन्दी टीका सहित ॥=)

३४ विदुरनीति ३–८ अध्याय हिन्दी टीका सहित ॥)

३५ योगकर्णिका [योग शास्त्र का अनूठा ग्रन्थ] १॥)

३६ हिन्दी दीपिका १)

३७ शिवसहस्रनामावली ।=)

३८ शिवमहिम्न स्तोत्र ।)

३९ आपदुद्धारक बटुकभैरव स्तोत्र ।=)

४० तुलसी [हिन्दी] ।=)

४१ अमरकोष प्रथम काण्ड, काशी की प्रथमा में स्वीकृत [हिन्दी टीका सहित] ।=)

४२ चन्द्रालोक, काशी की पूर्व मध्यमा में स्वीकृत [श्री गौरीनाथ पाठक कृत संस्कृत तथा हिन्दी टीका सहित] २)

४३ रामनाम लेखनविधि—हिन्दी टीका सहित ।)

सर्वविध संस्कृत पुस्तकों के मिलने का एकमात्रस्थान—

मैनेजर, शारदा-भवन,

४४, अगस्त्यकुण्ड, बनारस ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi